भारत एवं श्रीलंका-अन्तरष्ट्रीय सम्बन्धों में एक अध्ययन (1947-1987)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की
पीएच० डी० (राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु
शोध प्रबन्ध

1990

निर्देशक
डा० राजेन्द्र कुमार
एम० ए०, पीएच० डी०
अध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय उरई (उ० प्र०)
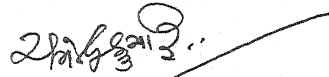
प्रस्तुति
कल्पना चतुर्वेदी
एम० ए० (राजनीति विज्ञान)
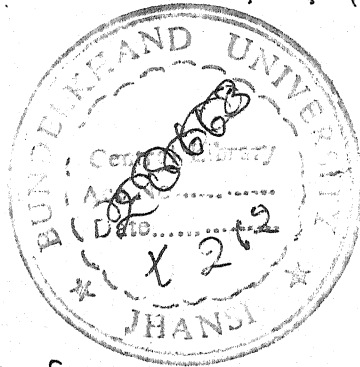
राजनीति विज्ञान विभाग
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी (उ० प्र०)

C E R T I F I C A T E

It is certified that the thesis entitled "भारत एवं श्रीलंका - अन्तरर्राष्ट्रीय सम्बन्धों मैं एक अध्ययन (1947-1987)" being submitted by **Miss Kalpna Chaturvedi** for the award of Ph.D. in Political Science of Bundelkhand University, Jhansi (U.P.). This is a record of candidate's work carried under my supervision and guidence, and has never been submitted for the award of any degree in any University.

Dr. Rajendra Kumar
Head of the Department of Polital Science
D.V. Post Graduate College
ORAI (U.P.)

प्राक्कथन

द्वितीय विश्व युद्ध मे बाद दक्षिण एशिया के नवोदित राष्ट्र विश्व की महाशक्तियों के आकर्षण का केन्द्र बने हुये हैं । साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी शक्तियों ने इस क्षेत्र के लिये गम्भीर चुनौती उत्पन्न कर दी है, उनकी दूषित महत्वाकाक्षायें समस्त दक्षिण एशिया को अक्रान्त एवं अशान्त बनाने में संलग्न हैं । भारत दक्षिण एशिया का हृदय स्थल है तथा दक्षिण एशिया में शान्ति एवं सुरक्षा के विकास के लिये वह अपने दायित्व को पहचान रहा है । विश्व राजनीति में भी भारत का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है, किन्तु साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी शक्तियों की कूटिनीति के कारण भारत को अपनी सीमा से लगे पड़ोसी देशों की अक्रामक नीतियों के परिणामस्वरूप अनेक युद्धों का सामना करना पड़ा है । युग-युग के अजेय प्रहरी के रूप में कार्य करने वाले हिमालय को पार करके उत्तर में चीन द्वारा आक्रमण एवं पश्चिम से पाकिस्तान द्वारा भारत पर तीन आक्रमण हुये है । आज भी भारत की समस्त संवेदनशील सीमाओं पर युद्ध का भयावह वातावरण बना हुआ है ।

वर्तमान समय में मालद्वीप के अतिरिक्त भारत के अपने समस्त पड़ोसी राष्ट्रों से सम्बन्ध लगभग तनावपूर्ण ही हैं । पाकिस्तान का परमाणिक कार्यक्रम एवं कश्मीर के प्रति पाकिस्तानी दृष्टिकोण चिन्ता का विषय बना हुआ है । बांगलादेश से पाकिस्तान के सम्बन्ध भारत की अपेक्षा अधिक मधुर हैं । श्रीलंका में शान्ति सेना के वापसी के बाद भी स्थिति नाजुक बनी हुयी है तथा नेपाल एवं भूटान जैसे पड़ोसी राष्ट्रों के साथ भी भारत के सम्बन्धों में गतिरोध उत्पन्न हो गये हैं ।

भारत का भविष्य अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ जुड़ा हुआ है, इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि भारत अपनी एकता, अखण्ड़ता एवं स्वतन्त्राता की रक्षा के लिये अपने पड़ोसी देशों के प्रति अपनायी गयी नीति पर पुर्नविचार करें । पड़ोसी देशों की आकांक्षाओं एवं समस्याओं को समझें तथा इन देशों से सम्बन्धित नीतियों को बदली हुयी परिस्थति में नया

रूप दे, क्योंकि अशान्त दक्षिण एशिया भारत के लिये सबसे बड़ा अभिशाप है । दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन का भविष्य भी दक्षिण एशियायी राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर करता है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की विषय वस्तु भारत एवं श्रीलंका के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर आधारित है । आज भारत एवं श्रीलंका के मैत्रीय सम्बन्ध राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जगत के लिये एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इन सम्बन्धों के इतिहास, उनके विकास में अवरोधक तत्वों, आपेक्षित प्रसंगों, उनकी वर्तमान स्थितियों एवं मधुर सम्बन्धों के विकास हेतु स्वस्थ सुझावों के विश्लेषण पर आधारिक है । विदेशनीति के सन्दर्भ में इन सम्बन्धों को गहरायी से जानने का प्रयास किया गया है, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बदली हुयी परिस्थति का विषय वस्तु के सन्दर्भ में समयक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

वर्तमान समय में भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध सामरिक एवं आर्थिक विवाद के साथ तमिल समस्या जैसी ज्वलन्त समस्या के घेरे में है । भारत की कूटिनीति के लिये यह गम्भीर चुनौती है । अस्तु आवश्यकता इस बात की है कि भारत इस गम्भीर चुनौती को स्वीकार करे तथा अपने इस दक्षिणी पड़ोसी मित्र के साथ विश्वास भरे मैत्रीय सम्बन्धों को नयी दिशा प्रदान करें । भारत का यह कर्तव्य है कि वह श्रीलंका को सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में गम्भीर रूप से महत्व प्रदान करें, तभी दोनों देशों के बीच सभी विवादों एवं समस्याओं का समाधान सौहार्दपूर्ण वातावरण में द्विपक्षीय वार्ताओं द्वारा सम्भव है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में श्रीलंका एवं सीलोन दोनों नामों का प्रयोग इस द्वीप के लिये किया गया है, क्योंकि 1972 के नये संविधान के अन्तर्गत द्वीप का नाम सीलोन के स्थान पर श्रीलंका के रूप में परिवर्तित हुआ था । प्रस्तुत शोध विषय का काल 1947 से 1987 तक सीमित है, लेकिन वर्तमान परिस्थतियों के परिप्रेक्ष्य में मैने सितम्बर 1990 तक भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में हुये विकास का अध्ययन करने का प्रयास किया है ।

मै **डा० राजेन्द्र कुमार** अध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, दयानन्द वैदिक महाविद्यालय उरई की हृदय से आभारी हूँ, जिनके कुशल निर्देशन में मैने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध तैयार किया है । शोध प्रबन्ध के निर्माण में उनके मूल्यावान निर्देश, उपयोगी सुझाव, तार्किक पद्यति एवं प्रेरणादायी प्रोत्साहन के कारण अभियोजित अध्ययन पूर्ण हो सका है । मैं डा० जयश्री पुरवार, जो कि स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं से ही मेरे लिये एक असीम प्रेरणा स्त्रोत रही है, का सहृदय आभार व्यक्त करती हूँ । उन्होंने इस शोध प्रबन्ध के सम्पादन में अपना महत्वपूर्ण समय निकाल कर मेरा मार्गदर्शन किया । मैं अपने समस्त गुरूजनों का अभिनन्दन करती हूँ, जिनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से इस अध्ययन को पूर्ण करने का प्रयास कर सकी हूँ । मैं अपने माता जी एवं पिताजी का बन्दन करती हूँ जिनके स्नेह एवं आर्शीबाद से ही यह प्रयास सम्भव हो सका है । मैं अपनी सहयोगी बहन विश्वआभा की हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे समय-समय पर इस कार्य को पूर्ण करने में सहयोग दिया । मैं अपने आदरणीय मामा जी श्री कृष्ण कुमार दीक्षित का भी आभार प्रदर्शित करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य को पूर्ण करने मं आपेक्षित सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान किया है । मैं अपने भाई आदित्य एवं प्रियाँशु की भी ऋणी हूँ जिनके सक्रिय सहयोग एवं स्नेह के आभाव में प्रस्तुत अध्ययन की सफल परिणति मेरे लिये असम्भव थी। अन्त में मैं श्री शफ़कृत अली को धन्यावाद देती हूँ जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध को अथक परिश्रम एवं निष्ठा से टाइप किया है ।

दिनाँक : 2.10.1990

कल्पना चतुर्वेदी

आभार प्रदर्शन

मुझे प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में निम्न पुस्तकालयों के पुस्तकालाध्यक्षों एवं सहयोगी कर्मचारियों ने आवश्यक सामग्री प्रदान करने में आत्मीय भाव से सहयोग दिया है ।

(1) इण्डियन कांउसिल ऑफ वर्ल्ड एफयर्स, सप्रू हाउस नयी दिल्ली ।

(2) इण्डियन कांउसिल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च, नयी दिल्ली ।

(3) इण्डियन डिफेस स्टडीज एण्ड एनालिसिस, नयी दिल्ली ।

(4) तीन मूर्ति भवन, नेहरू स्मृति पुस्तकालय, नयी दिल्ली ।

(5) संसद पुस्तकालय, संसद भवन, नयी दिल्ली ।

(6) जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय पुस्तकालय, नयी दिल्ली ।

(7) मेरठ विश्वविद्यालय पुस्तकालय, मेरठ ।

(8) मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़ ।

(9) दयानन्द वैदिक कालेज पुस्तकालय, उरई ।

(10) गाँधी महाविद्यालय पुस्तकालय, उरई ।

(11) डी. एस. कॉलिज पुस्तकालय अलीगढ़ ।

(12) आगरा कॉलिज पुस्तकालय आगरा ।

(13) बुन्देलखण्ड कॉलिज पुस्तकालय झाँसी ।

अनुक्रमाणिका

****
******
*****

मानचित्र

तालिकायें

भूमिका

भारत एवं श्रीलंका – मैत्रीय सम्बन्धों का महत्व

शान्ति एवं सुरक्षा सदैव मानव मूल्यों के पोषक तत्व रहे है तथा भविष्य में भी रहेंगें । समस्या कितनी भी कठिन अथवा जटिल क्यों न हो उसका समाधान शान्ति में ही निहित होता है, युद्ध में नहीं । महाशक्ति हो अथवा लघुशक्ति, निर्धन देश हो अथवा सम्पन्न देश, विकसित देश हो अथवा विकासशील देश सभी शान्ति एवं सुरक्षा के आकांक्षी होते हैं । वर्तमान परमाणु युग में युद्ध की विभीषिका के भीषण परिणाम अन्तर्राष्ट्रीय जगत में समस्त राष्ट्रों को मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की ओर प्रेरित करते हैं । प्रत्येंक राष्ट्र विशेष रूप से अपनी समस्त सीमाओं पर शान्ति एवं सुरक्षा का अभिलाषी होता है, इसलिये प्रत्येक राष्ट्र की विदेशनीति पड़ोसी देशों के प्रति निर्धारित की गयी नीति से ही प्रारम्भ होती है ।

भारत की प्राथमिकतायें प्रकृति द्वारा सुनिश्चित है । भारत की सुरक्षा के लिये अपने पड़ोसी देशों से मधुर सम्बन्ध रखना इसकी प्रमुख आवश्यकता है, जिससे एशिया का यह विशाल राष्ट्र युद्ध के तनाव से मुक्त होकर प्रगति के मार्ग की ओर अग्रसर हो सके । पकिस्तान, बंगलादेश, नेपाल, श्रीलंका, वर्मा, अफगानिस्तान एवं चीन से अच्छे सम्बन्ध रखना भारत के राष्ट्रीय हित में है, क्योंकि भारत की सुरक्षा एवं उसके हित इस क्षेत्र के भाग्य एवं भविष्य से जुड़े हैं । भारत की नीति इसी कारण सदा से ही शान्ति, सह-अस्तित्व एवं पड़ोसियों से मधुर सम्बन्ध रखने की रही है । प0 जवाहरलाल नेहरू ने भारत की विदेशनीति में सीमावर्ती देशों की महत्वपूर्ण स्थिति को स्वीकार करते हुये कहा था, "पड़ोसी देश हमारे मस्तिष्क में प्रथम स्थान रखते हैं ।" वे आगे कहते है, "दूसरा स्थान एशिया के अन्य देशों के लिये जाता है, जिसके साथ भारत घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है ।"[1]

भारत ने अपनी विदेशनीति निर्धारित करते हुये सदैव इस बात पर बल दिया है कि वह अपने पड़ोसी देशों के साथ सदैव मधुर सम्बन्ध रखने के लिये प्रयत्नशील रहेगा,

---

1. वी0 पी0 दत्त "इण्डियन फॉरेन पॉलिसी" पृष्ठ – 136

लेकिन भारत को अपनी इस सद्इच्छा की पूर्ति में सफलता प्राप्त नहीं हुयी है । वर्तमान समय में साम्यवादी चीन से भारत के सम्बन्धों का दारोमदार जहाँ एक ओर सीमा विवाद के प्रश्न पर निर्भर है, वहीं दूसरी ओर चीन एशिया में नेतृत्व की भावना के कारण भारत के प्रति प्रतिद्वन्दता की नीति अपनाकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सदैव भारत का विरोध करता है । पकिस्तान के विकृत एवं अक्रामक रवैये के कारण कश्मीर प्रकरण ने और अधिक विकराल रूप धारण कर लिया है । पाकिस्तान के अतिरिक्त स्थिति वहाँ अधिक बिगड़ गयी जहाँ इसके बिगड़ने की कम उम्मीद थी – इसका उदाहरण है भारत – नेपाल सम्बन्ध । व्यापार एवं पारगमन सन्धि के सन्दर्भ में भारत नेपाल सम्बन्धों में काफी गतिरोध उत्पन्न हो गये थे, जिसके परिणामस्वरूप वर्षों से चले आ रहे भारत एवं नेपाल के आदर्श मैत्रीय सम्बन्धों पर एक प्रश्न चिन्ह लग गया है । वर्तमान समय में नेपाल में श्री भट्टाराई के नेतृत्व में लोकतन्त्रीय शासन की स्थापना हो चुकी है तथा दोनों देश अप्रैल 1987 की स्थिति पर लौटने को प्रतिबद्ध हो चुके है, लेकिन पूर्व की भाँति सम्बन्धों का विकास आगामी समय पर निर्भर करता है । यह भविष्य के गर्भ में है कि नेपाल की आगामी दिनों में नीति कैसी होगी, क्योंकि वहाँ अन्तिरिम सरकार है तथा भारत विरोधी संगठन भी कमजोर नहीं है । बंगलादेश से भी भारत के सम्बन्ध सीमा विवाद, फरक्का जल विवाद एवं शरणार्थियों के आवागमन जैसी अनेक समस्याओं से घिरे हैं । आज वस्तुस्थिति यह है कि बंगलादेश से पाकिस्तान के सम्बन्ध भारत की अपेक्षा अधिक मधुर हैं । भूटान से भी भारत के रिश्तों में गतिरोध उत्पन्न हो गये हैं ।

श्रीलंका से भारतीय शान्ति सेना की वापसी के बाद भी दोनों देशों के बीच तमिल समस्या के समाधान की कोई आशाबादी किरण नहीं नज़र आ रही है । भारत इस बात के लिये सदैव प्रयासरत रहा है कि श्रीलंका में सभी तमिल गुटों के बीच आपसी समझ पैदा हो, जिससे तमिल बाहुल्य पूर्वोत्तर प्रान्त में हिंसा का ताण्डव न हो । श्रीलंका सरकार जहाँ एक ओर तमिलों की सुरक्षा की जिम्मेदारी लेने में अक्षम अथवा अनिच्छुक सी प्रतीत होती है,

वही दूसरी और तमिल उग्रवादी संगठन भी समस्या समाधान में कोई रूचि न रख कर हिंसात्मक गतिविधियों में लीन हैं । इसीकारण भारत एवं श्रीलंका के बीच घनिष्ठ मैत्रीय सम्बन्धों की स्थापना बहुत दूर का सपना लगता है । शान्ति एवं सहयोग भारत की विदेशनीति का आधार एवं इसकी आवश्यकता भी है, लेकिन फिर भी नियत का यह व्यंग है कि अपने किसी भी पड़ोसी देश के साथ भारत के सम्बन्ध घनिष्ठ मित्राता के नहीं है ।

भारत एवं श्रीलंका दक्षिण एशिया के दो पड़ोसी राष्ट्र हैं तथा दोनों देशों के आर्थिक, सामरिक एवं राजनैतिक हित समान है । दोनों ही देशों के लिये अपनी सामरिक आर्थिक, राजनैतिक एवं भावनात्मक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से परस्पर मैत्रीय सम्बन्ध बनाये रखना अपरिहार्य है ।

भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध वास्तव में ऐतिहासिक आवश्यकता के साथ भौगोलिक, सामरिक आर्थिक एवं भावनात्मक आवश्यकताओं की उपज है । श्रीलंका हिन्दमहासागर में भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के समीप स्थित एक छोटा सा द्वीप है, जो भारत से लघु समुद्री मार्ग पाक-जल संयोजक द्वारा विभाजित है । श्रीलंका की उत्तरी सीमा पर आदम सेतु स्थित है, जो श्रीलंका के तलाई मन्नार क्षेत्र को भारत के रामेश्वरम स्थान से छोटे-छोटे द्वीपों की कड़ी के माध्यम से जोड़ता है ।[1] भारत को अपनी दक्षिणी सीमा पर स्थायी शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना हेतु श्रीलंका के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना अनिवार्य है, क्योंकि श्रीलंका में किसी भी प्रकार की अस्थिरता भारत के दक्षिणी भाग विशेषत: तमिलनाडु को प्रभावित करती है । भारत के दक्षिणी भाग में होने वाली गतिविधियाँ भी प्रत्यक्ष रूप से श्रीलंका के उत्तरी-पूर्वी प्रान्त को प्रभावित करती है । दोनों देशों के मध्य यदि परस्पर अविश्वास, आशंका एवं कटुता की स्थिति रहती है तो दोनों ही देशों की एकता, अखण्डता एवं सार्वभौमिकता को कभी भी चुनौती उत्पन्न हो सकती है । अशान्त एवं अस्थिर श्रीलंका भारत की एकता एवं अखण्डता के

---

1. वाइनट फोल्हे "एक्रॉस द पाक स्ट्रेट" पृष्ठ - 150

लिये सदैव अहितकर होगा । भारत सरकार श्रीलंका की तमिल समस्या के समाधान हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रही है, लेकिन भारत ने श्रीलंका के उत्तरी–पूर्वी प्रान्त में पृथक तमिल ईलम की माँग का कभी भी समर्थन नहीं किया है । श्रीलंका के उत्तरी–पूर्वी प्रान्त में पृथक तमिल ईलम भारत के तमिलनाडु क्षेत्र में भी पृथकता के भाव उत्पन्न कर सकता है ।

भारत एवं श्रीलंका की भू–सामरिक आवश्यकतायें दोनों देशों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिय परस्पर मैत्रीय सम्बन्ध रखने के लिये बाध्य करती है । श्रीलंका को हिन्दमहासागर में महत्वपूर्ण केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है तथा यह अपने महत्वपूर्ण बन्दरगाह त्रिकोमाली एवं कोलम्बों सहित भारत भूमि के इतने समीप स्थित है कि यह भारत की सुरक्षा को सदैव प्रभावित करती है । त्रिकोमाली के सामरिक महत्त्व के कारण विश्व की समस्त महाशक्तियाँ श्रीलंका में सैनिक सुविधायें प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहती हैं । भारत की सुरक्षा के लिये यह आवश्यक है कि वह हिन्दमहासागर में किसी दूसरी शक्ति का प्रभुत्व कायम न होने दे अथवा हिन्दमहासागर पर नियन्त्रण रखने वाली शक्ति से उसके मैत्रीय सम्बन्ध हो । भारत को सुरक्षा के लिये हिन्दमहासागर के तटों की रक्षा आवश्यक है ।[1] श्रीलंका में किसी विदेशी शक्ति की उपस्थिति भारत की सुरक्षा के लिये सर्वथा घातक है । भारत त्रिकोमाली के उपभोग के सन्दर्भ में अत्यन्त सचेत रहता है, क्योकि भारत के पूर्वी क्षेत्र में कोई प्राकृतिक बन्दरगाह नहीं है । श्रीलंका के सामरिक महत्त्व को स्पष्ट करते हुये पूर्व नौसेनाध्यक्ष ने कहा था "श्रीलंका भारत के लिये सामरिक रूप से उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना आयर ब्रिटेन के लिये तथा ताईवान चीन के लिये । जब तक भारत के श्रीलंका के साथ तटस्थता अथवा मित्राता के सम्बन्ध हों तब तक भारत के लिये चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं है । लेकिन यदि श्रीलंका को किसी भारत के विरोधी शक्ति के अधीन जाने का भय है तो भारत अपनी सीमा पर असुरक्षा को सहन नहीं कर सकता है ।"[2]

---

1. डा० एन० के० श्रीवास्तव "भारत की विदेशनीति" पृष्ठ – 71
2. रवि कौल "द इण्डियन ओसन इण्डियन ओसन पावर राइवलरी" पृष्ठ – 66

अतः भारत अपनी सुरक्षा की दृष्टि के कारण श्रीलंका के साथ सदैव मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील रहता है । भारत का सदैव यह प्रयास रहता है कि उसका यह पड़ोसी देश कहीं विश्व की महाशक्तियों का शिकार न हो जाये, क्योकि संयुक्त राज्य अमेरिका डियागोगार्सिया पर अपना अधिपत्य स्थापित करने के बाद त्रिकोमाली पर दृष्टि लगाये है । डियागोगार्सिया से त्रिकोमाली की समीपता के कारण महाशक्तियाँ श्रीलंका को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर इस सामरिक उपनिवेश की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहती है । श्रीलंका में किसी विदेशी शक्ति की उपस्थिति के कारण यह द्वीप केवल भारत विरोधी गतिविधियों का केन्द्र नहीं रहेगा, वरन सम्पूर्ण दक्षिण एशिया की अशान्ति के लिये सैनिक पड़ाव बन जायेगा । परिणामस्वरूप श्रीलंका के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो जायेगा । भारत एवं श्रीलंका दोनों के सामरिक हित समान हैं । दोनों देशों की भू-सामरिक स्थिति दोनों देशों की एकता, अखण्डता एवं सार्वभौमिक सत्ता की रक्षा के लिये सुदृढ़ एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रखने के लिये मार्ग दर्शन कराती है ।

भारत अपने इस दक्षिणी पड़ोसी से अपने दूरगामी हितों को ध्यान में रखते हुये मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध चाहता है, क्योंकि श्रीलंका में उत्पन्न राजनैतिक अस्थिरता भारत के लिये अनेक समस्यायें उत्पन्न कर सकती हैं । श्रीलंका में अशान्ति एवं अस्थिरता के कारण अनेक तमिल श्रीलंका से भारतीय भू-भाग में आ जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप भारत पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक बोझ बढ़ जाता है । श्रीलंका में यदि अधिक समय तक अशान्ति एवं अस्थिरता बनी रहती है तथा स्थिति नियंत्रित नहीं होती तो यह द्वीप विदेशी हस्तक्षेप एवं भारत विरोधी गतिविधियों का आधार बन सकता है, जिसमें भारतीय सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो सकता है । भारत इसीकारण स्थायी एवं अखण्डित श्रीलंका का पक्षधर है तथा श्रीलंका में एकता एवं अखण्डता के स्थायित्व के लिये भारत निरन्तर प्रयत्नशील रहता है ।

भारत एवं श्रीलंका की आर्थिक स्थिति दोनों देशों को परस्पर मैत्रीय सम्बन्धों में वृद्धि के लिये प्रेरित करती है। प्राचीनकाल से ही श्रीलंका भारत पर आर्थिक रूप से निर्भर

रहा है । ब्रिटिश शासनकाल के पूर्व भारत श्रीलंका को सर्वाधिक खाद्य पदार्थ प्रदान करने वाला देश था । द्वितीय विश्वयुद्ध के समय श्रीलंका के आधे से अधिक आयात पर भारत का नियन्त्रण था ।[1] स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद श्रीलंका ने कुछ वस्तुओं का उत्पादन अपने देश में करके तथा कुछ वस्तुओं का आयात अन्य देशों से करके भारत की निर्भरता से मुक्त होने का प्रयास किया है, लेकिन फिर भी वर्तमान समय में श्रीलंका की भारत पर निर्भरता नकारने योग्य नहीं है ।

वर्तमान समय में भारत एक औद्योगिक राष्ट्र है । श्रीलंका को अपने देश में औद्योगिक वस्तुओं की पूर्ति के लिये अन्य देशों पर निर्भर रहना पड़ता है । भारत विभिन्न प्रकार की औद्योगिक वस्तुयें निर्मित करने तथा श्रीलंका को उचित मूल्य में प्रदान करने में सक्षम है । भारत की बनी हुयी अनेक प्रकार की औद्योगिक वस्तुयें श्रीलंका आयात करता है । श्रीलंका अपने औद्योगिक विकास एवं उत्पादन के लिये भी भारत पर निर्भर है । भारत ने श्रीलंका को अनेक प्रकार के अनुदान, ऋण एक मानवी सहयोग उसके औद्योगिक विकास हेतु दिया है । अतः श्रीलंका अपने औद्योगिक विकास हेतु तथा अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भारत से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखने के लिये वाध्य है तथा भारत को अपने यहाँ निर्मित सामान के लिये बाजार की आवश्यकता तथा अपने व्यापार में वृद्धि करने की प्रवृत्ति श्रीलंका से मधुर सम्बन्धों की स्थापना हेतु प्रेरित करती है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत एवं श्रीलंका के राजनैतिक सम्बन्धों में काफी उतार-चढ़ाब आया है, लेकिन दोनों देशों के आर्थिक सम्बन्ध लगभग समान ही रहे है । श्रीलंका की सम्प्रति आर्थिक स्थिति को समझाते हुये यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तनाव पूर्ण सम्बन्धों को सामान्य बनाने की पहल श्रीलंका की विवशता रही है ।

भारत एवं श्रीलंका के मध्य सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकरूपता भी दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्धों की अनिवार्यता में वृद्धि करती है । श्रीलंका के समस्त जातीय समुदाय मूल रूप से भारतीय हैं, जो भारत से ही जाकर वहाँ बसें हैं । श्रीलंका के समस्त लोग, उनके

---

1. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 156

धर्म, साहित्य एवं विचारों पर भारत एवं भारतवासियों की स्पष्ट छाप अंकित है ।[1] श्रीलंका का बहुसंख्यक सिंहली समुदाय भारत की आर्य प्रजाति का एक अंग है, जो पाँचवी सदी में उत्तर भारत से जाकर श्रीलंका में बसा था । सिंहलियों के श्रीलंका के दक्षिणी भाग में स्थापित होने के बाद द्रविण तमिलों ने दक्षिण भारत से श्रीलंका में प्रवेश किया था, इन दक्षिण भारतीय तमिलों का श्रीलंका में प्रवेश सिंहलियों पर आक्रमण के साथ प्रारम्भ हुआ था । ये तमिल श्रीलंका के उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में वहीं के निवासी के रूप में रहने लगे, इनको श्रीलंका के तमिलों की संज्ञा दी गयी ।[2] भारतीय तमिलों का श्रीलंका में प्रवेश ब्रिटिश शासनकाल में बगानों के श्रमिक के रूप में हुआ था । भारत एवं श्रीलंका के मध्य नागरिकता प्रदान करने की समस्या इन्ही भारतीय तमिलों की रही है । जातीय तत्व के कारण यद्यपि भारत श्रीलंका सम्बन्धों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है, लेकिन भारत श्रीलंका सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में जातीय तत्व के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है । वर्तमान समय में भी श्रीलंका के तमिल भावनात्मक रूप से तमिलनाडु के तमिलों से जुड़े हुये हैं, यदि श्रीलंका में तमिलों पर कोई अत्याचार होता है तो तमिलनाडु के लोग उस पर तुरन्त अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं । अतः दोनों देशों के व्यक्तियों के बीच भावनात्मक एकरूपता के कारण भी दोनों देशों के मध्य मधुर सम्बन्धों के स्थायित्व की आवश्यकता है ।

भारत एवं श्रीलंका के बीच धर्म, भाषा, साहित्य एवं कला की एकरूपता भी दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्धों का मार्ग प्रशस्त करती है । श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार भारतीय चक्रवर्ती सम्राट अशोक द्वारा किया गया था । बौद्ध धर्म भारतीय होने के कारण हिन्दू धर्म के समदर्शी है । भारत को हिन्दू धर्म श्रीलंका के अल्पसंख्यक तमिल समुदाय का धर्म है । श्रीलंका की भाषा, साहित्य एवं कला पर आज भी भारत की स्पष्ट छाप अंकित है । भारत एवं श्रीलंका के बीच तमिल समस्या के सन्दर्भ में अनेक विवाद होने के बाद भी श्रीलंका का सिंहली समुदाय आज भी अपने को भारतीय मानता है । श्रीलंका के सूचनामन्त्री

1. वाइनट कोल्हे "एकॉस द पाक स्ट्रेट" पृष्ठ - 1
2. धर्मदासनी "श्रीलंका एवं आइलैण्ड इन क्राइसिस" पृष्ठ - 45

ए० जे० रणसिन्हें के अनुसार "हम सब भारतीय हैं । हमारे शरीर में भारत का खून है । सुबह-शाम हम भारतीय भगवान बुद्ध की पूँजा करते हैं । चाहे भगवार बुद्ध हो अथवा अशोक सभी भारत के थे ।"[1] अत: दोनों देशों के बीच धर्म, भाषा साहित्य एवं कला की समरूपता दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्धों में बृद्धि की अनिवार्यता पर बल देती है ।

भारत दक्षिण एशिया का हृदय स्थल है, उसने विश्वराजनीति में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का जनक एवं नेता होने के कारण महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है । भारत एवं श्रीलंका दक्षिण एशिया के दो पड़ोसी राष्ट्र है तथा दोनों ही संयुक्त राष्ट्र संघ, राष्ट्रमण्डल, गुटनिपेक्ष आन्दोलन एवं दक्षेस जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के समान रूप से सदस्य है । भारत एवं श्रीलंका यदि दोनों ही संयुक्त रूप से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सहयोगी राष्ट्र के रूप में कार्य करे तो निश्चय ही दोनों राष्ट्र विश्वराजनीति में उपनिवेशवाद, जातिवाद, साम्राज्यवाद, रंगभेद एवं सैनिक गुटबन्दियों जैसी समस्याओं का प्रबल विरोध करते हुये गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों को और अधिक प्रभावी बना सकते है तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं राष्ट्रमण्डल जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर और अधिक प्रभवी भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं । भारत एवं श्रीलंका के सकारात्मक सहयोग से ही दक्षिण एशियायी क्षेत्रीय सहयोग संगठन और अधिक सशक्त हो सकता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह सकता है ।

वर्तमान समय में हिन्दमहासागर विश्व की महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा का केन्द्र बना हुआ है । समस्त महाशक्तियाँ हिन्दमहासागर में सैनिक सुविधायें प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहती है । हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा के कारण इसके तटीय राष्ट्रों की विशेषात: भारत एवं श्रीलंका की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया है । भारत एवं श्रीलंका ने यद्यपि हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग संयुक्त रूप से अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर की है, लेकिन महाशक्तियों की नीति से प्रभावित होने के कारण दोनों ही देशों द्वारा इस क्षेत्र में कोई विशेष सकारात्मक प्रयास सम्भव नहीं हो सका है । अत:

---

1. रविवार 30 से 5 अगस्त 1989 पृष्ठ - 26

आवश्यकता इस बात की है कि दोनों मित्र राष्ट्र महाशक्तियों की नीति में प्रभावित हुये बिना इस क्षेत्र में सकारात्मक प्रयास करें, क्योंकि हिन्दमहासागर पर भारत एवं श्रीलंका दोनों की ही सुरक्षा निर्भर करती है । दोनों देशों के सक्रिय प्रयास हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करवाने में सहयोग देगा तथा विश्व समस्याओं के समाधान में दोनों देशों का सकारात्मक दृष्टिकोण दक्षिण एशिया की प्रतिष्ठा में बृद्धि करेगा ।

भारत का अपने पड़ोसी देशों के प्रति सदैव ही सहयोगात्मक एवं सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रहा है, अक्रामक कभी नहीं और न ही विश्व के इस सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश ने अपने छोटे पड़ोसी देशों को आंतकित करने का प्रयास किया है । कभी–कभी विश्व की महाशक्तियों की कूटिनीति के कारण तथा कभी श्रीलंका एवं नेपाल जैसे छोटे पड़ोसी देशों में अपनी अस्मिता की रक्षा की भावना के कारण दोनों पड़ोसी देशों से मतभेद उत्पन्न होते रहे है। भारत श्रीलंका सम्बन्ध भी इन मतभेदों से अछूते नहीं रहें हैं ।

वास्तव में भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध केवल भावनात्मक न होकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की माँग है, किन्तु फिर भी आज दोनों देश परस्पर अविश्वास से घिरे हैं । तमिल समस्या के कारण दोनों देशों के मध्य अत्यन्त कटुता उत्पन्न हो गयी है, किन्तु यह स्थिति दोनों ही देशों के लिये घातक होगी भारत को श्रीलंका की तमिल समस्या के समाधान का प्रयास श्रीलंका के विभिन्न तमिल गुट एवं श्रीलंका सरकार को विश्वास में लेकर करना चाहिये । इस समस्या को द्विपक्षीय वार्ताओं एवं परस्पर विश्वास के आधार पर सुलझाना चाहिये । अब भी एक–दूसरे के प्रति विश्वास अर्जित किया जा सकता है, लेकिन यह कार्य तुच्छतापूर्ण मित्रता के आधार पर नहीं, वरन् आपसी सहयोग एवं समझदारी द्वारा सम्भव है । दोनों देशों की आन्तरिक शान्ति एवं वाहय सुरक्षा की समस्या के समाधान के लिये आपसी सहयोग, विश्वास एवं सदभावना की आवश्यकता है । दोनों देशों की आर्थिक एवं व्यापारिक स्थिति परस्पर सहयोग की आकांक्षी है । दोनों देशों की समस्याये

अपने समाधान के लिये भारत श्रीलंका मैत्रीय सम्बन्धों का आवाहन करती है । आंतरिक एवं वाहय सीमाओं पर शान्ति एवं सुरक्षा पर ही विकासशील राष्ट्रों की प्रगति निर्भर है । श्रीलंका में वास्तविक शान्ति एवं सदभावना तभी स्थापित हो सकेगी जब श्रीलंका की जनता अपने को घृणा, विद्वेश एवं आतंकबाद की विरासत से मुक्त करेगी तथा श्रीलंका की सरकार समस्या समाधान हेतु निष्पक्ष नीति का अबलम्बन करेगी । मैत्रीय एवं सदभाव की मानसिकता श्रीलंका में भारत की भूमिका का प्रमुख भाग है ।

वास्तव में श्रीलंका भारत के लिये उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना महत्त्वपूर्ण श्रीलंका के लिये भारत है । भारत एवं श्रीलंका दोनों की प्रगति एवं समृद्धि के लिये आवश्यक है कि दोनों देश एक दूसरे की प्रगति एवं समृद्धि में पहलं से अधिक रूचि ले तथा दोनों देश अपनी आपसी समस्याओं का समाधान परस्पर विश्वास एवं सहयोग के आधार पर करे । भूगोल ने हमें पड़ोसी बनाया है, इतिहास ने हमें मित्र, अर्थशास्त्र हमें परस्पर की अर्थव्यवस्था में भागीदार बनाता है तथा हमारी आवश्यकतायें हमें स्थायी मित्र बनने के लिये प्रेरित करती हैं ।

****

प्रथम अध्याय

भारत श्रीलंका सम्बन्धों की आधारभूमि

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के परिचालन में ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामरिक, प्रजातीय एवं सांस्कृतिक तत्व महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र अन्य दूसरे राष्ट्रों से अपनी भू-सामरिक स्थिति, आर्थिक एवं राजनीतिक हित तथा सांस्कृतिक एकरूपता के आधार पर सम्बन्धों का निर्धारण करता है । भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों की पृष्ठभूमि भी ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामरिक, प्रजातीय एवं सामरिक तत्वों पर आधारित है । भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के अति समीप स्थित श्रीलंका द्वीप के इतिहास को भारत ने प्रारम्भ से ही प्रभावित किया है । श्रीलंका की समस्त प्रजातियाँ मूल रूप से भारतीय है तथा श्रीलंका की अर्थव्यवस्था भारतीय मानवीय तत्वों द्वारा पुष्पित एवं पल्लवित होती रही है । श्रीलंका के व्यक्ति उनके रीतिरिवाज, साहित्य कला एवं धर्म आदि पर भारत एवं भारतवासियों की स्पष्ट छाप अंकित है । श्रीलंका ने भी अपनी हिन्दमहासागर में केन्द्रीय स्थिति के कारण समुद्री एवं वायु मार्ग द्वारा भारत की प्रतिरक्षा को प्रारम्भ से ही प्रभावित किया है । अतः भारत एवं श्रीलंका ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामरिक प्रजातीय एवं सांस्कृतिक रूप से परस्पर अन्योनाश्रित है ।

ऐतिहासिक तत्व

प्रत्येक देश का इतिहास उसके राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन के आपसी सम्बन्धों एवं उसके उत्पान-पतन का क्रमबद्ध ज्ञान होता है, जो भावी पीढ़ियों के श्रेष्ठ जीवन के लिये प्रकाशपुन्ज बनकर मार्गदर्शन करता है । अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के परिचालन में विभिन्न देशों की विदेशनीत एवं उनके अन्य दशों के साथ सम्बन्धों के निर्धारण करने में इतिहास एवं तत्कालीन परिस्थितियाँ विशेष रूप से प्रभावित करती है । भारत श्रीलंका सम्बन्धों की प्रष्ठभूमि में भी ऐतिहासिक तत्व महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध अनादिकाल से रहे है । भारत के महाकाव्य "रामायण" में श्रीलंका का वर्णन सोने की लंका एवं रावण के राज्य के रूप में वर्णित है । श्रीलंका की उत्तरी सीमा पर आदम सेतु स्थित है, जो श्रीलंका के तलाईमान्नार क्षेत्र को भारत के रामेश्वरभ स्थान से छाटे-छोटे द्वीपों की कड़ी के माध्यम से जोड़ता है । प्राचीन हिन्दु जनश्रुति से अनुसार आदम सेतु को भगवान श्रीराम के सेतु की संज्ञा दी जाती है । दोनों ही देश के व्यक्ति इस समुद्र स्थल को पवित्र स्थान मानते है।[1] विद्वानों में इस विषय पर यद्यपि गम्भीर मतभेद है कि रावण जिस लंका का राजा था, वह श्रीलंका ही थी या उसकी स्थिति अन्यत्र कहीं थी । श्रीलंकावासी भी राम एवं रावण को पूर्णतः नकारते है । सम्पूर्ण श्रीलंका में राम एवं रावण का मात्र एक मन्दिर है, लेकिन इसमें संदेह नही कि श्रीलंका भारत का सर्वाधिक प्राचीन उपनिवेश है तथा ईस्वी सन् के प्रारम्भ के कई सदी पहले भारतियों ने अपना राज्य वहाँ स्थापित कर लिया था ।

श्रीलंका अपने अस्तित्व काल से ही ऐतिहासिक रूप से भारत से सम्बन्धित रहा है । महावंशा[2] में वर्णित श्रीलंका के इतिहास के अनुसार-श्रीलंका नामक द्वीप का इतिहास भारतीय राजकुमार विजय एवं उनके सात सौ अनुयाइयों द्वारा इस द्वीप में पांचवी सदी ईसा पूर्व में प्रदेश

1, वाइनट कोले "एक्रास द पाक स्ट्रेट" प्रष्ठ 153

2. महावंशा - यह पालि भाषा का एकग्रन्थ है, जिसमें श्रीलंका का प्राचीन इतिहास संकिलित है इसे छटी सदी में महानाम द्वारा लिपिवद्ध किया गया था ।

के साथ प्रारम्भ होता है । राजकुमार विजय को अपने राज्य सिंहापुरा (उत्तर भारत) से कानून तोड़ने के अपराध में अपने पिता सिंहवाहू द्वारा देश निकाला दे दिया गया था । राजकुमार विजय ने वुद्ध परिर्निवन के दिन इस द्वीप में प्रवेश किया।[1]

पाँचवी सदी ईसापूर्व श्रीलंका में सभ्यता एवं संस्कृति का विकास नहीं हुआ था । व्यक्ति शिकार तथा फल आदि के संचय से अपने जीवन का निर्वाह किया करते थे, उनके कुछ हजार वंशज वर्तमान समय में भी श्रीलंका में है जिन्हें वेद्दा की संज्ञा दी जाती है । भारतीय उपनिवेश की स्थापना की थी ।

श्रीलंका की प्राचीन जनश्रुति के अनुसार राजकुमार विजय के साथ केवल पुरूष ही श्रीलंका गये थे, इसलिये राजकुमार विजय ने समुद्र पार के एक राजा से अनुरोध किया कि वह एक हजार परिवारों को श्रीलंका में बसाने के लिये श्रीलंका भेज दे । राजा ने यह बात स्वीकार कर ली तथा कुछ परिवारों को श्रीलंका भेज दिया, जिन परिवारों को श्रीलंका भेजा गया उनमें बहुत सी कुमारियाँ भी थी । विजयसिंह तथा उसके अनुयाइयों ने इन कुमारियों से विवाह कर लिया । समुद्र पार के जिस राज्य से ये परिवार श्रीलंका गये थे उसकी स्थिति दक्षिण भारत में ही रही होगी । इस प्रकार श्रीलंका में दक्षिण भारत के लोगों का प्रवेश हुआ ।

महावंशा के अनुसार विजयसिंह के कोई सन्तान नही थी, इसलिये उसने अपने शासनकाल के अन्तिम दिनों में अपने भाई को श्रीलंका का राज्य सभांलने के लिये आमंत्रित किया । विजयसिंह का भाई तो स्वदेश छोड़ कर नहीं जा सका, लेकिन उसने अपने पुत्र पाण्डु वासुदेव को श्रीलंका भेजा । पाण्डु वासुदेव ने सर्वप्रथम श्रीलंका के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र के गोकन्ना (त्रिकोमाली) स्थान पर अपने बत्तीस अनुयाइयों सहित प्रवेश किया तथा विजय राजवंश को आगे बढ़ाया।[2] विजय राजवंश के बाद देवनामपियतिस्स ने श्रीलंका में शासन किया । देवनामपियतिस्स भारतीय सम्राट अशोक का समकालीन था, जो श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रथम परावर्तक राजा था । देवनामपियतिस्स ने भारतीय सम्राट अशोक के पास विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य उपहारों के साथ

1. डी० सिल्वा "हिस्ट्री आफ श्रीलंका" पृष्ठ – 1

2. वही

एक दूत मण्डल भेजा । सम्राट अशोक ने उस दूत मण्डल को विदा करते हुये एक संदेश में कहा, "मै बुद्ध की शरण में चला गया हूँ। मै संघ की शरण में चला गया हूँ । मैने शाक्यमुनि का उपासक होने का व्रत ले लिया है । तुम भी इस बुद्ध, धम्म एवं संघ के त्रिरत्न का आश्रय लो बुद्ध की शरण में आने का निश्चय करो।"[1]

सम्राट अशोक का सन्देश प्राप्त करने के उपरान्त श्रीलंका का राजा बौद्ध धर्म से विशेष अनुराग रखने लगा था । श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्रा एवं पुत्री संघमित्रा के द्वारा देवनामपिय तिस्स के समय किया गया[2] सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र ने श्रीलंका के राजा को "चूलहत्थिदोपम" का उपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर तिस्स ने चालीस हजार व्यक्तियों के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा गृहण की, इसी के साथ श्रीलंका में बौद्ध धर्म की जड़े स्थापित हुयी । महेन्द्र के श्रीलंका जाने के उन्नीस वर्ष बाद सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा अपने साथ एक वोधिवृक्ष (जिसके नीचे भगवान बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था) की शाखा लेकर श्रीलंका में बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु गयी । इस बोधि वृक्ष को श्रीलंका की तत्कालीन राजधानी अनुराधापुर में एक बड़े समारोह के साथ आरोपित किया गया । श्रीलंका की राजकुमारी अनुला ने पाँच सौ राज कन्याओं एवं पाँच सौ अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ संघमित्रा से प्रवज्या गृहण की[3]। इसी काल में श्रीलंका में अनेक बौद्ध विहारों एवं बौद्ध संघो की स्थापना की गयी तथा श्रीलंका के राजाओं ने इसी काल स बौद्ध धर्म एवं बौद्ध संघ की रक्षा करना प्रारम्भ कर दिया । इस समय भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध मित्रतापूर्ण थे।[4]

तिस्स राजवंश के समय से ही श्रीलंका पर दक्षिण भारत के राजाओं द्वारा आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे । दक्षिण भारत के ये आक्रमणकारी हिन्दू द्रविणियन थे, अनेक बार इन तमिल राजाओं के अपने अभियानों मे सफलता भी प्राप्त हुयी तथा इन राजाओं ने श्रीलंका के उत्तरी भाग पर विजय प्राप्त की । तमिल शासकों में एलार नामक राजा का नाम उल्लेखनीय है,

1. सत्यकेतु विद्यालंकार"दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति" पृष्ठ – 302
2. वाइनट कोले "एक्रास द पाक स्ट्रेट" पृष्ठ – 9
3. सत्यकेतु विद्यालंकार "दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति" पृष्ठ – 302
4. वाइनट कोले " एक्रास द पाक स्ट्रेट" पृष्ठ – 9

वह बहुत शक्तिशाली राजा था । उसने श्रीलंका के उत्तरी भाग सहित अनुराधापुर में अपना शासन स्थापित किया तथा चौदह वर्ष तक राज्य किया । इसी समय दक्षिण श्रीलंका में दुठठूगमणी नामक सिंहली शासक था, जो एलार के अधीन नही था । दुठठूगमणी ने "एलार" को पराजित करके श्रीलंका में पुनः एकता स्थापित की तथा अनुराधापुर पर शासन किया।[1] दुठठूगमणी का एलार के विरूद्ध युद्ध तमिल एवं सिंहलियों के युद्ध के समान था जो उसने बौद्ध धर्म की रक्षा के लिये किया था । दुठठूगमणी ने बौद्ध धर्म को उत्कर्ष करने के लिये अनेक महत्त्वपूर्ण कार्या किये । उसके द्वारा श्रीलंका में सबसे बड़ा स्तूप रत्नमाल्य चैत्य बनवाया गया[2] दुठठूगमणी के बाद श्रीलंका के राजसिंहासन पर अनेक राजाओं द्वारा राज्य किया गया, जिनका इतिहास महावंशा में वार्णित है, लेकिन सभी का वर्णन करना असम्भव है ।

महावंशा के अनुसार अनुराधापुर के गजवाहू नामक सिंहली शासक ने दक्षिण भारत के चोलवंश पर भी आक्रमण किये थे । गजवाहू ने दक्षिण भारत में अग्रसर होते हुये तिरूचरापुल्ली के समीप उरपुर पर विजय प्राप्त की तथा कुछ समय तक शासन किया, इसके उपरान्त गजवाहू ने चोलराजवंश से सन्धि कर ली तथा श्रीलंका में अनेक हिन्दू मन्दिरों का निर्माण किया गया । चोल राजवंश के साथ श्रीलंका के सिंहली शासकों के सम्बन्ध अधिक समय तक मित्रतापूर्ण नहीं रहे । दक्षिण भारत के चोल राजाओं ने पुनः श्रीलंका पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये । नवी सदी में दक्षिण भारत के पाण्डव राजवंश के राजा श्री बल्लभ ने श्रीलंका के शेनशेलमेघ राज्य पर आक्रमण कर दिया तथा विजय प्राप्त की । श्रीलंका ने भी शीघ्र ही अपने आक्रमण का प्रतिशोध ले लिया, लेकिन इसी समय दक्षिण भारत में चोल राज्य पुनः शक्तिशाली हो रहा था । चोल राजा ने पाण्डव राजा को जीत कर पुनः श्रीलंका के उत्तरी भाग पर आक्रमण किया तथा श्रीलंका के तत्कालीन राजा उदय चतुर्थ को परास्त करके श्रीलंका के उत्तरी प्रदेशों पर अधिपत्थ स्थापित किया।[3]

नवी सदी के अन्त में राष्ट्रकूटोंने श्रीलंका पर आक्रमण किया, जिसमें वहाँ के तत्कालीन

1. पी रामा स्वामी "न्यू दिल्ली एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ – 6
2. सत्यकेतु विद्यालंकार "दक्षिण एवं दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति" पृष्ठ – 303–309
3. वही ।

शासक चोल राजावंश के परान्तक प्रथम को श्रीलंका छोड़ कर जाना पड़ा । परान्तक प्रथम के उत्तराधिकारी अत्यन्त प्रतापी थे उन्होनें पुनः उत्तरी श्रीलंका पर विजय प्राप्त की राज-राज प्रथम के बाद राजेन्द्र (1012 - 1044) चोल साम्राज्य का स्वामी बना तथा उसने श्रीलंका के दक्षिणी भाग को भी जीत लिया एवं "पोलन्तरूवम" को अपनी नयी राजधानी बनाया । ग्यारहवी सदी तक श्रीलंका में चोल साम्राज्य का प्रभुत्व रहा । ये सभी राजा हिन्दू धर्म के अनुयायी थे।[1] श्रीलंका पर तीसरी सदी से ही दक्षिण भारतीय राजाओं ने आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये थे, किन्तु चोलों से पहले किसी भी राजा ने स्थायी रूप से श्रीलंका पर अधिकार नहीं किया था ।

ग्यारहवीं सदी के अन्त में सिंहली राजा विजयवाहू ने अपने को चोलों की अधीनता से स्वतन्त्र कराया तथा "पोलन्नरूवम" को अपनी राजधानी बनाया । विजयवाहू ने पोलन्नरूवम का नाम विजयराजपुर के रूप में परिभित कर दिया । विजयवाहू के उत्तराधिकारी पराक्रमवाहू ने भारत तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के कम्बुज देश पर आक्रमण किये । पराक्रमबाहू के उत्तराधिकारी आयोग्य एवं निर्वल थे, जिसके कारण श्रीलंका में तेरहवी सदी से सोलहवी सदी तक अशान्ति एवं अव्यवस्था रही।[2] नरेन्दसिम्हा कैण्डी का अन्तिम सिंहली राजा था । नरेन्द्रसिम्हा की रानी भारतीय थी । नरेन्द्रसिम्हा की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी के भाई ने कण्डयन की राजगद्दी पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया तथा श्रीलंका में नायकर राजवंश स्थापित किया । कैण्डी पर नायकर राजवंश ने एक शताब्दी तक राज्य किया ।

सोलहवी सदी में श्रीलंका में पश्चिमी शक्तियों का प्रवेश प्रारम्भ हो गया । पुर्तगालियों एवं डचों का प्रवेश श्रीलंका में लगभग एक ही समय हुआ । 1505 में इस द्वीप में पुर्तगालियों के आगमन से योरोपीय अधिपत्य क्रमशः स्थापित होता गया । 1552 में पुर्तगालियों से लंका के राजा के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुये । पुर्तगालियों ने बहुत से व्यक्तियों को ईसाई बना लिया था । सोलहवी सदी के अन्त तक पुर्तगालियों ने पूर्ण रूप से श्रीलंका में अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया था।[3]

1. सत्यकेतु विद्यालंकार "दक्षिण एवं दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति" प्रष्ठ - 303-309
2. वही ।
3. वही ।

सत्रहवी सदी में पुर्तगालियों की शक्ति क्षीण होने लगी तथा पुर्तगालियों का स्थान डचों ने ले लिया । 1654 से 1658 तक डचों ने जाफना सहित अनेक पूर्वी प्रान्तों को पुर्तगालियों से छीन लिया तथा वहाँ के राजनैतिक जीवन पर अपना प्रभाव स्थापित किया । 1715 में अंग्रेजों ने मद्रास से सेना भेजकर डचों पर विजय प्राप्त की तथा मद्रास से ही श्रीलंका के प्रशासन का संचालन किया । 1815 में श्रीलंका के अन्तिम शासक विक्रमजीत सिंह को निर्वासित कर अंग्रेजों ने श्रीलंका पर शासन करना प्रारम्भ कर दिया । श्रीलंका में भी भारत के समान ब्रिटिश उपनिवेश था । ब्रिटिश लोग पाक-जलसंयोजक के दोनों ओर समान रूप औपनिवेशिक शक्ति का प्रयोग करते थे।[1]

अंग्रेजों के आगमन के समय श्रीलंका की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी । इसी समय योरोपीय बाजार में चाय एवं काफी की माँग बहुत बढ़ रही थी । श्रीलंका में श्रमिकों का काफी अभाव था, इसलिये अंग्रेज भारत के मद्रास प्रान्त में भारतीय श्रमिकों को चाय के बगानों में कार्य करने के लिये ले गये परिणामस्वरूप श्रीलंका के चाय उत्पादन में बृद्धि हुयी तथा वहाँ की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने लगी । 1931 तक भारतीय श्रमिकों को श्रीलंका में समान अधिकार प्राप्त थे । 1935 से ही भारतीय श्रमिकों के साथ भेद भाव प्रारम्भ कर दिया गया । भारतीय राजनीतिज्ञ प्रारम्भ से ही बगानों के मजदूरों की स्थिति में सुधार के लिये प्रयत्नशील रहे । भारत एवं श्रीलंका के मध्य राजनयिक संवाद सर्वप्रथम 1940 में सम्पन्न हुआ – जिसके प्रमुख विषय थे गैर कानूनी आव्रजन एवं भारतीय वंशजों की नागरिकता।[2]

ब्रिटिश शासनकाल में भारत एवं श्रीलंका की अपनी कोई प्रथक विदेशनीति नही थी, लेकिन दोनों ही देशों की राष्ट्रीय आकांक्षायें साम्राज्यबाद एवं उपनिवेशबाद बिरोधी थी । 1946 में अन्तःकालीन सरकार की स्थापना के बाद ही भारत ने समस्त देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया।[3] 1947 में भारत एवं श्रीलंका दोनों देशों ने एशियायी देशों के शिखर सम्मेलन में भाग लिया ।

1. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर 1988
2. दिनमान अगस्त 1983
3. दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ – 189

भारत एवं श्रीलंका दोनों ने लगभग साथ-साथ स्वतन्त्रता प्राप्त की । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दोनों देशों ने ऐसे राष्ट्र के रूप में जन्म लिया जिनके नये राष्ट्र को निर्मित करने के लिये समान विचार थे । भारत एवं श्रीलंका दोनों की विदेशनीति साम्राज्यबाद एवं उपनिवेशबाद विरोधी है । दोनों देशों में एक दूसरे की सम्प्रभुता के प्रति सम्मान एवं प्रथक रूप से अपनी राष्ट्रीयता प्रदर्शित करने का भाव निहित है ।

अतः स्पष्ट है कि भारत एवं श्रीलंका अति प्राचीन काल से एक दूसरे से सम्बन्धित रहे है । श्रीलंका के समस्त व्यक्ति चाहे वे तमिल हो अथवा सिंहली मूल रूप से भारतीय है । भारत ने श्रीलंका के इतिहास को प्रारम्भ से प्रभबित किया है । भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों की प्रष्ठभूमि में ऐतिहासिक तत्व ने विशेष भूमिका का निर्वाह किया है ।

भौगोलिक तत्व

भूगोल एक राज्य के लिये अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सामरिक आवश्यकताओ, व्यवसायिक हितों आपसी सम्बन्धों अन्तर्राष्टीय सगठनो की सदस्यता विभिन्न अन्तर्राष्टीय मचो सयुक्त राष्ट्र सघ और इसके विशष सगठना स सम्बन्धा को निर्धारित करने म महत्वपूर्ण स्थान रखता है।[1] कोई भी राष्ट अन्तर्राष्टीय राजनीति मे भौगोलिक परिस्थितियो का तिरस्कार करके अपने राष्टीय हितों की सुरक्षा नही कर सकता । भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में भौगोलिक तत्व दोनों ही देशों क राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

प्रकृति ने भारत को एशिया महाद्वीप के दक्षिण में हिन्दमहासागर पर अरब प्रायद्वीप एवं हिन्दचीन प्रायद्वीप के मध्य केन्द्रीय स्थिति प्रदान की है । उत्तर दिशा में नागाधिराज हिमालय ने भारत की सीमा का निर्धारण किया है । श्रीलंका भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के समीप आम के आकार का एक द्वीप है । यह द्वीप भारत में लघु समुद्री मार्ग पाक – जल संयोजक[2] द्वारा विभाजित है श्रीलंका किसी समय दक्षिण भारत के ऊपर का एक भाग था । श्रीलंका की उत्तरी एवं उत्तरी पश्चिमी सीमा भारत के अति समीप स्थित है । आदम पुल नामक जलमग्न कोरल चट्टानों का एक समूह अब भी श्रीलंका के तलाइमन्नार क्षेत्र को भारत के रामेश्वरम स्थान से जोड़ता है । प्राचीन हिन्दू जनश्रुति के अनुसार आदम सेतु को भगवान राम के सेतु की संज्ञा दी जाती है । दोनों ही देशों के व्यक्ति इस समुद्र स्थल की त्रिवेणी या पवित्र स्थान मानते है।[3]

भू–वैज्ञानिक रचना के प्रमाण सिद्ध करते है कि श्रीलंका भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप का एक अंग रहा है । गोडवाना स्थल के खण्डित होने तथा वहन के फलस्वरूप आज श्रीलंका पाक – जलसंयोजक द्वारा भारत से विभाजित हो गया है । भू–वैज्ञानिक सरंचना में ही नहीं, वरन जलवायु, वनस्पति तथा मिट्टी के स्वभाव में भी दक्षिण भारत एवं श्रीलंका के क्षेत्र में समानता पायी जाती है ।

---

1. एस0 एस0 विन्द्रा "डिटरमिनेशन आँफ पकिस्तान फाँरन पालिसी" प्रष्ठ – 34

2. पाक – जलसंयोजक – यह एक जल स्त्रोत है, जिसका नाम मद्रास के गर्वनर रावर्ट पाक के नाम पर पड़ा था ।

3. वाइनट कोले "एक्रास द पाक स्ट्रेट" प्रष्ठ 5– 153
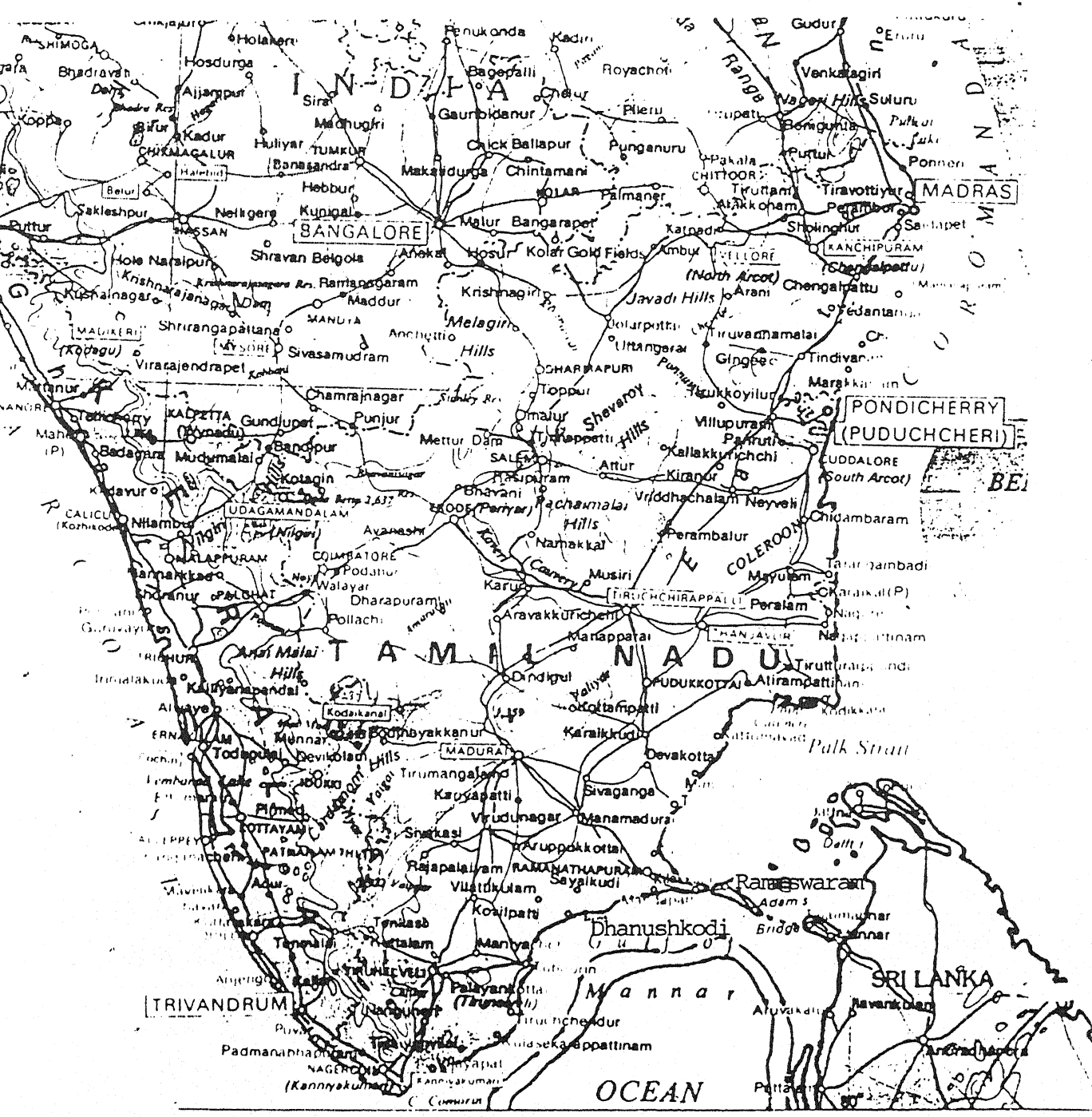
भारत एवं श्रीलंका की भौगोलिक समीपता

श्रीलंका की भौगोलिक संरचना काफी कुछ दक्षिण भारत के समान है । जाफना प्रायद्वीप एवं उत्तरी पश्चिमी तट को छोड़कर अधिकांश देश की संरचना में भारत के समान काथान्तरित पूर्व केम्ब्रियन शैलों का महत्व है । तामलनाडु एवं उड़ीसा के समान खण्डेलाइट शैलों के क्रम इस द्वीप में रीढ़ के मान स्थित है।[1] श्रीलंका की भारत के समान भौगोलिक संरचना से यह प्रमाणित होता है कि श्रीलंका भारत का विभाजित भाग है ।

आकार की दृष्टि से श्रीलंका भारत का पचासवाँ भाग तथा जनसंख्या की दृष्टि से सेतालिसवाँ भाग है।[2] भारत का क्षेत्रफल 32,87,782 वर्ग किमी है तथा श्रीलंका का क्षेत्रफल 65,610 वर्ग कि0 मी0 है । आकार सम्बन्धी विविधता के होते हुये भी भौगोलिक समीपता के कारण भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध अन्योनाश्रित है । भौगोलिक समीपता के कारण ही श्रीलंका के इतिहास को भारत ने सदैव प्रभावित किया । श्रीलंका की कला साहित्य एवं धर्म पर भारत एवं भारतवासियों की स्पष्ट छाप अंकित है । दक्षिण भारत से अनेकबार श्रीलंका पर आक्रमण होने से वहाँ की भौतिक सभ्यता सदैव प्रभावित होती रही है । भौगोलिक समीपता के कारण ही भारतीय मानवीय तत्वों ने श्रीलंका की अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है ।

श्रीलंका को हिन्दमहासागर में महत्वपूर्ण केन्द्रीय स्थिति प्राप्त होने तथा भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के अति समीप स्थित होने के कारण यह द्वीप भारत की प्रतिरक्षा के लिये सदैव महत्त्वपूर्ण रहा है । प्राचीन काल से ही व्यापार, वाणिज्य एवं सामरिक महत्त्व के कारण श्रीलंका ने महत्वाकाक्षी अक्रामक शक्तियों को सदैव अपनी ओर आकर्षित किया है।[3] प्राचीन काल में ग्रीक रोमन तथा अरबी लोग पूर्वी एशिया से व्यापार करने के लिये इस द्वीप से होकर गुजरते थे । स्वेज नहर मार्ग खुल जाने पर पश्चिमी योरोप एवं आस्ट्रेलिया के मध्य यह द्वीप मार्ग में पड़ता है।[4] पूर्व से पश्चिम को सम्बद्ध करने वाले सभी जल एवं वायु, मार्ग इस द्वीप से होकर गुजरते है । सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में समुद्री यातायात की दृष्टि से श्रीलंका की भौगोलिक

---

1. डा0 वी0 एस0 चौहान – एशिया का प्रायेशिक भूगोल – प्रष्ठ – 19
2. रविकान्त दुवे – इन्डिया श्रीलंका रिलेसन्स – प्रष्ठ 98
3. वाइनट कोले – एक्रास द पाक स्ट्रेट – प्रष्ठ ।
4. डा0 पी0 एस0 चौहान – एशिया का प्रादेशिक भूगोल – प्रष्ठ 490

स्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है ।

श्रीलंका का त्रिकोमाली बन्दरगाह दक्षिण एशिया का सर्वश्रेष्ठ बन्दरगाह है । त्रिकोमाली का इतिहास उसकी भौगोलिक स्थिति से बहुत नजदीक से जुड़ा है । यह श्रीलंका की राजनीति और भारत की श्रीलंका के उत्तरी पूर्वी राज्यों से सम्बद्ध सभी जातिगत समस्याओं की जटिलता का प्रतिनिधित्व करता है । त्रिकोमाली के सामरिक महत्त्व के कारण विश्व की समस्त महाशक्तियाँ श्रीलंका में सैनिक अड्डे निर्मित करने के लिये प्रयत्नशील रहती है । श्रीलंका की हिन्दमहासागर में केन्द्रीय स्थिति तथा भारत एवं श्रीलंका की भौगोलिक समीपता के कारण श्रीलंका में किसी विदेशी शक्ति की उपस्थिति भारत की प्रतिरभा के लिये सदैव अहितकर होगी ।

भारत – श्रीलंका सम्बन्धों के निर्धारण में भौगोलिक समीपता दोनों देशों के मध्य, ऐतिहासिक, सास्कृतिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक रूप से प्रभावपूर्णा सम्बन्ध स्थापित करने के साथ ही कभी–कभी विवाद का कारण भी रही है ।

भारत एवं श्रीलंका के बीच भौगोलिक रूप से कच्छतिवु विवाद का कारण रहा है । कच्छतिवु भारत एवं श्रीलंका के समुद्री तटों के बीच दो सौ एकड़ का एक छोटा सा द्वीप है जिसके आस–पास मछुआरे मछली पकड़ते है । भारत एवं श्रीलंका दोनों ही इस भूखण्ड पर अपना अधिपत्य जताते थे तथा कुछ समय के लिये इस सन्दर्भ में दोनो देशों के मध्य विवाद भी उत्पन्न हुआ, लेकिन भारत ने एक बड़े पड़ोसी देश की भूमिका का निर्वाह कनते हुये इस छोटे से द्वीप के कारण विवाद को सीचना उपयुक्त नहीं समझा तथा 1974 में एक समझोते के अनुसार कच्छतिबु श्रीलंका को दे दिया ।

भारत श्रीलंका सम्बन्धों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तमिल समस्या भी भौगोलिक समीपता के कारण प्रभावित होती रही है । भौगोलिक समीपता के कारण श्रीलंका के शरणार्थी किसी प्रकार के आतंक एवं अत्याचार के भय से पाक जलसंयोजक को पार करके भारत आते रहते है, जिसके परिणामस्वरूप भारत सरकार के समक्ष इन शरणार्थियों के पुर्नवास आदि की समस्या उत्पन्न हो जाती है । इसके साथ ही श्रीलंका के तमिल आतंकबादी भौगोलिक समीपता के कारण तमिलनाडु में हथियार आदि छुपा देते हैं जिसके कारण श्रीलंका सरकार सदैव यह आरोप लगाती है

कि तमिल आंतकवादियों को भारत के तमिलनाडु क्षेत्र में प्रशिक्षण मिल रहा है, जबकि भारत सरकार सदैव इसका विरोध करती है । वास्तविकता कुछ भी हो लेकिन भौगोलिक समीपता के कारण ही दोनों देशों के मध्य इस प्रकार के विवाद उत्पन्न होते है ।

अतः स्पष्ट है कि भारत श्रीलंका सम्बन्धों की आधारभूमि में भौगोलिक तत्व ने प्रारम्भ से ही केन्द्रीय भूमिका का निर्वाह किया है । भौगोलीक समीपता के कारण ही भारत में श्रीलंका के इतिहास संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था को प्रारम्भ से प्रभावित किया है । भातर एवं श्रीलंका के बीच विद्यमान भौगोलिक समीपता दोनों देशों के लिये मित्रता के स्वर्णिम अवसर उपलब्ध करा सकती है ।

जातीय तत्व

श्रीलंका 1,54,16,000 जनसंख्या का एक छोटा सा द्वीप है । यह जनसंख्या जाति, भाषा, धर्म पहनावा, एवं खानपान के आधार पर पृथक-पृथक समुदायों में विभक्त है[1] श्रीलंका में मुखत: चार जातीय समुदाय निवास करते है । सिंहली इस देश का बहुसख्यंक जातीय समुदाय है जिसकी जनसंख्या 74% है । दूसरा समुदाय श्रीलंका के तमिलों का है जिसकी जनसंख्या 12.6% है, तीसरा समुदाय मुस्लिमों का है जिसकी जनसंख्या 7.4% है तथा चौथा समुदाय भारतीय तमिलों का है जिसकी जनसंख्या 5.6% है[2] श्रीलंका के ये समस्त जातीय समुदाय विभिन्न प्रकार की सभ्यता एवं संस्कृति के अनुयायी है ।

जातीय रूप से भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध अन्योनाश्रित है, क्योकि श्रीलंका के समस्त जातीय समुदाय मूल रूप से भारतीय है जो भारत से ही जाकर वहाँ बसे है । श्रीलंका का बहुसंख्यक सिंहली समुदाय भारत की आर्य प्रजाति का एक अंग है । तमिल श्रीलंका का दूसरा बहुसंख्यक समुदाय है, जो दक्षिण भारत की द्रविण प्रजाति का एक अंग है । तमिल भाषा बोलने वालों को तमिल जाति की संज्ञा दी गया।[3]

पौराणिक जनश्रुति के अनंसार सिंहली लोग उत्तर भारत से जाकर श्रीलंका में बसे थे । भारतीय राजकुमार विजय ने पाँचवी सदी ईसा पूर्व में श्रीलंका में सिंहली राजवंश की स्थापना की थी । सिंहली लोग अपने को श्रीलंका द्वीप के प्रारम्भिक सभ्य निवासी के रूप में मानते है । सिंहलियो के श्रीलंका में प्रवेश के उपरान्त भारत की द्रविण प्रजाति के तमिलों ने श्रीलंका में प्रवेश किया । श्रीलंका में तमिलों का प्रवेश दक्षिण भारत के शक्तिशाली राज्यों के सिंहलियों पर आक्रमण के साथ प्रारम्भ हुआ । ये तमिल श्रीलंका के उत्तरी पूर्वी प्रान्त में वहीं के निवासी के रूप में रहने लगे तथा इनको श्रीलंका के तमिल की संज्ञा दी गयी।[4] श्रीलंका में तीसरा समुदाय भूर

---

1. एम0 डी0 धर्मदासनी "श्रीलंका एन आइलैण्ड इन क्राइसिस" पृष्ठ - 44
2. वही ।
3. नवभारत टाइम - 27 दिसम्बर 1988
4. एम0 डी0 धर्मदासनी "श्रीलंका एन आलैण्ड इन क्राइसिस" पृष्ठ - 45

TABLE

Ethnic Population of Sri Lanka

Ethnic Group	Percent of Population
Sinhalese	74.0
Ceylon Tamils	12.6
Indian Tamils	5.6
Ceylon Muslims	7.1
Burghers	0.3
Malays	0.3

Source : Government of Sri Lanka, Statistical Abstract of the Dempocratic Socialist Republic of Sri Lanka - 1982 (Colombo : Department of Census and Statistics, 1982), p. 32.

लोगो का है जिसमें प्रारभिक अरब व्यापारी एवं भारतीय मुसलमान सम्मिलित है।[1] चौथा समुदाय भारतीय तमिलों का है, जो ब्रिटिश शासन काल में बगानों के श्रमिक के रूप में श्रीलंका गये थे तथा वही के निवासी के रूप में वहाँ रहने लगे । इस प्रकार श्रीलंका की समस्त जातियाँ भारत से ही जाकर यहाँ बसी है ।

श्रीलंका का बहुसंख्यक सिंहली समुदाय बौद्ध धर्म का अनुयायी है, जिसका प्रचार एवं प्रसार भारतीयों द्वारा ही श्रीलंका में किया गया । सिंहली लोग श्रीलंका के दक्षिणी पश्चिमी एवं मध्य भाग में निवास करते है । तमिल समुदाय हिन्दू धर्म के अनुयायी है । श्रीलंका के तमिल अधिकांशतः इस द्वीप के उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में निवास करते है तथा भारतीय तमिल कैण्डी, न्यूवारा एवं बडूला आदि स्थानों में निवास करते है । मूर लोग अधिकांशतः कोलम्बों, त्रिकोमाली एवं बट्टीकलावा आदि स्थानों में निवास करते है।[2]

सिंहलियों ने अपने मूलनिवास स्थान भारत से पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद कर लिये तथा वही के मूल निवासी के रूप में श्रीलंका रहने लगे, लेकिन तमिलों ने सदैव भारत से अपने सम्बन्ध कायम रखे । दसवीं शताब्दी से सोलहवी शताब्दी तक चोल एवं पण्डवा वंश के तमिल शासकों ने दक्षिण भारत से सदैव सम्बन्ध रखे । सिंहली प्रारम्भ से ही भारत से सम्बन्ध रखने के इच्छुक नहीं रहे । इतिहास में केवल एक उदाहरण ऐसा मिलता है जब एक सिंहली शासक ने दक्षिण भारत का थोड़ा सा भाग जीत कर अपना राज्य स्थापित किया था । अठारवी शताब्दी में भारतीय मूल के नायकर राजवंश द्वारा श्रीलंका के उत्तरी भाग पर शासन किया गया । नायकर राजवंश ने श्रीलंका में पश्चिमी शक्तियों के प्रवेश तक शासन किया।[3]

श्रीलंका में विभिन्न जातीय समुदाय के लोगों के कारण व्यक्ति भाषा धर्म एवं संस्कृति के आधार पर विभिन्न समूहों में विभांजित है । इसी विभिन्नता के कारण श्रीलंका में अनेक

---

1. "इथनिक प्रिफरेन्स एण्ड पब्लिक पॉलिसी इन डेबलपिग स्टेट" पृष्ठ - 136
2. रवि कान्त दुवे "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 89
3. पी0 रामास्वामी "न्यू देलही एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 101

समस्याओं ने जन्म ले लिया है । ऐतिहासिक रूप से श्रीलंका द्वीप के अस्तित्व से ही यहाँ जातिगत समूहों में बराबर प्रतिस्पर्धा रही है । सिंहली एवं तमिल दोनों जातीय समुदाय प्रारम्भ से ही अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहे, परिणामस्वरूप दोनों के मध्य विद्वेश एवं घृणा बढ़ती ही गयी । श्रीलंका के तमिल एवं भारतीय तमिलों में भी समान भावना का अभाव रहा । श्रीलंका के तमिल भी सिंहलियों के समान इस विचार के पक्षपाती रहे कि भारतीय तमिल विदेशी है, उन्हें देश छोड़ कर चले जाना चाहिये ।

भारत श्रीलंका सम्बन्धों में भारतीय तमिलों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है । भारतीय तमिलों ने श्रीलंका की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । श्रीलंका में अंग्रेजों का प्रमुख उद्देश्य अपने व्यापार में बृद्धि करना था, उस समय योरोपीय बाजार में चाय एवं काफी की माँग बहुत बढ़ रही थी । चाय बगानों में कार्य करने के लिये श्रीलंका में मजदूरों का अभाव था इसलिये अंग्रेज भारतीय तमिल श्रमिकों को श्रीलंका ले गये । भारतीय श्रमिक स्वभाव से परिश्रमी होने के कारण श्रीलंका की अर्थव्यवस्था में अपना अधिपत्य स्थापित करने लगे तथा श्रीलंका के निवासी के रूप में वहाँ रहने लगे । भारतीय तमिलों के बढ़ते हुये प्रभाव को रोकने के लिये सिंहली भारतलय तमिलों के साथ दुर्व्यवहार करने लगे । 1935 से ही भारतीय तमिलों के साथ श्रीलंका में भेदभाव होने लगा था । 1948 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही श्रीलंका की सरकार ने उन दस लाख भारतीय तमिलों की नागरिकता समाप्त कर दी, जो पिछले सौ वर्षों से श्रीलंका में निवास कर रहे थे ।

भारत सरकार ने श्रीलंका सरकार की भारतीय तमिलों से सम्बन्धित गतिविधियों का विरोध किया तथा सदैव ही भारतीय तमिलों को नागरिकता प्रदान करने के लिये अनेक प्रस्ताव रखे । भारत एवं श्रीलंका के मध्य भारतीय तमिलों को नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में अनेक समझौते हुये है तथा बहुत कुछ सीमा तक नागरिकता की समस्या का समाधान भी हो चुका है, लेकिन वर्तमान समय में भारत श्रीलंका सम्बन्ध तमिल अल्पसख्यको (भारत एवं श्रीलंका दोनों) के अधिकारों एवं सुरक्षा सम्बन्धी समस्या के घेरे में है । दोनों ही देशों के अथक प्रयासों के बाद भी समस्या अपने स्थायी रूप में विद्यमान है तथा श्रीलंका में सिंहली एवं तमिल समुदाय के बीच

हिंसात्मक गतिविधियाँ जारी है, जबकि श्रीलंका का सिंहली समुदाय जो भारत से अपना पूर्ण रूप से सम्बन्ध विच्छेद कर चुका है अपने को मूल रूप से अभी भी भारतीय मानता है । श्रीलंका के सूचनामन्त्री श्री ए० जे० रणसिम्हें के अनुसार "हम सब मूल रूप से भारतीय है । हमारे शरीर में भारत का खून वह रहा है । सुबह - शाम हम भारतीय भगवार बुद्ध की पूजा करते है । चाहे भगवान बुद्ध हो अथवा अशोक सभी भारत के थे।"[1]

अतः जातीय पृष्ठभूति भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों की प्रमुख आधारभूमि है, क्योकि श्रीलंका के समस्त प्रमुख जातीय समुदाय चाहे सिंहली हो अथवा तमिल मूल रूप से भारतीय है। जातीय आधारभूमि के कारण जहाँ भारत श्रीलंका सम्बन्धों में भावनात्मक सम्बन्धों का सचांर होता है वही भारत श्रीलंका सम्बन्धों में सर्वाधिक महत्वपूणा तमिल समस्या भी जातीय एक रूपता के कारण ही एवं अपने विकृत रूप में आज भी विद्यमान है ।

---

1. रविवार 30 जुलाई से 5 अगस्त 1989 पृष्ठ - 26

सामरिक तत्व

भारत एशिया महाद्वीप के सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भाग हिन्दमहासागर के उत्तरी क्षेत्र पर स्थित है । श्रीलंका हिन्दमहासागर में भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के समीप स्थित एक द्वीपीय देश है, इसलिये सामरिक दृष्टि से भारत की प्रतिरक्षा के लिये श्रीलंका का विशेष महत्व है । श्रीलंका भारत की अग्रिम सीमा चौकी के समान है । मदगसर द्वीप की जो महत्वपूर्णा स्थिति अफ्रीका के लिये है, वही महत्वपूर्ण सामरिक स्थिति श्रीलंका की भारत के लिये है। मदगसर जिस प्रकार अपने महत्वपूर्ण बन्दरगाह डियागोस्कावर्स के साथ अफ्रीका की सुरक्षा के लिये महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है, उसी प्रकार श्रीलंका अपने महत्वपूर्ण बन्दरगाह कोलम्बो एवं त्रिकोमाली सहित भारतीय उपमहाद्वीप की सुरक्षा को प्रभावित करता है।[1]

भारत एवं श्रीलंका के मध्य आकार सम्बन्धी भिन्नता के होते हुये भी दोनों के मध्य ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक सम्बन्ध अति प्राचीन काल से चले आ रहे है, लेकिन सामरिक दृष्टि से सोलहवीं शताब्दी में योरोपीय समुद्री शक्ति के हिन्दमहासागर में आगमन के साथ श्रीलंका के महत्व का ज्ञान हुआ था । पुर्तगालियों ने महासागरीय सामरिक शक्ति के आधार पर ही गोवा मलाका एवं ओरमुज आदि पर अधिपत्य स्थापित किया था । हिन्दमहासागर पर ब्रिटेन का अधिपत्य सिगांपुर एडन एवं त्रिकोमाली पर अधिकार स्थापित करने के साथ हुआ था।[2]

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार यह सर्वविदित है कि श्रीलंका पर नियन्त्रण रखने वाली महाशक्ति न केवल भारत पर अपना अधिकार स्थापित कर सकती है, वरन सम्पूर्ण हिन्दमहासागर पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर सकती है।[3]

श्रीलंका की हिन्दमहासागर में केन्द्रीय स्थिति का भारत की प्रतिरक्षा के लिये उल्लेखनीय महत्व है । भारत की 61,000 कि0 मी0 लम्बी समुद्री सीमा जो पूर्णतः खुली एवं

---

1. ललित कुमार "इंण्डिया एण्ड श्रीलंका" प्रष्ठ - 10
2. कोडीकारा "इन्डो सीलोन रिलेसन्स" प्रष्ठ - 24
3. वही ।

Palk Strait
Pt Pedro
Kankesanturai
Jaffna
Elephant Pass
BAY
OF
BENGAL
Paranthan
Mullaittivu
Talaimannar
Mannar
Murunkan
Vavuniya
Trincomalee
Gulf of Mannar
Medawachchiya
Anuradhapura
Puttalam
Kekirawa
Habarana
Valaichchenai
SRI LANKA
Batticaloa
Chilaw
Kurunegala
Polgahawela
Kandy
Gal Oya
Negombo
Colombo
Avissawella
Badulla
Pottuvil
Monaragala
Wellawaya
Ratnapura
Menik Ganga
Kirindi Oya
Gin Ganga
Walawe
Ambalangoda
Galle
Hambantota
Matara
INDIA
INDIAN OCEAN
SRI LANKA-PHYSICAL

श्रीलंका

असुरक्षित है, जिसपर वायु मार्ग द्वारा बमबारी भी की जो सकती है । अप्रैल 1942 में जापानियों द्वारा कोलम्बो एवं त्रिकामाली पर बमबारी से भारत की सुरक्षा के लिये गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गयी थी,[1] भारत ने इस तथ्य की कभी भी उपेक्षा नहीं की है ।

ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय सुरक्षा के तीन महत्वपूर्ण आधार थे:

1) उत्तरी पश्चिमी आगमन से भारत की सुरक्षा

2) भारतीय उपमहाद्वीप के चारों ओर किसी विदेशी शक्ति की सामरिक उपस्थिति से रोकथाम

3) हिन्दमहासागर एवं इसकी शाखाओं पर नियन्त्रण[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी हिन्दमहासागर को भारतीय सुरक्षा का यथार्थपूर्ण तथ्य माना गया । हिन्दमहासागर भारत को दक्षिणी पूर्वी एशिया, अफ्रीका एवं आस्ट्रेलिया से जोड़ता है । भारत के समस्त जलमार्ग हिन्दमहासागर से होकर गुजरते है । नेहरू जी ने 1950 में संसद में भाषण देते हुये कहा था "हम एशिया के सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भाग हिन्दमहासागर में स्थित है । अतीत एवं वर्तमान में हमारे सम्बन्ध पश्चिमी एशिया, दक्षिणी पूर्वी एशिया एवं सुदूर पूर्व के साथ रहे है । यदि हम चाहे भी तो इस तथ्य की उपेक्षा नही कर सकते है।"

भारत पश्चिमी कला-कौशल प्रधान देशों को पूर्वी खेतिहर देशों से मिलाने के लिये एक श्रंखला का कार्य करता है । वायुमार्ग की दृष्टि से भारत की स्थिति अति उत्तम कही जा सकती है । पश्चिमी देशों से सुदूर-पूर्व जाने वाले चीन, जापान, इण्डोनेशिया एवं आस्ट्रेलिया आदि देशों से पश्चिमी योरोप जाने के लिये वायुयान भारत से होकर निकलते है।[3] अत: श्रीलंका के लिये भी सामरिक रूप से भारत की स्थिति महत्वपूर्ण है । 1949 में डा० पट्टाभि सीतारमैया ने भारत एवं श्रीलंका के सामरिक सम्बन्धों के महत्व को स्पष्ट करते हुये कहा था "भारत एवं सीलोन को समान

---

1. ललित कुमार "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 1
2. कोडीकारा "इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 25
3. मेमोरिया चतुर्भुज "आधुनिक भारत का भूगोल" पृष्ठ - 23

प्रकार की सामरिक शक्ति एवं रक्षात्मक नीति अपनाना चाहिये । सीलोन उन राष्ट्रों से अच्छे सम्बन्ध नहीं रख सकता जिनसे भारत की मित्रता न हो । यदि संसार में दो विचारों वाले समूह है तथा भारत एवं सीलोन अलग-अलग विचारों वाले समूहों के साथ हो तो यह दिन दोनों देशों के लिये बहुत बुरा होगा।[1]

भारत का समस्त विदेश व्यापार हिन्दमहासागर के माध्यम से होता है । यदि इस समुद्र पर भारत के किसी विदेशी राज्य का नियन्त्रण हो वह भारत के समस्त व्यापार को बन्द करके भारत की समूची आर्थिक व्यवस्था को तहस-नहस कर सकता है । सामरिक एवं आर्थिक हितों के अनुरूप भारत के लिये यह आवश्यक है कि वह उस राज्य के साथ अवश्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखे, जिसे हिन्दमहासागर में केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है ।

सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में समुद्री यातायात की दृष्टि से श्रीलंका की स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण है । प्राचीन काल में ग्रीक एवं रोमन लोग पूर्वी एशिया से व्यापार करने के लिये श्रीलंका द्वीप होकर गुजरते थे । स्वेज नहर मार्ग खुल जाने पर पश्चिमी योरोप एवं आस्ट्रेलिया के मध्य यह द्वीप मार्ग में पड़ता है । इसलिये पूर्व से पश्चिम को सम्बद्ध करने वाले समस्त वायु एवं जलमार्ग श्रीलंका से होकर गुजरते है । कोलम्बो हिन्दमहासागर में वायु मार्ग का भी केन्द्र है, भारत के माध्यम से यह अन्तर्द्वीपीय वायु सेवा से भी सम्बन्ध रखता है।[2] अतः समुद्री यातायात की दृष्टि से श्रीलंका को महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त है, जिसमें भारत के लिये इसका सामरिक महत्व स्वतः सिद्ध होता है ।

दक्षिण एशिया में श्रीलंका का त्रिकोमाली बन्दरगाह सर्वश्रेष्ठ बन्दरगाह है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद त्रिकामाली सभी की दृष्टि का केन्द्रबिन्दु बन गया है । त्रिकोमाली का इतिहास उसकी भौगोलिक स्थिति से बहुत नजदीक से जुड़ा हुआ है । यह श्रीलंका की राजनीति और भारत की श्रीलंका के उत्तरी - पूर्वी राज्यों से सम्बद्ध सभी जातिगत समस्याओं की जटिलता

1. 23 अप्रैल 1949 में सीलोन डेली न्यूज के साक्षात्कार में वर्णित ।

2. रामाराव "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 8

का प्रतिनिधित्व करता है । 1619 में पुर्तगालियों ने जाफना पर अधिकार त्रिकोमाली के माध्यम से ही किया था । 1658 में डचों ने भी श्रीलंका में प्रवेश यहीं से किया था, तथा पश्चिम साम्राज्यों में अंतिम ब्रिट्रिश शासकों ने 1796 में यहीं से प्रवेश कर डचों से इस प्रदेश को छीना था । त्रिकोमाली के सामरिक महत्व के कारण आज विश्व की समस्त महाशक्तियाँ त्रिकोमाली में सैनिक सुविधायें प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहती हैं । संयुक्त राजय अमेरिका डियागोगार्सिया में सैनिक अड्डा स्थापित करने के बाद अब अपनी सम्पूर्ण दृष्टि त्रिकोमाली पर लगाये हुये है तथा त्रिकोमाली पर तेल आपूर्ति सुविधा प्राप्त करने के लिये प्रयासरत है । 1980 में श्रीलंका ने अमेरिका को तेल आपूर्ति सुविधा प्रदान करने के लिये टेण्डर दे दिये थे, लेकिन कुछ कारणों से यह प्रस्ताव गिर गया था ।[1]

त्रिकोमाली से भारत के सामरिक एवं कूटिनीतिक हितों का सीधा सम्बन्ध है, क्योंकि भारत के पूर्वी क्षेत्र में कोई भी प्राकृतिक बन्दरगाह नहीं है । भारत त्रिकोमाली के उपयोग के संदर्भ में सदैव बहुत समवेदंनशील रहता है इसी कारण भारत ने श्रीलंका की त्रिकामाली से सम्बन्धित नीतियों का सदैव विरोध किया है । सोवियत रूस एवं चीन भी त्रिकोमाली में तेल आपूर्ति सुविधा प्राप्त करने के लिये रूचि प्रदर्शित करते हैं । भारत की कोई भी सरकार त्रिकामाली को अमैत्रीपूर्ण हाथों में नहीं जाने दे सकती, क्योकि त्रिकोमाली पर किसी विदेशी शक्ति के अधिपत्य से भारत की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है । भारत सरकार आवश्यक समझ कर त्रिकोमाली से अपने ऊपर आक्रमण होने से पूर्व उस पर अपना अधिकार स्थापित कर अपने को सुरक्षित रख सकती है ।

अतः भारत श्रीलंका सम्बन्धों में सामरिक तत्व महत्वपूर्ण स्थान रखता है । श्रीलंका भारत की अग्रिम सीमा चौकी के समान है, क्याकि यह द्वीप अपने महत्वपूर्ण बन्दरगाह त्रिकोमाली एवं कोलम्बो सहित भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के अति समीप स्थित है । भारत की भौगोलिक स्थिति भी श्रीलंका के लिये सामरिक रूपसे उल्लेखनीय महत्व रखती है ।

---

1. दिनमान टाइम्स 15 – 24 मार्च 1990 पृष्ठ – 10

श्रीलंका के विदेशनीति का झुकाव प्रारम्भ से ही पश्चिमी देशों के प्रति रहा है, जिसके कारण भारत श्रीलंका सम्बन्धों में समय-समय पर तनाव उत्पन्न हुआ है । स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक वर्षों में श्रीलंका ने ब्रिटेन एवं अमेरिका को अपने बन्दरगाह उपयोग करने की सुविधा प्रदान करदी थी । 1950 में श्रीलंका ने कोरिया मार्ग के लिये अमेरिका को अपने बन्दरगाह उपयोग करने की अनुमति प्रदान की थी, तथा 1954 में अमेरिकी सेना के जहाजों को फ्रान्स से हनोइ जाने के लिये श्रीलंका ने कटुनायेके का हवाइ अड्डा प्रयोग करने का अवसर प्रदान किया था ।[1] भारत ने सदैव श्रीलंका की इस प्रकार की नीतियों का विरोध किया जिसके कारण भारत एवं श्रीलंका के बीच समय-समय पर मतभेद उत्पन्न हुआ है । अतः भारत श्रीलंका सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में सामरिक तत्व में अधिकांशतः दोनो देशों के मध्य तनाव उत्पन्न करने में योगदान दिया है ।

---

1. कोडीकारा "फारन पालिसी आफ श्रीलंका" पृष्ठ - 89

सांस्कृतिक तत्व

प्रत्येक देश की संस्कृति का अपना महत्त्व होता है तथा प्रत्येक देश की संस्कृति विश्व संस्कृति के निर्माण में योगदान देती है । भारतीय संस्कृति ने भी विश्व की अन्य संस्कृतियों को अपने शाश्वत मूल्यों से प्रभावित करने के साथ उनके प्रभाव को भी गृहण किया है । श्रीलंका भी पूर्ण रूप से राष्ट्रीय स्तर का राज्य है, जिसकी अपनी पूर्व एवं स्पष्ट भौगोलिक इकाई है तथा विभिन्न प्रकार की संस्कृति एवं भावनायें हैं । आज के नवीन राष्ट्रों की भाँति श्रीलंका भी अनेक प्रकार की राष्ट्रीयताओं वाला राज्य है । सांस्कृतिक रूप से वहाँ एकता एवं विविधता दोनों का समन्वित रूप देखने को मिलता है ।

भारत श्रीलंका सम्बन्धों के निर्धारण में जहाँ एतिहासिक पृष्ठभूमि, भौगोलिक स्थिति एवं प्रजातीय तत्व महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है वहीं सांस्कृतिक एकरूपता भी दोनों देशों के सम्बन्धों में मित्रता की भावना का संचार करती है । श्रीलंका द्वीप के समस्त व्यक्ति उनके धर्म, साहित्य एवं उनके सामान्य विचारों पर भारत एवं भारतवासियों की स्पष्ट छाप अंकित है । सांस्कृतिक रूप से श्रीलंका भारतीय सभ्यता की शिशु के समान है।[1]

चौथी शताब्दी ईसापूर्व में श्रीलंका को लंका द्वीप के नाम से जाना जाता था । राजकुमार विजय के समय इस द्वीप को ताम्बपारिणी की संज्ञा दी जाती थी । भारतीय राजकुमार विजय ने इस द्वीप में सिंहल राजवंश की स्थापना की थी, जिससे इस द्वीप को सिंहलद्वीप के नाम से सम्बोधित किया गया । यूनानियों के समय इसे टेप्रोवेन तथा रोमन में इसे सेलिस की संज्ञा दी गयी । अरब लोगों ने इस सेरेडिव पुर्तगालियों ने रिक्लाय तथा अंग्रेजों ने सीलोन नाम से सम्बोधित किया।[2]

वर्तमान समय में इस द्वीप में बहुसंख्यक निवासी सिंहली हैं जिसके कारण इसका आधुनिक नाम श्रीलंका पड़ा है ।

1. वाइनट कोल्हे "एक्रास द पाक स्ट्रेट" पृष्ठ - 1
2. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर 1988

बौद्ध धर्म श्रीलंका का प्रधान धर्म है इसके साथ ही वहाँ हिन्दू मुस्लिम एवं इसाई धर्म का भी अस्तित्व है । बौद्ध धर्म श्रीलंका के बहुसंख्यक सिंहली समुदाय का धर्म है । श्रीलंका में 92% सिंहली लोग बौद्ध धर्म को ग्रहण करके दो तिहाई बहुमत से अपनी शक्ति को संगठित कर रहे है । 90% तमिल लोग हिन्दू धर्म का अनुसरण करते है जो कि पूर्ण जनसंख्या का 1/6 वाँ भाग है।[1] इसाई एवं मुस्लिम धर्म का भी कुछ लोग अनुसरण करते है ।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार भारतीय चक्रवर्ती सम्राट अशोक द्वारा किया । सर्वप्रथम भारतीय राजकुमार विजय के उत्तराधिकारियों द्वारा श्रीलंका में बौद्ध धर्म को स्वीकार किया गया । सम्राट अशोक ने श्रीलंका में अपने पुत्र एवं पुत्री को बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु भेजा था । श्रीलंका में बौद्ध धर्म की स्थापना के आधार पर ही भारत श्रीलंका सम्बन्धों की पष्ठभूमि रखी गयी । भारत से श्रीलंका को जाने वाले विद्वानों की परम्परा चिरकाल तक कायम रही। श्रीलंका में बौद्ध धर्म अपने माध्यमार्ग के आध्यात्मिक रूप में सम्मानित किया गया । बौद्ध धर्म भारतीय होने के कारण हिन्दू धर्म का समदर्शी है । स्वामी विवकानन्द ने हिन्दू धर्म के सन्दर्भ में कहा था "जो कहीं भी है वह यहाँ है । जो कहीं भी नहीं है वह यहाँ नहीं है।" अतः बौद्ध धर्म एवं हिन्दू धर्म में काफी समानता है।[2] भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री प0 जवाहरलाल नेहरू द्वारा ग्रहण किये गये पंचशील सिद्धान्त बौद्ध धर्म पर आधारित है ।

श्रीलंका का दूसरा प्रधान धर्म हिन्दू धर्म है, जो भारत के बहुसंख्यक समुदाय का धर्म है श्रीलंका के तमिल एवं भारतीय तमिल दोनों ही हिन्दू धर्म के अनुयायी है । मूर लोग मुस्लिम धर्म के अनुयायी है तथा कुछ तमिल एवं कुछ सिंहली व्यक्तियों ने इसाई धर्म को ग्रहण किया । भारत में भी कुछ लोग मुस्लिम एवं कुछ लोग इसाई धर्म का अनुसरण करते है । अतः धार्मिक समीपता भारत श्रीलंका के सांस्कृतिक सम्बन्धों का आधार विन्दु है, क्योकि बौद्ध धर्म श्रीलंका के बहुसंख्यक सिंहली समुदाय का धर्म है, जो भारत के अल्पसंख्यक समुदाय का धर्म है तथा हिन्दू

---

1. एम0 डी0 धर्मदासनी "श्रीलंका एन आइलैण्ड इन क्राइसिस" प्रष्ठ – 45
2. पी0 रामास्वामी "न्यू देलही एण्ड श्रीलंका" प्रष्ठ – 133

TABLE

Religious Composition of the Sri Lankan Population

Religion	Percent of Population
Buddhism	69.3
Hinduism	15.5
Islam	7.6
Christianity	7.5
Others	0.1

Source : Government of Sri Lanka, Statisticial Abstract of the Democratic Socialist Republic of Sri Lanka - 1982 (Colomb : Department of Census and Statistics, 1982), p. 34.

धर्म भारत के बहुसंख्यक समुदाय का धर्म है जो श्रीलंका के अल्पसंख्यक समुदाय का धर्म है ।

श्रीलंका के समस्त व्यक्ति मूल रूप से भारतीय है । "सिंहली" उस भारतीय आर्य प्रजाति का एक अंग है जो इसापूर्व पाँचवी सदी में उत्तर भारत से श्रीलंका गये थे । श्रीलंका में तामलों का प्रवेश दक्षिण भारत के चोल एवं पण्डवा वंश के आक्रमणों द्वारा हुआ ये तमिल श्रीलंका के उत्तरी – पूर्वी प्रान्त में वहीं के निवासी के रूप में रहने लगे । भारतीय तमिलों ने श्रीलंका में अंग्रेजों के समय से चाय बगानों के श्रमिक के रूप में प्रवेश किया तथा वही के निवासी के रूप में रहने लगे । श्रीलंका के मुस्लिम समुदाय में भारतीय मुसलमान एवं इस द्वीप में आने वाले प्रारम्भिक अरब व्यापारी सम्मिलित हैं ।

श्रीलंका में प्रत्येक जातीय समूह अपनी पृथक भाषा का प्रयोग करता है । सिंहली समुदाय सिंहली भाषा का प्रयोग करता है तथा तमिल भाषा तमिल लोगों की मातृ–भाषा है । मुस्लिम लोग जो सिंहली क्षेत्र में रहते हैं सिंहली भाषा का प्रयोग करते है तथा जो मुस्लिम तमिल क्षेत्र में रहते है तमिल भाषा का प्रयोग करते है । श्रीलंका की दोनो प्रमुख भाषायें मूल रूप से भारतीय हैं।[1]

श्रीलंका की प्रधान भाषा सिंहली है, जो उसी प्रकार भारतीय आर्य–भाषा परिवार की है जैसे बंगाली एवं हिन्दी । सिंहली भाषा का विकास एलू एवं हेलू भाषा से हुआ है । श्रीलंका की धार्मिक भाषा पाली है जो सम्राट अशोक के समय भारत की राजभाषा थी।[2] पाली भाषा आज भी भारत में सूक्ष्म रूप से प्रचलित है । श्रीलंका की दूसरी प्रमुख भाषा तमिल है, जो भारत के तमिलनाडु क्षेत्र की भाषा है । श्रीलंका के तमिल एवं भारतीय तमिल दोनों ही समान रूप से तमिल भाषा का प्रयोग करते है । अतः भाषा के आधार पर भी दोनों देशों में काफी समानता है । श्रीलंका के अधिकांश सिंहली नाम जैसे जयवर्धने, विजयवर्धने आदि मूल रूप से भारत के विहार बंगाल एवं गुजरात के है ।

---

1. धर्मदासनी "श्रीलंका एन आईलैण्ड इन फ्राइसिस विधानकार"
2. दक्षिणी पूर्वी एवं दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति – 310

श्रीलंका के उत्तरी एवं दक्षिणी प्रदेशों में कुछ ऐसे लेख उपलब्ध हुये है, जो भारतीय आर्य भाषा परिवार की पुरानी भाषा में है, जिनके लिखने के लिये किसी ऐसी लिपि का प्रयोग किया गया है जो तीसरी सदी में प्रचलित किसी भारतीय लिपि से मिलती है । बौद्ध धर्म में जिस साहित्य एवं धार्मिक परम्पराओं का भारत में विकास हुआ था, वे आज भी श्रीलंका में प्रचलित है । पाँचवी सदी के प्रारम्भ में आचार्य बुद्ध घोष भारत से श्रीलंका गये, वहाँ उन्होने पाली अट्ठकथाओं को देखकर अपनी अट्ठकथाये लिखी । आज भी श्रीलंका के साहित्य पर भारत की स्पष्ट छाप अंकित है ।

धर्म, भाषा एवं साहित्य के अतिरिक्त श्रीलंका की कला पर भी भारत का प्रभाव दिखायी पड़ता है । श्रीलंका की प्राचीन इमारतों में अनुराधापुर का स्तूप, महाग्राम का विष्प तथा महाराम अभयगिरि विहार आदि महत्वपूर्ण है, ये सभी भारतीय कली पर आधारित है यद्यपि ये अब अपने मूल रूप में नही है, इनमे निरन्तर परिवर्तन हुआ है । श्रीलंका के विहारों एवं स्तूपों का निर्माण भारतीय वस्तुकला के आधार पर हुआ है । इनमे जो मूर्तियाँ है वे अमरावती एवं नागार्जुनीकोण्ड की मूर्तिकला के अनुसार निर्मित है । कोलम्बों के संग्राहलों में ऐसी मूर्तियाँ है जो भारती शिलियों द्वारा निर्मित प्रतीत होती है । श्रीलंका के पौराणिक हिन्दुमन्दिरों का निर्माण चोल राजवंश के समय हुआ था । वर्तमान समय में जो मन्दिर वहाँ विद्यमान है उनमें उसी प्रकार के गर्भग्रह अन्तराला अर्ध मण्डप आदि है जैसे भारतीय मन्दिरों में होते है[1] श्रीलंका कुछ स्थानों के नाम भारतीय नामाक्ली पर आधारित है जैसे-अनुराधापुरा एवं रत्नापुरा ।

पाँचवी सदी में श्रीलंका में राजा कश्चय प्रथम ने सिंहगिरि में एक विशाल प्रस्तर दुर्ग का निर्माण करवाया था । इस दुर्ग के ऊपर अनेक भवन है, जिनकी दीवारों पर अजन्ता की गुफा के समान भिन्न चित्र है । श्रीलंका में हिन्दू मन्दिरों के भग्नावशेषों में नटराज, शिव-पार्वती एवं गणेश आदि की अनेक मूर्तियाँ मिली है, जो ताम्र य कास्प से निर्मित है । ये सभी मूर्तियाँ हिन्दू

---

1. विद्यालकार "दक्षिण पूर्वी एशिया एवं दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति" पृष्ठ - 310

मूर्तिकला के आधार पर निर्मित है ।[1] भारत की गुप्त एवं पल्लव शैली से निर्मित ये मूर्तियाँ श्रीलंका में भारत के सांस्कृतिक प्रभाव को निरूपित करती है ।

श्रीलंका के अधिकांश व्यक्ति बौद्ध धर्म के अनुयायी होने के कारण भारत के अधिकांश व्यक्तियों के समान शाकाहारी है तथा श्रीलंका के तमिल लोगों की वेशभूषा एवं खान तमिलनाडु क्षेत्र के व्यक्तियों के समान है । श्रीलंका के तमिलभाषियों की शारीरिक संरचना मानसिक चिंतन पद्यति मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ के साथ सामाजिक जीवन की परम्परा, रीति-रिवाज एवं धार्मिक त्यौहार आदि मनाने के पद्यति भारत के तमिलनाडु क्षेत्र के व्यक्तियों के समान है । दोनों देशों के व्यक्तियों की जीवन शैली में सदियों से चली आ रही एकरूपता एवं समरूपता विद्यमान है ।

श्रीलंका की प्रसारण सेवा "रेडियो सीलोन" द्वारा भारतीय गानों को प्रसारित किया जाता है, जिसके द्वारा संगीत के अधिकांश कार्यक्रम प्रसारित किये जाते है, जिनमें से अधिकांश भारतीय फिल्मों के हिन्दी एवं तमिल धुनों पर आधारित गाने होते है । "रेडियों सीलोन" प्रसारण सेवा भारत के सभी भागों में लोकप्रय है । रेडियो सीलोन के सन्दर्भ में यद्यपि भारत एवं श्रीलंका के मध्य कुछ विवाद उत्पन्न हो गया था, लेकिन दोनों ही देशों ने पारस्परिक सहमति के आधार पर इस समस्या का समाधान करने में सफलता प्राप्त की तथा अपने सांस्कृतिक सम्बन्धों की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया ।

अतः स्पष्ट है कि श्रीलंका के धर्म, भाषा एवं साहित्य आदि पर भारतीय संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है । भारत में बौद्ध धर्म में जिस साहित्य एवं परम्पराओं का विकास हुआ था, वे आज भी श्रीलंका में उसी रूप में विद्यमान है । वास्तव में बौद्ध धर्म पर ही भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों की सांस्कृतिक प्रष्ठभूमि आधारित है ।

---

1. विद्यालंकार सत्यकेतु "दक्षिणी पूर्वी एशिया एवं दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति" प्रष्ठ - 31।

आर्थिक तत्व

भारत श्रीलंका सम्बन्ध लगभग दो हजार पाँच सौ वर्ष प्राचीन है । भौगोलिक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक रूप से दोनों देश एक दूसरे को प्रभावित करने के साथ आर्थिक रूप से भी युगों-युगों से सम्बन्धित रहे है । भारत एवं श्रीलंका के मध्य आर्थिक सम्बन्धों का इतिहास ईसापूर्व, चौथी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ था, तबसे आज तक दोनों देशों के मध्य आर्थिक एवं व्यवसायिक सम्बन्ध निरन्तर चले आ रहे है ।[1]

प्राचीन काल से ही श्रीलंका भारत पर आर्थिक रूप से निर्भर रहा है । ब्रिटिश शासनकाल के पूर्व, भारत श्रीलंका को सर्वाधिक खाद्य पदार्थ, प्रदान करने वाला देश था । द्वितीय विश्व युद्ध के समय श्रीलंका के आधे से अधिक आयात पर भारत का नियन्त्रण था ।[2] स्वतन्त्रता प्राप्ति एवं भारत पाकिस्तान विभाजन के उपरान्त भारत श्रीलंका को पूर्व की भाँति खाद्यान प्रदान नहीं कर सका, क्योंकि विभाजन के उपरान्त भारत को स्वयं खाद्यान के लिये अन्य देशों पर निर्भर होना पड़ा ।

1938 में भारत श्रीलंका को 31% पदार्थ निर्यात करता था, जबकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद 1951 में भारत श्रीलंका को केवल 9% खाद्य पदार्थ निर्यात करने में सक्षम रह गया था ।[3] स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद श्रीलंका ने कुछ वस्तुओं का अपने देश में उत्पादन करके तथा कुछ वस्तुओं का अन्य देशों से आयात करके भारत की आर्थिक निर्भरता से मुक्त होने का प्रयास किया । वर्तमान समय में श्रीलंका यद्यपि पूर्व की भाँति भारत पर आर्थिक रूप में निर्भर नहीं है, लेकिन फिर भी भारत पर श्रीलंका की आर्थिक निर्भरता नकारने योग्य नहीं है ।

---

1. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका इकनॉमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 156
2. वही ।
3. कोडीकारा " इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 173

ब्रिटिश शासनकाल से ही श्रीलंका की आर्थिक व्यवस्था में भारतीय मानवीय तत्वों का भी योगदान रहा है । भारतीय व्यापारी एवं बागानों के श्रमिकों ने श्रीलंका की आन्तरिक अर्थव्यवथा में मुख्य भूमिका का निर्वाह किया है ।[1] अंग्रेजों के आक्रमण के समय श्रीलंका की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी थी, कृषि पर आधारित इस देश का आर्थिक ढाँचा चरमरा रहा था । अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन एवं वाणिज्यक क्षेत्र में वृद्धि करना था लेकिन श्रीलंका की तत्कालीन अर्थव्यवस्था में यह सम्भव नहीं था । उसी समय योरोपीय बाजार में चाय एवं काफी की माँग बहुत बढ़ रही थी । श्रीलंका के मृतप्राय आर्थिक ढाँचे को पुनिजीवित करने के लिये अंग्रेजों ने इसे स्वर्णिम अवसर समझा चाय बागानों में कार्य करने के लिये श्रीलंका में मजदूरों का बहुत अभाव था, इसलिये अंग्रेजों ने श्रीलंका के बाहर से मजदूर लाना प्रारम्भ कर दिया । कंगनी व्यवस्था के माध्यम से भारतीय श्रमिकों का पहला दल 1828 में श्रीलंका पहुँचा तथा चाय बगानों में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया ।[2]

भारतीय श्रमिकों के कठोर परिश्रम से श्रीलंका की आर्थिक स्थिति में सुधार होने लगा। धीरे-धीरे भारतीय श्रमिकों की संख्या श्रीलंका में बढ़ती गयी तथा भारतीय श्रमिक श्रीलंका के निवासी के रूप में वहीं पर रहने लगे तथा स्वभाव से परिश्रमी होने के कारण श्रीलंका की अर्थव्यवस्था पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया । इसी कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही श्रीलंका के बहुसंख्यक सिंहली समुदाय ने भारतीयों को इस द्वीप से हटाने के लिये उनके साथ अत्याचारपूर्ण व्यवहार प्रारम्भ कर दिया । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध इन्हीं भारतीय श्रमिकों की समस्या से घिरे है, जो वास्तव में आर्थिक तत्व पर आधारित समस्या है ।

भारत एवं श्रीलंका दोनों ही कृषि प्रदान देश है । श्रीलंका की मुख्य उपज चाय रबड़, नारियल शकरकन्द, मक्का, ज्वार एवं बाजरा आदि है । श्रीलंका से निर्यात करने वाली वस्तुये अधिकांशतः कृषिकृत उपजें हैं इसके अतिरिक्त श्रीलंका से गरम मसाले, सिनकोना, हाथी दाँत

1. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स"

2. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर 1988

की वस्तुयें तथा मूल्यवार रत्नों आदि का भी पर्याप्त मात्रा में निर्यात किया जाता है । भारत भी श्रीलंका के समान चाय का वृद्ध उत्पादक देश है । भारत श्रीलंका से रबड, कापर, ग्रेफाइट एवं नारियल का आयात करता है । भारत स्वयं द्वितीय स्तर का नारियल उत्पादक देश है फिर भी यह श्रीलंका से नारियल का आयात करता है ।[1]

श्रीलंका को खाद्यान के अतिरिक्त औद्योगिक वस्तुओं का भी आयात करना पड़ता है । आज भारत एक प्रमुख औद्योगिक देश है । भारत विभिन्न प्रकार की औद्योगिक वस्तुयें निर्मित करने तथा श्रीलंका को प्रतियोगात्मक मूल्य में प्रदान करने के लिये सक्षम है । भारत श्रीलंका को सूती कपड़ा, सीमेण्ट, प्याज, मच्छलियों, बीड़ी की पत्तियाँ, दवायें मशीनें एवं औज़ार आदि निर्यात करता है । भारत के बने हुये रबड के टायर, पेपर, प्लाइवुड, स्टील के सामान इंजन आदि श्रीलंका आयात करता है ।[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में काफी असमानता रही है । भारत श्रीलंका को भारी मात्रा में वस्तुयें प्रदान करने में सक्षम है, जबकि श्रीलंका अपनी सीमित व्यापारिक प्रवृत्ति एवं उत्पादन क्षमता में कमी के कारण भारत को समान रूप से वस्तुयें प्रदान करने में सक्षम नहीं है । भारत का श्रीलंका से आयात का क्षेत्र रबड, कापर एवं नारियल तेल तक ही सीमित है जबकि श्रीलंका को भारत से सूती कपड़ा, सीमेण्ट, प्याज, मच्छली, मिर्चा, बीड़ी की पत्तियाँ, दवायें, मशीने एवं औजार आयात करने पड़ते है । भारत श्रीलंका से बहुत सीमित मात्रा में आयात करता है ।

भारत एवं श्रीलंका अपने आर्थिक सम्बन्धों में सुधार हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहे है । दोनों के मध्य आर्थिक सम्बन्धों में सुधार हेतु अनेक समझौते सम्पन्न हो चुके है तथा भारत ने श्रीलंका को आर्थिक विकास हेतु समय-समय अनेक अनुदान एवं ऋण प्रदान किये है । 1961 में भारत एवं श्रीलंका के आपसी व्यापार में वृद्धि की दृष्टि से दोनों देशों ने एक समझौता

---

1. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 170
2. वही ।

किया, जिसमें यह निश्चित किया गया कि भारत अधिक भाग में नारियल का तेल एवं कपास श्रीलंका से आयात करेगा ।[1] 1968 में भारत एवं श्रीलंका के मध्य आर्थिक सहयोग समिति का गठन हुआ । इस समिति में दोनों देशों के आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों की समस्याओं एवं उनक निराकरण पर विचार-विमर्श हुआ । इस समिति के माध्यम से दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय आर्थिक सम्बन्धों के लिये संस्थागत ढाँचों की स्थापना की गयी । भारत एवं श्रीलंका के संयुक्त आयोग ने कृषि एवं तकनीकि क्षेत्रों में आर्थिक सहयोग के लिये कई क्षेत्रों की खोज की तथा यह निश्चय किया गया कि दोनों देश अधिक से अधिक मात्रा में आयात एवं निर्यात करेंगे ।[2]

1970 में भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में पुनः गिरावट आयी । 1970 में श्रीलंका सरकार ने कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में स्वदेशीकरण की नीति अपनायी जिसके अन्तर्गत श्रीलंका सरकार ने पुनः भारतीयों के व्यापारिक लाइसैन्स रद्द कर दिये तथा श्रीलंका के व्यापार एवं उद्योग पर भारतीय प्रवासियों के नियन्त्रण को समाप्त करने की कोशिश की परिणामस्वरूप भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों पर कुछ समय के लिये प्रतिकूल प्रभाव पड़ा ।[3]

1977 से श्रीलंका में अर्थव्यवस्था के सिगांपुरीकरण किया गया, अर्थात् यह द्वीप सिगांपुर की तरह निर्यात के क्षेत्र में समृद्ध हो । श्रीलंका में घरेलू सामान, विदेशी मुद्रा एवं तकनीकी ज्ञान प्राप्त मनुष्यों की कमी थी, इसलियें श्रीलंका ने विदेशी निवेशकर्ताओं को अपने क्षेत्र में आमंत्रित किया । 1977 से ही श्रीलंका निवेश अवसरों की भूमि रहा है । भारत के लिये श्रीलंका में औद्योगिक साझेदारी का यह अच्छा अवसर था, क्योंकि दोनों देशों के उद्योग लगभग समान तरह के है । श्रीलंका की मुक्त अर्थव्यवस्था में भारतीय निवेशकर्ताओं ने सम्पन्न फसलों का रोपण किया तबा भारत ने श्रीलंका को कृषि सम्बन्धों एवं औद्योगिक वस्तु में भारी मात्रा में निर्यात करना भी प्रारम्भ कर दिया । श्रीलंका में उद्योगों की व्यवस्था हेतु भारतीय प्रमुख प्रतिष्ठान व्यवस्था सम्बन्धी कार्मिक भेजते है । कुछ व्यापारिक प्रतिष्ठान पूंजीगत माल जैसे सूती वस्त्रोद्योग तथा अभियन्त्राणीय उपकरणों का निर्यात करते है क्योंकि श्रीलंका में अभियन्त्रण उपकरणों की बहुत

---

1. कोडीकार "इण्डिया एण्ड सीलोन" पृष्ठ - 176
2. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 174
3. एन० के० श्रीवास्तव "भारत की विदेशनीति" पृष्ठ - 155 - 164

अधिक कमी है । भारतीय औद्योगिक प्रतिष्ठान टाटा, कमानी एवं क्राम्पटन ग्रीस पावर उपकरण एवं वाणिज्यक वाहनों जैसी परियोजनाओं में संलग्न है । श्रीलंका में 45 परियोजनायें भारतीय साझेदारी में स्वीकृत की गयी है । इन 45 परियोजनाओं में कुछ निवेश 1142 मिलियन रूपये है । श्रीलंका में भारतीय परियोजनाओं में कुल निवेश 1142 मिलियन रूपये हैं ।[1] श्रीलंका में भारतीय परियोजनाओं की स्थापना एवं साझेदारी के बाद भी दोनों देशों के मध्य स्वस्थ आर्थिक सम्बन्धों का विकास नहीं हो पाया है । वर्तमान समय में श्रीलंका के आयात पर ब्रिटेन, अमेरिका एवं चीन के बाद भारत का स्थान आता है ।

भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में आर्थिक आधारभूमि अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है । भारतीय मानवीय तत्वों ने श्रीलंका की अर्थव्यवस्था को पुष्पित एवं पल्लवित करने में विशेष योगदान दिया है तथा स्वतन्त्रतो प्राप्ति के बाद श्रीलंका के व्यापारी एवं वाणिज्यक क्षेत्र में विकास हेतु भारत में श्रीलंका को अनेक अनुदान एवं ऋण प्रदान किये है । इसके साथ ही भारत एवं श्रीलंका दोनों ही अपने आर्थिक सम्बन्धों में बृद्धि हेतु अनेक आर्थिक समझौते किये है, जिसमें दोनों देशों के मध्य आपस में अधिक से अधिक आयात एवं निर्यात हो सके, लेकिन फिर भी दोनों देशों के आर्थिक सम्बन्धो में बहुत अधिक सुधार नहीं हो सका है । भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्ध व्यापार सन्तुलन की समस्या से प्रारम्भ से घिरे रहे । व्यापार संतुलन प्रारम्भ से ही भारत में पक्ष में रहा है । श्रीलंका भारत को केवल नारियल, रबर, ग्रेफाइट आदि निर्यात करने में सक्षम है, लेकिन भारत में इन वस्तुओं की खपत बहुत अधिक सीमित है । रबर के क्षेत्र में चीन एवं श्रीलंका के मध्य समझौता होने के कारण श्रीलंका भारत को रबर प्रदान करने में भी असमर्थ रहा है, जबकि भारत विभिन्न प्रकार की वस्तुये निर्मित करने तथा श्रीलंका को प्रतियोगात्म मूल्य में प्रदान करने में सक्षम है ।

---

1. प्रगति मंजूषा जून 1987 "भारत एवं श्रीलंका - आर्थिक सम्बन्धों के बदलते समीकरण" पृष्ठ - 50

अतः स्पष्ट है कि भारत एवं श्रीलंका के मध्य आर्थिक सम्बन्ध अति प्राचीन काल से चले आ रहे है । प्राचीन काल से ही श्रीलंका भारत पर आर्थिक रूप से निर्भर रहा है । द्वितीय विश्वयुद्ध के समय श्रीलंका के आधे से अधिक आयात पर भारत का नियन्त्रण था । ब्रिटिश शासनकाल में श्रीलंका की अर्थव्यवस्था के सुधार में भारतीय मानवीय तत्वों ने विशेष योगदान दिया वर्तमान समय में भी श्रीलंका की अर्थव्यवस्था भारतीय मानवीय तत्व, विज्ञान एवं तकनीकि पर आधारित है । अतः भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्ध अन्योनाश्रित है ।

****

द्वितीय अध्याय

भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध

समकालिक विश्व राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । किसी देश की विदेशनीति का आधार वे सिद्धान्त होते है, जिसके आधार पर उस देश की सरकार विश्व के अन्य राष्ट्रों से सम्बन्ध स्थापित करती है । प्रत्येक देश की विदेशनीति में पड़ोसी देशों के प्रति नीतियाँ एवं सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है । प्रत्येक देश अपनी सीमाओं पर शान्ति एवं सुरक्षा चाहता है तथं पड़ोसी राष्ट्रों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध का आकांक्षी होता है । लेकिन ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि बहुत से राष्ट्रों को पड़ोसी देशों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता नहीं मिल पाती है । अधिकांशतः आकार एवं साधनों की विभिन्नता पड़ोसी राष्ट्रों के मध्य मतभेद का कारण होती है, लेकिन प्रत्येक देश की विदेशनीति का प्राथमिक आधार पड़ोसी देशों के प्रति नीतियों का संचालन होता है ।[1] भारतीय विदेशनीति के सम्बन्ध में भी यह तथ्य सर्वथा सत्य है । स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही भारतीय कांग्रेस ने 1920 से 1927 तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के परिचालन के सम्बन्ध में जिन सिद्धान्तों की स्थापना की थी उनमें से पहला सिद्धान्त है (1) भारत समस्त देशों के साथ विशेषकर पड़ोसी देशों के साथ सहयोग करेगा ।[2] स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नेहरू जी ने भारत की विदेशनीति के सम्बन्ध में कहा था कि "पडोसी देशों का विदेशनीतिं के निर्धारण में प्रथम स्थान है।"[3] भारत प्रारम्भ से ही पड़ोसी देशों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील रहा है । श्रीलंका भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के समीप स्थित एक छोटा से द्वीप है । भारत के अति समीप स्थित होने के कारण शताब्दियों से भारत श्रीलंका के मध्य ऐतिहासिक प्रजातीय भौगोलिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध चले आ रहे है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध निरन्तर दोनों देशों के शासनाध्यक्षों के व्यक्तित्व से भी प्रभावित होते रहे है । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से भारत श्रीलंका सम्बन्धों का वर्णन विभिन्न शासनाध्यक्षों के कालों के अन्तर्गत किया गया है ।

1. वी० पी० दत्त "इण्डिन फारन पालिसी" पृष्ठ - 162
2. दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ - 188
3. स्पीच डेलीवर्ड एट द इण्डियन काउंसिल आफ वर्ड एफयर इन न्यू देहली" 22 मार्च 1949

नेहरू जी का काल एवं श्रीलंका

स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद भारतीय शासन का संचालन सत्रह वर्षों तक प0 जवाहरलाल नेहरू द्वारा किया गया । नेहरू जी का व्यक्तित्व श्रीलंका वासियों के लिये सम्मानीय था । नेहरू जी इस द्वीप में केवल भारतीय प्रधानमन्त्री ही नही वरन एशिया के नेता एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के व्यक्ति माने जाते थे ।[1]

नेहरू जी श्रीलंका के साथ भावनात्मक रूप से जुड़े थे, क्योंकि उन्हें बौद्ध धर्म में विशेष आस्था थी । नेहरू जी सदैव भगवान बुद्ध की मूर्ति अपने पास रखते थे । उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा था कि "इससे उन्हें हमेशा शक्ति एवं प्रेरण मिलती है।"[2] भारत की स्वतन्त्राता के साथ ही नेहरू जी ने भारत में बौद्ध धर्म के विकास हेतु बल दिया । श्रीलंका प्रथम बौद्ध अनुयायी देश था, जिसका कूजिनीतिक आयोग (मिशन) भारत में सर्व प्रथम स्थापित हुआ ।[3] भारतीय विदेशनीति के पंचशील सिद्धान्त बौद्ध आदर्शो पर ही आधारित है । पंचशील बौद्ध धर्म का पारिभाषिक शब्द है । कोई भी व्यक्ति बौद्ध भिक्षु बनते समय जिन पाँच प्रतों को धारण करता है, उन्हें पंचशील की संज्ञा दी जाती है । राष्ट्रों के लिये आचरण के सम्बन्ध में जिन पाँच सिद्धान्तों की स्थापना की गयी है, उन्हें पंचशील की संज्ञा दी गयी है ।[4]

नेहरू जी 1931 में पहलीबार अपनी व्यक्तिगत यात्रा पर श्रीलंका गये ।[5] वहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता से वे बहुत अधिक प्रभावित हुये । 1931 से ही श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों की समस्या प्रारम्भ हो गयी थी, इसी समय से श्रीलंका के राजनेता इस आशंका को अभिव्यक्त करने लगे थे कि इतनी बड़ी संस्था में उपस्थित भारतीय आगे चल कर सिंहलियो पर हावी हो सकते है । नेहरू जी 1939 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में गये । 17 जुलाई

---

1. कोडीकारा "इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 35
2. आर0 रामास्वामी "न्यू देहली एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 135
3. वही ।
4. कोडीकारा "इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 35
5. आर0 रामास्वामी "न्यू देहली एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 154

1939 को नेहरू जी ने कोलम्बों में एक सभा को सम्बोधित करते हुये कहा था "भारत साम्राज्यबादियों को दूसरे देशों को गृहण करने य अन्य देशों पर अधिकार रखने से दूर रखना चाहता है । यदि भारतीयों को दूसरों के प्रति रूचि है तो यह उनकी दूसरों के प्रति सद्इच्छा य सहयोग की भावना है । मुझे भारतीय होने पर गर्व है तथा मैं यह कभी भी नही सह सकता कि भारतीयों के एक वाल को भी कोई स्पर्श करे । मैं नहीं चाहता कि भारतीय ऐसी जगह जायें जहाँ उनका स्वागत न हो यदि वे कही भी जाते हैं तो उन्हें वहाँ के व्यक्तियों की सद्इच्छा से जाना चाहिये । भारतीय जहाँ है उनपर किसी प्रकार का अत्याचार नही होना चाहिये । मैं भारतीयों को बम के नीचे गिर कर मरना अधिक पसन्द करूंगा बजाय इसके कि उनका अनादर किया जाये ।"[1]

भारत एवं श्रीलंका के मध्य राजनयिक संवाद का प्रथम दौर 1940 में सम्पन्न हुआ जिसके प्रमुख विषय थे गैर कानूनी आप्रजन एवं भारतीयों की नागरिकता । इसी बैठक में सोलेमान भंडारनायके ने बड़ी नाटकीय ढंग से घोषणा की थी "यदि भारतीय इतनी बड़ी संख्या में श्रीलंका के निवासी बने रहेगें तो सिंहलियों का राजनैतिक एवं आर्थिक सफाया हो जायेगा । हमारे लिये यह जीवन एवं मरण का प्रश्न है ।"[2]

नेहरू जी की श्रीलंका के साथ सम्बन्धों में बृद्धि 1947 में एशियायी देशों के शिखर सम्मेलन से हुयी । उस समय भारत एवं श्रीलंका पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं हुये थे, लेकिन दोनों देशों में अन्तिरिम सरकार का गठन हा चुका था । श्रीलंका में 1947 में डूनगमूर संविधान के अन्तर्गत डी० एक० सेनानायके को 1947 में प्रधानमन्त्री बनाया गया । एशियायी देशों का शिखर सम्मेलन जो मार्च - अप्रैल 1947 में दिल्ली में सम्पन्न हुआ था, उसमें सीलोन ने भाग लिया था ।[3] सीलोन भी भारत के समान व्रिटिश उपनिवेशबाद का अंग रह चुका था इसलिये इसकी नीतियाँ भी साम्राज्यबाद एवं उपनिदेशबाद विरोधी थी ।

---

1. आर० रामास्वामी "न्यू देहली एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 153
2. दिनमान 7 - 13 अगस्त 1983
3. कोडिकारा "इण्डो सीलोन रिलसन्स" पृष्ठ - 41

नेहरू जी ने प्रधानमंत्री बनते ही सीलोन में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों की नागरिकता की समस्या को समाधान करने के लिये प्रयास आरम्भ कर दिये थे । दिसम्बर 1947 को नेहरू जी एवं सीलोन के प्रधानमंत्री डी0 एस0 सेनानायेक ने भारतीय मूल के व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में एक समझौते का निर्णय लिया इस समझौते को पूर्ण एवं निश्चित रूप कोलम्बो अवलोकन के बाद दिया जाना था । 16 मार्च 1948 को सीलोन के प्रथम प्रधानमंत्री ने समझौते की परिस्थितियों में परिवर्तन किया नेहरू जी ने भी कुछ परिवर्तनों के साथ सीलोन के प्रधानमंत्री को पत्र द्वारा कुछ सुझाव दिये, लेकिन डी0 एस0 सेनानायके ने स्पष्ट कर दिया कि वे प0 नेहरू के नागरिकता के सम्बन्ध में दिये गये सुझाव को स्वीकार नही कर सकते ।[1] अत: नागरिकता के सम्बन्ध में सीलोन की सरकार की नीतियाँ भारतीय भावनाओं के विपरीत थी । सीलोन एक नवोदित राष्ट्र होने के कारण राजनीतिक दृष्टि से भारतीय नीतियों के काफी समीप था । भारत एवं सीलोन दोनों की नीतियाँ उपनिवेशबाद एवं साम्राज्यबाद विरोधी थी तथा दोनों ने ही राष्ट्रमंडल की सदस्यता गृहण की थी । 1949 में इंडोनेशिया की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर सीलोन उन अठारह राज्यों में से एक था, जिसे नेहरू जी ने आमंत्रित किया था ।[2]

सीलोन की विदेशनीति प्रारम्भ से ही ब्रिटिश नीतियों द्वारा संचालित थी । स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही ब्रिटेन एवं सीलोन के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार दोनों देश एक दूसरे को संकट के समय वाहय शक्तियों से सुरक्षित रहने के लिये सहयोग करेगे । सीलोन अपने नौसैनिक अड्डे एवं हवाइ अड्डे ब्रिटेन को उपयोग करने के लिये अनुमति देदी थी ।[3] सीलोंन के राजनेता सदैव भारत की ओर से आक्रमण के लिये आशंकित रहते थे, यद्यपि नेहरू जी सदैव इस बात के लिये प्रयत्नशील रहे कि सीलोन को भारत की ओर से किसी प्रकार के आक्रमण का भय न रहे ।

जनवरी 1950 में राष्ट्रमंडल के विश्व सम्मेलन में भारत सीलोन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, पाकिस्तान एवं ब्रिटेन के विदेशमन्त्री दक्षिण तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के विशाल क्षेत्र में

1. रामाराव "इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 70
2. काडीकारा "इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 41
3. कोडीकारा "फॉरेन पालिसी ऑफ श्रीलंका"

रहने वाले करोड़ो व्यक्तियों की राजनैतिक आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर विचार करने के लिये एकत्र हुये, जिसमें इस क्षेत्र के आर्थिक विकास की योजना के लिये एक समिति बनायी गयी। अक्टूबर 1950 में इस योजना को अन्तिम रूप दे दिया गया तथा 28 नवम्बर को इसे कोलम्बो योजना के नाम से प्रसारित किया गया।[1] राष्ट्र कुल देशों शिखर सम्मेलन में नेहरू जी भाग लेने के लिये कोलम्बो गये थे, वहाँ उन्होंने एक सभा को सम्बोधित करते हुये कहा था। "कुछ लोग डरते है कि भारत एक विशाल देश होने के कारण सीलोन पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। मैं आपलोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि यदि किसी भी व्यक्ति का ऐसा विचार है तो वह पूर्णतः गलत है।"[2] नेहरू जी सदैव इस बात के लिये प्रयत्नशील रहते थे कि सीलोन को भारत की ओर से किसी प्रकार के आक्रमण का भय न रहे। श्रीलंका के प्रधानमंत्री डी0 एस0 सेनानायेके को नेहरू जी के शासनकाल में भारत की ओर से किसी प्रकार के आक्रमण का भय नही था, लेकिन भारत जैसे विशाल देश से जिसका भविष्य काफी अच्छा हो, ये सदैव संचेत रहते थे, विशेषतः भारतीय प्रवासियों की नागरिकता के प्रश्न पर। उनका ब्रिटेन के साथ बढ़ता हुआ सम्बन्ध केवल वहाँ की सैन्य सुरक्षा के लिये नहीं, बल्कि भारत का दबाव जो नागरिकता के प्रश्न पर रहा है, उसके कारण उनका झुकाव ब्रिटेन के प्रति था।[3]

1952 में सीलोन के शासन का संचालन श्री डडले सेनानायके द्वारा किया गया, लेकिन उन्होंने बहुत कम समय में स्तीफा दे दिया। 1953 में सर जॉन कोटलेवाला द्वारा सीलोन के शासन का संचालन किया गया। 1954 में नेहरू जी दक्षिणी-पूर्वी एशिया के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में भाग लेने के लिये कोलम्बो गये। इस सम्मेलन में पाकिस्तान, वर्मा, इंडोनेशिया आदि के प्रधानमंत्रियों ने भाग लिया तथा उपनिवेशबाद, निःशस्त्रीकरण एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया की आर्थिक सहयोग की समस्या पर विचार किया गया।[4]

1954 में सीलोन के प्रधानमंत्री सरजैन कोटलेवाला नयी दिल्ली आये तथा दोनों प्रधानमंत्रियों के मध्य एक समझौता भारतीय प्रवासियों की नागरिकता के प्रश्न पर हुआ इस

---

1. के0 के0 कुलश्रेष्ठ "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ – 191
2. सीलोन डेली न्यूज 16 जनवरी 1950
3. द हिन्दुस्तान टाइम्स 9 फरवरी 1953
4. कोडीकारा "इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ – 41

समझौते के अन्तर्गत गैर कानूनी भारतीय प्रवासियों को भारत लौट जाने को कहा गया तथा भारतीयों के लिये श्रीलंका में प्रवेश पर रोक लगा दी गयी भारत एवं सीलोन के मध्य मूलभूत भेद अब भी बना रहा, क्योंकि सीलोन नागरिकताविहीन भारतीयों को स्वीकार नहीं कर रहा था तथा भारत केवल उन्हें ही भारतीय नागरिक मान रहा था, जिन्होंने भारतीय संविधान में नागरिकता प्राप्त कर ली थी ।

1955 में भारत एवं सीलोन दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने बाडुंग सम्मेलन में भाग लिया । इस सम्मेलन में श्रीलंका के प्रधानमंत्री की भूमिका पश्चिमी देशों के प्रवक्ता से अधिक नहीं थी ।[1] इस सम्मेलन में साम्राज्यबाद के एक प्रस्ताव पर नेहरू जी एवं कोटलेवाला में मतभेद हो गया था कोटलेवाला का मत था कि पश्चिमी साम्राज्यबाद के साथ रूसी साम्राज्यबाद की भी निन्दा आवश्यक है, क्योंकि पूर्वी योरोपीय साम्राज्यबाद एवं एशिया एवं अफ्रीका के साम्राज्यबाद में कोई अन्तर नहीं है, लेकिन नेहरू जी का मत था कि पूर्वी योरोप के सभी देश स्वतन्त्र एवं सार्वभौमिक है, उन्हें किसी आधार पर उपनिवेश नहीं कहा जा सकता ।[2] सीलोन की विचारधारा साम्यबाद विरोधी थी । सीलोन की संसद में त्रिकोमाली पर ब्रिटेन के नौसैनिक अड्डे का विरोध होने पर कोटलेवाला ने कहा था "सीलोन के प्रति भारतीय साम्रराज्यबादियों की महात्वाकांक्षा का ध्यान में रखते हुये ऐसा करना अनिवार्य है ।" अतः यूनाइटेट नेशनल पार्टी के सब नेता सदैव भारत की ओर से आक्रमण के लिये आशंकित रहते थे ।

1956 के आम चुनाव में यूनाइटेड नेशनल पार्टी से अलग होकर श्री भंडारनायेके ने श्रीलंका फ्रीडम पार्टी बनायी तथा प्रधानमंत्री के रूप में विजय प्राप्त की । प्रधानमंत्री बनते ही उन्होंने सिंहली जनता को खुश करने के लिये बौद्ध धर्म को राष्ट्र धर्म एवं सिंहली भाषा को राजभाषा करने का निर्णय लिया, इससे पहले तमिल एवं सिंहली दोनों भाषाओं को यह स्थान प्राप्त था ।

---

1. दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ – 166
2. डा० एम० पी० राय "भारत एवं विश्व राजनीति" पृष्ठ – 217

तमिल बाहुल क्षेत्र में सिंहली किसानो के पुनर्वास की योजना ने तमिलों के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया इसी समय से श्रीलंका में तमिल विरोधी भीषण दगों की शुरूआत हुयी ।[1]

श्री भंडारानायके ने अपने शासनकाल में पूर्ण रूप से गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया तथा ब्रिटेन के सीलोन से अपना सैनिक अड्डा हटाने के लिये मजबूर किया । श्री भंडारनायके के विचार नेहरू जी के समान समाजबादी एवं उपनिवेशबाद विरोधी थे । दोनों प्रधान मंत्री संसदात्मक शासन के पक्षपाती थे ।[2] भंडारनायके एशियायों देशों की समस्याओं के प्रति नेहरू जी के समान विचार रखते थे । दोनों प्रधानमंत्रियों ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन, तृतीय विश्व एवं अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर समान विचार व्यक्त किये श्री भंडारनायके ने 1956 में प्रधानमंत्री का कार्य गृहण करते हुये कहा कि "मैं कल्पना करता हूँ कि मेरे एवं पं० नेहरू के सम्बन्ध प्रधानमंत्री के रूप न केवल दोनों देशों एवं एशिय की समस्याओं के समाधान के लिये अच्छे होगें बल्कि सामान्य विश्व समस्याओं के समाधान में सहयोग देगे ।"[3] स्वेज समस्या के प्रति भारत एवं सीलोन का दृष्टिकोण समान था दोनों देशों ने इस समस्या के समाधान में संयुक्त राष्ट्रसंघ का सहयोग दिया ।

1957 में बौद्ध जयन्ती समारोह में भाग लेने के लिये नेहरू जी मुख्य अतिथि के रूप में सीलोन गये । इसी समय दोनों देशों ने एक सँयुक्त विज्ञाप्ति में शान्ति की समस्या के समाधान एवं विश्व सहयोग पर सहमति प्रकट की तथा दोनों प्रधानमंत्रियों ने पंचशील एवं सँयुक्त राष्ट्रसंघ में विश्वास व्यक्त किया ।[4] भंडारनायके के विचार में भारत एवं श्रीलंका की तमिल समस्या सीलोन की आन्तिरिक समस्या थी । भंडारनायके का काल भारत एवं सीलोन के मित्रतापूर्ण सम्बन्धों का सबसे अच्छा समय था । नेहरू जी ने 1959 में 2500 बौद्ध जयन्ती समारोह में भंडारनायेके को आमंत्रित किया था । 1959 में ही सोलेमान भंडारनायेके की हत्या कर दी गयी, उस समय भारत में उनके सम्मान में सार्वजनिक अवकाश घोषित किय गया ।[5]

---

1. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर 1988 "प्रेमदास का श्रीलंका और गरभायेगा एस० बसीन्द्र
2. कोडीकार "इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 45
3. द हिन्दू 8 अप्रैल 1956
4. वाइनट कोले "एक्रास द पाक स्ट्रेट" पृष्ठ - 143
5. कोडीकारा "इण्डो सीलोन्स रिलेसन्स" पृष्ठ - 50

श्री भंडारनायेके की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी श्रीमती सिरामाओ भंडारनायेके द्वार प्रधानमंत्री का पद गृहण किया गया । 1960 में श्रीमती भंडारनायेके द्वारा भारत की यात्रा की गयी, नेहरू जी ने उनका स्वागत केवल एक प्रधानमंत्री के रूप में नहीं किया, बल्कि सुलेमान भंडारनायेके की पत्नी के रूप में किया, जिनसे भारतीय पूर्णतः परिचित थे ।[1]

सितम्बर 1961 में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का प्रथम शिखर सम्मेलन युगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में सम्पन्न हुआ इस सम्मेलन में भारत श्रीलंका सहित पैतीस राष्ट्रों ने भाग लिया । इसमें सभी राष्ट्र ने उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का विरोध करते हुये सभी विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने पर बल दिया ।

18 दिसम्बर 1961 में भारतीय सेनाओं ने गोवा, डमन एवं द्वीव पर मुक्ति अभियान शुरू किया तथा भारत ने शक्ति प्रयोग के आधार पर गोआ को मुक्ति दिलायी । भारत के इस कार्य की स० रा० अमेरिका, ब्रिटेन एवं उनके कुछ देशों ने आलोचना की, लेकिन सीलोन सहित एशिया एवं अफ्रीका के गुटनिपेक रष्ट्रों ने भारत का समर्थन किया था ।

नेहरू जी की श्रीलंका के लिये अन्तिम यात्रा अक्टूबर में "भंडारनायेके स्मारक आर्युविज्ञान संस्थान" के उद्घाटन के सन्दर्भ में हुयी, इस समय भारत चीन सम्बन्ध तनावपूर्ण स्थिति में चल रहे है ।

20 अक्टूबर 1962 को चीनी सेना में बड़े पैमाने पर भारत के उत्तरीपूर्व सीमान्त पर तथा इसमें 100 मील की दूरी पर लद्दाख के मोर्चे पर आक्रमण किया । युद्ध आरम्भ होने के एक माह बाद चीन सेनाओं ने युद्ध विराम की घोषणा की तथा भारत के समक्ष कुछ प्रस्ताव रखे, लेकिन भारतीय प्रधानमंत्री ने यह प्रस्ताव रखा कि किसी प्रकार की वार्ता आरम्भ करने से पहले चीन को आठ सितम्बर 1962 मैक मोहन रेखा की स्थिति पर आ जाना चाहिये ।

---

1. द हिन्दू 31 दिसम्बर 1960

सीलोन की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके के प्रस्ताव पर भारत चीन सीमा–विवाद की समस्या करने के लिये कोलम्बों में छः राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ । यह सम्मेलन 10 से 12 दिसम्बर 1962 तक चला । जनवरी 1963 में इस सम्मेलन के प्रस्तावों को लेकर श्रीमती भंडारनायके पेकिंग गयी तथा वहाँ श्री चाऊ से वार्ता करके नयी दिल्ली आयी तथा नेहरू जी से विचार विमर्श किया । कोलम्बों प्रस्ताव चीनी प्रस्तावों से कई महत्वपूर्ण अंशों में भिन्न थे । चीनी प्रस्तावों को यदि भारत स्वीकार कर लेता तो भारतीय सेनाओं को सभी क्षेत्रों में बीस किलोमीटर हटना पड़ता । कोलम्बो प्रस्तावों में केवल चीनी सेनाओं के हटने के व्यवस्था थी यद्यपि कोलम्बो प्रस्ताव भारत की सितम्बर 1962 की स्थिति को लाने की भारत की माँग को स्वीकार नहीं करते थे, लेकिन समझौते की दृष्टि से भारत ने इन प्रस्तावों को मान्यता दे दी चीन ने इन प्रस्तावों को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करने के बाद अस्वीकार कर दिया ।

भारत चीन सीमा विवाद में श्रीमती भंडारनायके ने निष्पक्ष नीति का अवलम्बम न करके भारतीय भावनाओं को ठेस पहुँचायी । नेहरू जी के लिये यह बात अत्यन्त कष्टप्रद थी । श्रीमती भंडारनायेके ने स्पष्ट रूप से चीन को अक्रामक घोषित नहीं किया था, जबकि सीलोन के अन्य राजनैतिक दलों ने चीन को स्पष्ट रूप से आक्रामक घोषित किया था । भारत चीन सम्बन्ध में सीलोन की भूमिका अपने आर्थिक हितों से परिपूर्ण थी, क्योंकि दोनों ही देशों से सीलोन को आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध थे, इसलिये वह दोनों से ही मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखना चाहता था ।

मई 1964 को जवाहरलाल नेहरू का निधन हो गया । नेहरू जी के सम्मान में सीलोन में सार्वजनिक अवकाश घोषित किया गया ।

अतः स्पष्ट है कि नेहरू जी अपने शासन काल में सदैव श्रीलंका के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिये तथा प्रवासी भारतीयों की समस्या के समाधान के लिये प्रयत्नशील रहे, लेकिन उन्हे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता नहीं मिली, क्योंकि श्रीलंका के राजनेता भारत के

---

1. वाइनटकोले "एक्रास द पाक स्ट्रेट" पृष्ठ – 145

प्रति असुरक्षा की भावना से ग्रसित रहते थे, विशेषत: भारती प्रवासियों की नागरिकता के प्रश्न पर भारत सरकार द्वारा नागरिकता के सन्दर्भ में दवाव डालने के कारण ही श्रीलंका का झुकाव ब्रिटेन की ओर अधिक था जातीय समीकरण के आधार पर सिंहलराजनीति को खुश करने के कारण ही इस काल में श्रीलंका सरकार ने नेहरू जी के अनेक प्रयत्नों के बाद भी तमिल समस्या के समाधान के लिये कोई ईमानदारी पूर्ण प्रयास नहीं किया तथा भारत की ओन से सदैव आक्रमण के लिये आशंकित रहने के कारण भारत से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सके ।

शास्त्री जी का काल एवं श्रीलंका

नेहरू जी की मृत्यु के उपरान्त जून 1964 में श्री लाल बहादुर शास्त्री ने भारतीय शासन का संचालन किया । शास्त्री जी ने अपनी मृत्युपर्यन्त भारत की विदेशनीति का संचालन बड़ी कुशलता से किया । नेहरू जी के आदर्शवाद को ध्यान में रखते हुये शास्त्री जी ने राष्ट्रीय हित की दृष्टि से यथार्थवादी नीतियाँ अपनायीं । भारतीय विदेशनीति के सन्दर्भ में शास्त्री जी ने सर्वप्रथम यह परिवर्तन करने का प्रयत्न किया कि भारत को पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये, क्योंकि 1962 में भारत चीन युद्ध के समय भारत ने अपने को अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर बिल्कुल अकेला पाया था । पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रधानमंत्री ने नेपाल, वर्मा, एवं श्रीलंका की यात्रायें की तथा इन देशों के शासनाध्यनों से मिलकर विभिन्न समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न किया ।[1]

शास्त्री जी अपना पद गृहण करने के पश्चात् श्रीलंका में बसे भारतीय प्रवासियों की समस्या को समाधान के लिये सतत् प्रयत्नशील रहे । शास्त्री जी का दृष्टिकोण प्रवासी भारतीयों की समस्या को सुलझाने के लिये बहुत नम्र एवं सहनशील था ।[2] इसी कारण शास्त्री जी के शासनकाल में तमिल समस्या के समाधान हेतु भारत एवं श्रीलंका के मध्य ऐतिहासिक समझौता सम्पन्न हो सका, जिसे सिरामाओ - शास्त्री समझौते की संज्ञा दी जाती है । श्रीमती भंडारनायके ने स्वयं यह स्वीकार किया था कि यह समझौता शास्त्री जी की स्वच्छ राजनीति एवं समस्या समाधान की दृढ़ प्रतिज्ञ भावना के कारण सम्भव हो सका था, क्योंकि शास्त्री जी की प्रथम विदेशनीति यही थी कि अपने पड़ोसियों के साथ अच्छे सम्बन्ध रखे जाये तथा जो भी समस्यायें हो उनका निराकरण किया जाये ।

---

1. हरिदत्त वेदालंकार "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" प्रष्ठ - 222
2. ललित कुमार "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" प्रष्ठ - 49

शास्त्री जी के प्रधानमंत्री बनने के उपरान्त 5 अक्टूबर 1964 को काहिरा में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का द्वितीय शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ । इस सम्मेलन में भारत एवं सीलोन दोनों देशों के शासनाध्यक्षों ने भाग लिया । भारतीय प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने इस सम्मेलन में विश्व शान्ति को स्थापित करने के लिये पाँच सूत्रीय कार्यक्रम रखा 1964 में ही श्रीमती भंडारनायके एवं शास्त्री जी ने गैर आणविक राज्यों में एकता व संगठन का प्रयत्न करके जन विनास के उपकरणों के खिलाफ विश्व जनमत तैयार करने का आवाहन किया ।

22 अक्टूबर 1964 को सीलोन की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके प्रवासी भारतीयों की समस्या समाधान के सन्दर्भ में भारत यात्रा पर आयी । दिल्ली आने से पूर्व श्रीमती भंडारनायके ने अपने देश के विभिन्न शीर्षस्थ नेताओं से विचार विमर्श करने के साथ विपक्षी दल के नेता श्री डड्ले सेनानायके को भी विचार विमर्श के लिये आमंत्रित किया । भारत के प्रधानमंत्री ने भी इस समस्या के समाधान के सन्दर्भ में मद्रास के अधिकारी एवं राजनीतिज्ञों से विचार विमर्श करने के साथ-साथ अन्य राज्य सरकारों से भी उनका मत लिया था।[1]

भारत एवं श्रीलंका दोनों के शासनाध्यक्षों के अनेक प्रयत्नों के बाद 30 अक्टूबर 1964 को दोनों देशों के मध्य प्रवासी भारतीयों की नागरिकता के सन्दर्भ में समझौता सम्पन्न हो सका । इस समझौते के अन्तर्गत दोनों प्रधानमन्त्रियों के मध्य यह तय हुआ कि अक्टूबर 1964 में जिन नौलाख पचहत्तर हजार व्यक्तियों का अस्तित्व विवादग्रस्त है । उनमें से पाँच लाख पच्चीस हजार व्यक्तियों को भारत ले लेगा तथा तीन लाख व्यक्तियों को सीलोन की नागरिकता प्रदान की जायेगी । एक लाख पचास हजार व्यक्तियों का भविष्य 1965 में निर्धारित होगा । भारतीय नागरिकता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का भारत प्रत्यावर्तन पन्द्रह वर्षों में होगा, तथा इन पन्द्रह वर्षों में प्रत्यावर्तन श्रेणी के लोगों को भी श्रीलंका के नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त होंगे।[2]

---

1. ललित कुमार "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 50
2. गुप्ता एम0 सी0 "इण्डियन फॉरेन पालिसी" पृष्ठ - 309

यह समझौता दोनों देशों द्वारा प्रवासी भारतीयों की समस्या समाधान के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रमुख प्रयास था । लेकिन इस समझौते द्वारा जहाँ एक ओर समस्या समाधान के लिये दोनों देशों द्वारा ईमानदारी पूर्ण प्रयास किया गया था, वहीं दूसरी ओर 1,50,000 व्यक्तियों के भाग्य को भविष्य पर छोड़ दिया गया था तथा तीन लाख एवं पांच लाख का विभाजन करते हुये मानवीय पहलू की उपेक्षा की गयी थी । इसी कारण इस समझौते पर देनों देशों में मिली-जुली प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी । श्रीलंका की मजदूर कांग्रेस ने इस समझौते का विरोध किया । भारत के एक समाचार पत्र के अनुसार यह समझौता समस्या का सन्तोषजनक समाधान है । शास्त्री जी एवं सिरामाओं भंडारनायके इस बात पर गर्व महसूस कर सकते है कि उन्होंने उस समस्या का समाधान किया है जो पिछले सत्रह वर्षों से सम्भव नहीं हो सका ।[1]

भारत के विपक्षी दल के नेता जे0 बी0 कृपलानी तथा सी0 राजगोपालाचारी ने इस समझौते को अनिश्चतताओं से युक्त माना । श्री कृपलानी का मत था कि यह सझौता भारत सरकार के पक्ष में नहीं है ।[2] इस समझौते की सबसे बड़ी कमी यही थी कि इसमें 1,50,000 व्यक्तियों के भाग्य का निर्धारण भविष्य पर छोड़ दिया था ।

10 नवम्बर 1964 को श्रीमती भडारनायके ने यह घोषित किया कि जिन व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता प्रदान की जायेगी, उन्हें प्रथक निर्वाचक रजिस्टर में रखा जायेगा । दक्षिण भारत के एक समाचार पत्र के अनुसार यह सीलोन की सरकार का अविश्वास-पूर्ण कार्य था, जबकि 1954 के नेहरू-काटलेवाला समझौते में प्रथक निर्वाचन विधि की व्यवस्था रखी गयी थी, जिसे श्री भंडानायके द्वारा 1959 में संशोधन करके हटाया गया था तथा लगभग पचास हजार व्यक्तियों को सामान्य निर्वाचन रजिस्टर में रखा गया था ।[3] भारत के प्रशासनिक एवं राजनैतिक स्तर के व्यक्तियों को श्रीमती भंडारनायके के इस निर्णय पर बहुत आश्चर्य हुआ ।

---

1. द टाइम्स ऑफ इण्डिया 31 अक्टूबर 1964
2. द नेशनलहेरेड 1 नोवम्बर 1964
3. एशियन रिकार्डर 9 - 15 अप्रैल 1965

शास्त्री जी ने इस निर्णय पर चिन्ता व्यक्त की क्योंकि श्रीमती भंडारनायके का निर्णय मानव अधिकार के विरूद्ध था । अत: समझौते की स्याही सूखने भी न पायी थी तभी प्रथक मतदाता रजिस्टर के विषय में मतभेद हो गया । समझौते के कुछ दिनों बाद ही श्रीमती भंडारनायके चुनाव हार गयी तथा 1965 में यूनाइटेड नेशनल पार्टी सत्ता में आयी जिससे समझौता और भी अन्धकार में पड़ गया ।

25 मार्च 1965 को श्री डडले सेनानायके ने प्रधानमंत्री बनने के बाद यह घोषणा की कि सीलोन की गुटनिरपेक्ष नीति में कोई परिवर्तन नहीं होगा । भारत के समान सीलोन भी वास्तविक गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करेगा ।[1]

श्री डी० एस० सेनानायके ने भारत सीलोन समझौते के सम्बन्ध में तीन प्रमुख विषय उठाये, जिन पर वे भारत सरकार से विचार विमर्श करना चहाते थे ।

(1) पंजीकृत नागरिकों के लिये प्रथक निर्वाचक रजिस्टर का प्रश्न

(2) सीलोन के द्वारा रोजगार विल पर नियन्त्रण

(3) तथा अनिवार्य प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त ।[2]

इसी बीच जून 1965 में कच्छ के रन पर कुछ भारतीय चौकियों पर पाकिस्तान ने अधिकार स्थापित कर लिया, पकिस्तान का यह कार्य अन्तर्राष्ट्र कानून के विरुद्ध था, इस सम्बन्ध में भारत का दृष्टिकोण था कि इस क्षेत्र में विवाद का कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि यहाँ सीमान्त सुनिश्चत है, इसके विपरीत पाकिस्तान का मत था कि कच्छ के रन में भारत एवं पकिस्तान की सीमा 24 वी समानान्तर के साथ चलती है, इसलियें 3500 वर्गमील का क्षेत्र विवादग्रस्त है । ऐसा प्रतीत होतो था कि दोनों देशों के मध्य विवाद बहुत बढ़ जायेगा, लेकिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री की अपील पर दोनों देश युद्ध विराम के लिये तैयार हो गये । कच्छ के रन पर

---

1. एशियन रिकॉडर मई 14 - 20, 1967
2. वाइनट कोले "एक्रास द पाक स्ट्रेट" पृष्ठ - 147

समझौता होने पर भी 5 अगस्त 1965 को हजारों की संख्या में पाकिस्तानी सादा कपड़े में आधुनिक शस्त्रों सहित कश्मीर में घुस आये, इस पर शास्त्री जी ने आदेश दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के पार पाकिस्तान के क्षेत्र में हाजीपुर दर्रे में अधिकार कर लिया जाये, इससे पाकिस्तान के साथ युद्ध का मार्ग प्रशस्त हुआ । इस युद्ध की समाप्ति पर पाकिस्तान पर भारत ने पहली बार विजय स्थापित की ।

सीलोन के प्रधानमंत्री श्री डड्ले सेनानायके ने भारत एवं पाकिस्तान को कश्मीर समस्या मैत्रीपूर्ण ढंग से सुलझाने की सलाह दी तथा इस बात पर दुख प्रकट किया कि उसके दो महान पड़ोसी, जोकि राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं, एक दूसरे के साथ युद्ध में व्यस्त है ।[1] इस प्रकार सीलोन ने भारत – पाक युद्ध 1965 में तटस्थता की नीति का अनुसरण किया था ।

5 नवम्बर 1965 को सीलोन के राज्यमन्त्री श्री जयवर्धने ने यह घोषित कर दिया कि अभी सरकार का भारतीय मूल के व्यक्तियों के लिये प्रथक निर्वाचक रजिस्टर बनाने का कोई मन्तव्य नहीं है । यह भविष्य में निश्चित किया जायेगा, जब भारत सीलोन समझौता 1964 का लागू किया जायेगा । इस प्रकार सेनानायके ने समझौते को टाल दिया, परिणामस्वरूप शास्त्री जी को अपने प्रयास के अनुरूप सफलता नहीं मिली ।

जनवरी 1966 में शास्त्री जी का निधन हो गया । शास्त्री जी अपने शासनकाल में पड़ोसी देशों से मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील रहे । शास्त्री जी के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप सिरामाओ – शास्त्री समझौता 1964 सम्पन्न हो सका, जो तमिल प्रवासियों की समस्या समाधान में महत्त्वपूर्ण कदम था । श्रीलंका की सरकार ने सिंहली राजनीतिक दवाव के कारण इस समझौते को पूर्णतः लागू नहीं किया । श्रीलंका के शासक चुनावी राजनीति के कारण तमिल समस्या समाधान हेतु ईमानदारीपूर्ण प्रयास की ओर अग्रसर नहीं होते, इसीकारण शास्त्री जी द्वारा श्रीलंका के प्रति अधिक खुलेपन एवं समझौतावादिता की नीति अपनाने पर भी तमिल समस्या का स्थायी समाधान सम्भव नहीं हो सका ।

---

1. वाइनट कोले "एक्रास द पाक स्ट्रेट" पृष्ठ – 147

इन्दिरा गाँधी का काल एवं श्रीलंका

जनवरी 1966 में ताशकन्द में शास्त्री जी का अचानक निधन हो जाने के कारण भारत के तीसरे प्रधानमन्त्री के रूप में श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने पद गृहण किया । श्रीमती इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में भारत ने नेहरू द्वारा प्रतिपादित बुनियादी नीतियों का पालन करते हुये बदलती हुयी परिस्थति के अनुसार आचरण करने की क्षमता का परिचय दिया इस काल में भारत ने द्विपक्षीय वार्ताओं के द्वारा आपसी समस्याओं का समाधान करके अफगानिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, वर्मा, आदि अपने निकटम पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ठ एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये । भारत ने न केवल विश्व शान्ति बनाये रखने का प्रयास किया, बल्कि एशिया एवं अफ्रीका में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने का प्रयास किया जिससे आर्थिक प्रगति हो सके तथा सभी देशों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना का विकास हो सके ।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने पद गृहण करने के साथ ही सीलोन में बसे भारतीय प्रवासियों की समस्या समाधान के प्रयास के साथ ही दोनों देशों के मध्य आर्थिक एवं राजनैतिक सम्बन्धों के विकास के लिये प्रयत्नशील रही । सीलोन में इस समय श्री डडले सेनानायके प्रधानमन्त्री थे ।

भारत एवं सीलोन के आर्थिक सम्बन्धों में बृद्धि इन्दिरा गाँधी के काल में विशेष रूप से हुयी । 14 फरवरी 1966 को दो करोड़ रूपये का ऋण भारत से खाद्य पदार्थ, आदि को क्रय करने के लिये दिया । भारत ने यह ऋण सूखी मच्छली मिर्च, एवं तकनीकी आदि के सामान के क्रय करने के लिये दिया था सीलोन के उच्चायुक्त श्री अमरसिन्हे ने कहा कि यह ऋण आवश्यक खाद्य पदार्थों, के आयात जैसे विशेष उद्‌देश्य की पूर्ति, के लिये उपयोगी रहेगा ।[1]

---

1. एशियन रिकार्डर 5 - 11 मार्च 1966

7 दिसम्बर 1966 को सीलोन के प्रधानमंत्री श्री डड्ले सेनानायके ने 1964 के समझौते को लागू करने के लिये एक अधिनियम संसद में प्रस्तुत किया । इस अधिनियम के अनुसार भारतीय मूल के व्यक्ति जो सीलोन की नागरिकता प्राप्त करना चाहते है वे एक निश्चित समय के अन्दन आवेदन करें । नागरिकता प्रदान करने य अस्वीकार करने का अधिकार कार्यपालिका को होगा । सम्बन्धित मन्त्री का निर्णय अन्तिम निर्णय होगा ।[1] इस अधिनियम का सीलोन के विपक्षी दलों ने ही विरोध किया क्योकि इसमें भारत सीलोन सम्बन्ध के आवश्यक विषयों को नकारा गया था । इस अधिनियम में उन व्यक्तियों के लिये कोई व्यवस्था नहीं थी जो भारत य सीलोन की नागरिकता प्राप्त करने के लिये आवेदन नहीं कर सकते थे अथवा जिनके आवेदन-पत्र अस्वीकृत कर दिये गये थे ।[2]

इस कालमें भारत एवं सीलोन के मध्य रेडियो सीलोन द्वारा भारतीय गानों के प्रसारण से सम्बन्धित विवाद को दोनों देशों ने पारस्परिक सहमति के आधार पर सुलझाया । सीलोन की सरकार भारतीय गानों का शुल्क देने के लिये तैयार हो गयी । जुलाई 1967 में भारत एवं सीलोन के मध्य वायु सेवा से सम्बन्धित समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत दिल्ली एवं कोलम्बों के मध्य सीधे वायु सेवा की व्यवस्था की गयी ।[3]

16 अगस्त 1967 में भारत ने सीलोन को 5 करोड़ रूपये का ऋण विद्युत एवं दूरसंचार से सम्बन्धित उपकरण यन्त्र एवं औज़ार आदि के क्रय करने के लिये दिया ।[4] इस समय भारत एवं सीलोन के व्यापार सम्बन्धों में काफी वृद्धि हो रही थी ।

सितम्बर 1967 को इन्दिरागाँधी ने सीलोन के प्रधानमंत्री श्री डड्ले सेनानायके के आमन्त्रण पर सीलोन की यात्रा की । इस यात्रा के दौरान भारत एवं सीलोन के प्रधानमंत्रियों

---

1. ललित कुमार "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 69
2. एशियन, रिकार्डर 24 - 31 दिसम्बर 1966
3. एशियन रिकाडर 30 जौलाई - 5 अगस्त 1967
4. इण्डियन एक्प्रेस 12 सितम्बर 1967

ने एक संयुक्त विज्ञप्ति में 1964 के समझौते को लागू करने का संकल्प किया तथा चाय के निर्यात की समस्या के निराकरण पर विचार करने के साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वियतनाम पश्चिम एशिया एवं चीन के मध्य आर्थिक सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया ।[1]

4 मार्च 1968 को भारत एवं सीलोन की संयुक्त समिति में भारत – सीलोन समझौता 1964 की प्रगति का अवलाकन कोलम्बो में हुआ जिससे यह ज्ञात हुआ कि 30 अक्टूबर 1964 तथा 23 फरवरी 1968 के बीच 19,207 व्यक्ति भारतीय नागरिक के रूप में पंजीकृत हुये है । जबकि सीलोन सितम्बर 1967 के नागरिकता अधिनियम के अनुसार भारतीय मूल के 80 व्यक्तियों को सीलोन की नागरिकता प्रदान की गयी थी ।[2] अतः प्रारम्भ से ही सीलोन की नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में नीतियाँ ईमानदारपूर्ण नहीं थी । सीलोन की सरकार अनेक प्रतिबन्धों के बाद प्रवासी भारतीयों को नागरिकता प्रदान कर रही थी, जिसके कारण बहुत कम मात्रा में व्यक्ति सीलोन की नागरिकता प्राप्त कर पा रहे थे । भारतीय मूल के व्यक्ति जो भारत आना चाहते थे, उनका भारत आगमन आर्थिक अड़चनों के कारण लगभग रुका हुआ था, क्योंकि भारतीयों को अपनी सम्पत्ति भारत ले जाने के लिये विदेशी मुद्रा प्रमाण-पत्र प्राप्त करना था ।

सितम्बर, अक्टूबर 1968 में भारत एवं सीलोन के मध्य कच्छतिबु द्वीप के सम्बन्ध में कुछ कटुता आयी । पकिस्तान के विधिमन्त्री मो0 जाफर कच्छतिबु होते हुये कोलम्बो गये तथा उन्होने यह घोषित कर दिया किम यह टापू वास्तविक रूप में सीलोन के अधिकार क्षेत्र में है । भारत ने कच्छतिबु पर अपने अधिकार का तर्क प्रस्तुत किया तथा पाक की खाड़ी में भारतीय विमानों के प्रवेश की अनुमति चाही, लेकिन सीलोन की सरकार ने भारतीय तर्क एवं निवेदन को अस्वीकृत कर दिया ।[3] कुछ समय के लिये दोनों देशों के मध्य कच्छतिबु के

---

1. एशियन रिकॉर्डर 5 – 11 नवम्बर 1967
2. एशियन रिकोडर 6 – 12 मई 1968 पृष्ठ – 8569
3. एशियन रिकोडर 18 – 24 नवम्बर 1968 पृष्ठ – 8624

के सन्दर्भ में काफी मतभेद हो गया, क्योंकि दोनों ही देश इस द्वीप पर अपने अधिपत्य का दावा कर रहे थे ।

नवम्बर 1968 में सीलोन के प्रधानमंत्री श्री डड्ले सेनानायके भारत यात्रा पर आये तथा दोनों प्रधानमंत्रियों ने अपने देश के समुद्री मार्ग एवं मच्छुआरे की समस्या सुलझाने के लिये सहमति प्रकट की । श्री डड्ले सेनानायके ने कहा कि कच्छतिबु कोई विवाद का विषय नहीं है । कुछ गलत धारणा के कारण विवाद उत्पन्न हो गया है । दोनों प्रधानमंत्रियों ने तय किया कि इस विषय को सरकारी स्तर से सुलझाने में कोई आपत्ति नहीं होगी ।

27 नवम्बर 1968 को सेनानायके ने घोषणा कि अब प्रवासी भारतीयों को अपनी सम्पत्ति भारत ले जाने के लिये विदेशी मुद्रा प्राप्त प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहेगी तथा 1964 के समझौते के अन्तर्गत जिन व्यक्तियों ने भारत की नागरिकता प्राप्त की है, उन्हें 75,000 रुपये की सम्पत्ति भारत ले जाने का अधिकार है ।[1] दोनों प्रधानमंत्रियों ने एक संयुक्त विज्ञप्ति में आपस में आर्थिक सहयोग विशेषतः चाय के क्षेत्र में, करने पर बल दिया तथा दोनों प्रधानमंत्रियों ने इस बात पर सहमति प्रकट की कि दोनों देशों को विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कृषि, विज्ञान एवं शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग के लिये गम्भीर प्रयास करने चाहिये ।[2]

1969 में भारत एवं सीलोन के मध्य आर्थिक सहयोग समिति का गठन हुआ, जिसकी प्रथम बैठक 26 जनवरी को कोलम्बो में आयोजित की गया, इसमें भारतीय वाणिज्य मंत्री ने भाग लिया । इस समिति में दोनों देशों के आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों की समस्याओं तथा उनके निराकरण पर विचार-विमर्श हुआ ।[3] इस काल में भारत एवं सीलोन के आर्थिक सम्बन्धों में सार्वाधिक बृद्धि हुयी । सेनानायके ने अपने शासनकाल में भारतीय प्रवासियों की समस्या समाधान के लिये उदार नीति अपनायी ।

---

1. दिनमान दिसम्बर 1968
2. टाइम्स आँफ इण्डिया 10 दिसम्बर 1968
3. महेश्वरी "इण्डिया श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 173

1970 में श्रीमती भंडारनायके दूसरी बार सीलोन की प्रधानमंत्री बनी । इस समय श्रीमती इंदिरागाँधी एवं श्रीमती भंडारनायके ने नेहरू जी एवं श्री भंडारनायके की मित्रता को आगे बढ़ाने के साथ-साथ इस भावना से भी कार्य किया कि वे दोनों ही विश्व की महिला प्रधानमंत्री हैं । लेकिन प्रवासी भारतीयों की समस्या समाधान में श्रीमती भंडारनायके ने कोई स्पष्ट नीति का अनुसरण नहीं किया । श्रीमती इन्दिरागाँधी एवं श्रीमती भंडारनायके ने लुसाका में आयोजित गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के तृतीय शिखर सम्मेलन में भाग लिया । इस सम्मेलन में भारत एवं सीलोन दोनों ने ही हिन्दमहासागर को शान्तिक्षेत्र घोषितकरने की माँग पर बल दिया ।[1]

अगस्त 1970 में भारत एवं सीलोन के मध्य दस हजार मैट्रिक टन चीनी की बिक्री से सम्बन्धित समझौता हुआ ।[2] मार्च - अप्रैल 1971 में जब सीलोन की सरकार के विरूद्ध युवकों द्वारा विद्रोह कर दिया गया तब वहाँ की सरकार ने सुरक्षा एवं स्थायित्व के लिये भारतसे सहायता माँगी । भारत पहला देश था जिसने सीलोन की सरकार को राजद्रोहियों का सामना करने के लिये सहायता प्रदान की थी । यह पहला मौका था जब भारत ने किसी पड़ोसी देश की सुरक्षा में प्रत्यक्ष सहयोग दिया था ।

1971 में पाकिस्तान के वायुयानों ने भारत के हवाई अड्डों पर भीषण बमबारी कर दी थी । भारत पाक के इस विवाद के सम्बन्ध में तथा भारतीय विमानों के जलाये जाने एवं उनके अपहरण के सम्बन्ध में सीलोन ने पकिस्तान की निन्दा की । दिसम्बर 1971 में बंगलादेश के अभ्युदय एवं भारत पाक युद्ध के समय श्रीमती भंडारनायके ने यह घोषणा की कि उनका देश इस युद्ध में भारत य पाकिस्तान किसी के साथ नहीं है । उनकी सरकार पूर्ण रूप से गटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करेगी ।[3] लेकिन श्रीमती भंडारनायके ने पूर्वी पाकिस्तान से पश्चिमी पाकिस्तान को जाने वाले वायु-यानों को कोलम्बो से होकर जाने की

---

1. रवि कान्त दुबे "इण्डिया श्रीलंका रिलेसन्स" पृष्ठ - 98
2. एशियन रिकॉर्डर अक्तूबर 29 - 4 नवम्बर 1970
3. एशियन रिकॉर्डर 24 - 31 दिसम्बर 1971 पृष्ठ - 10542

अनुमति प्रदान कर दी थी । इस प्रकार श्रीमती भंडारनायके की नीतियाँ पाकिस्तान की ओर झुकाव की थी । भारत-पाक विवाद में चीन की शत्रुतापूर्ण नीति का आधार अवश्य ही था । श्रीमती भंडारनायके चीन के साथ मृदुनीति अपनाकर सम्बन्ध रखने की इच्छुक थी, इसी कारण सीलोन की नीतियों का झुकाव पाकिस्तान के प्रति था ।

22 मई 1972 में श्रीलंका में नया संविधान लागू किया गया तथा इस द्वीप का नाम "सीलोन" के स्थान पर श्रीलंका रखा गया ।

अप्रैल 1973 में इन्दिरा गाँधी श्रीलंका की यात्रा पर गयी । इस यात्रा के दौरान दोनों प्रधानमंत्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर विचार-विमर्श किया तथा गुट निरपेक्ष आन्दोलन में पूर्ण आस्था व्यक्त करते हुये हिन्दमहासागर को शान्तिपेक्ष घोषित करने की माँग पर सहमत हुये । दोनों प्रधानमंत्रियों ने शीशा, ग्रेफाइट, रबर एवं माइका आदि के क्षेत्र में आर्थिक एवं व्यपारिक सम्बन्धों में विकास करने का निश्चय किया । इसी यात्रा के दौरान यह तय हुआ कि भारत 5,25,000 व्यक्तियों को ले लेगा तथा 1964 के समझौते की अवधि 30 अक्टूबर 1979 से बढ़ाकर 1982 कर दी जायेगी तथा दोनों देशों की प्रधानमंत्रियों ने बचे हुये 1,50,000 लोगों के सम्बन्ध में भी अति शीघ्र निर्णय करने का संकल्प किया ।[1]

मई 1973 को भारत ने एक करोड़ रुपया अगले पाँच वर्षीय कार्यक्रम में विकासात्मक कार्यों के लिये दिया । 27 अगस्त 1973 के समझौते के अन्तर्गत भारत ने 5 करोड़ रुपये का ऋण भारत से ही सामान आदि के क्रय के लिये दिया तथा भारत एवं श्रीलंका ने कुटीर उद्योग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि के क्षेत्र में सहयोग के लिये सहमति प्रकट की ।[2] सितम्बर 1973 में अल्जीयर्स में भारत एवं श्रीलंका के प्रधानमंत्रियों ने चौथे गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में भाग लिया तथा दोनों देशों ने साम्राज्यबाद एवं उपनिवेशबाद का विरोध एवं जातीय विद्वेश

---

1. गुप्ता एम० सी० "इण्डियन फॉरेन पालिसी" पृष्ठ - 315
2. एशियन रिकॉर्डर अक्टूबर 1 - 7, 1973 पृष्ठ - 11624

के उन्मूलन का समर्थन किया ।

22 जनवरी 1974 को श्रीमती भंडारनायके भारत यात्रा पर आयी तथा कच्छतिबु एवं राज्यविहीन नागरिकों की समस्या पर भारत एवं श्रीलंका के प्रधानमंत्रियों ने विचार विमर्श किया क्योंकि इन दोनों विवादों के कारण भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध बहुत कमजोर हो गये थे । श्रीमती भंडारनायके की इस यात्रा के दौरान दोनों प्रधानमंत्रियों ने यह तय किया कि 1964 के समझौते के अन्तर्गत जिन 1,50,000 व्यक्तियों के भविष्य के बारे में निर्णय नहीं लिया गया था उनमें से 75,000 व्यक्तियों को भारत तथा 75,000 व्यक्तियों को श्रीलंका ले लेगा ।[1]

दोनों प्रधानमंत्रियों ने पुनः हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग पर सहमति प्रकट की तथा गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में पूर्ण आस्था व्यक्त की । श्रीमती इन्दिरागाँधी ने श्रीलंका में होने वाले आगामी गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में पूर्ण सहयोग देने का आशवासन दिया ।[2]

कच्छतिबु द्वीप भारत एवं श्रीलंका के मध्य प्रारम्भ से ही विवाद का कारण रहा है, दोनों ही देश इस द्वीप पर अपना अधिकार मानते थें । 1974 में दोनों देशों ने समझौतापारित की नीति अपनाकर काच्छतिबु द्वीप की समस्या का समाधान किया । जून 1974 में श्रीमती भंडारनायके के पुनः भारत आगमन पर भारत एवं श्रीलंका के मध्य पाक की खाड़ी सम्बन्धी सीमा निर्धारिण समझौता हुआ । नये समझौते के अनुसार कच्छतिबु पर श्रीलंका का अधिकार स्वीकार किया गया । कच्छतिबु पर श्रीलंका का अधिकार हो जाने पर भी भारतीय मच्छुआरे एवं तीर्थयात्रियों को इसका उपयोग करने का अधिकार निर्विवाद रूप से दिया गया तथा दोनों देशों के जहाजों को एक दूसरे के क्षेत्र में पहले के समान जाने का अधिकार दिया गया ।[3]

---

1. एशियन रिकॉडर फरवरी 19 – 25, 1974 पृष्ठ – 11862
2. वही ।
3. एशियन रिकॉडर 20 – 26 अगस्त 1974 पृष्ठ – 12250

नवम्बर 1974 में श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके योगोस्लाविया, रूमानिया, ईरान एवं पाकिस्तान से लौटते हुये भारत आयी तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी के साथ आर्थिक सहयोग के विकास के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के साथ हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा के कारण इसे शान्ति क्षेत्र घोषित करने पर सहमति प्रकट की ।

पहली मार्च 1975 को भारत एवं श्रीलंका के मध्य नयी दिल्ली में तकनीकी एवं वैज्ञानिक समझौता हुआ, जिसके अनुसार दोनों देश वैज्ञानिक एवं तकनीकि के क्षेत्र में एक दूसरे को सहयोग करेगें ।[1] अगस्त 1975 में भारत ने श्रीलंका को कृषि संयत्र के 10 करोड़ रुपये का ऋण दिया । 10 फरवरी 1976 को भारत ने एक समझौते के अन्तर्गत 5 करोड़ रुपये मुख्य वस्तुओं आदि के क्रय करने के लिये दिये ।[2] इसके अतिरिक्त फरवरी 1976 में भारत एवं श्रीलंका के मध्य दो और समझौते हुये पहला तकनीक एवं वैज्ञानिक सहयोग से सम्बन्धित तथा दूसरा समझौता वायु सेवा से सम्बन्धित हुआ ।

23 मार्च 1976 को भारत श्रीलंका के मध्य साढ़े तीन वर्षों के प्रयास के बाद समुद्री सीमा निर्धारण सम्बन्धी समझौता सम्पन्न हो सका । इस समझौते के अनुसार आर्थिक क्षेत्र के लिये 320 कि०मी० की दूरी निश्चित की गयी तथा यह निर्णय लिया गया कि जहाँ कहीं भी यह दूरी एक दूसरे का अतिक्रमण करे वहाँ भू-सीमा से बराबर-बराबर की दूरी को स्वीकृत अधिकृत क्षेत्र माना जायेगा । 10 मई 1976 को दोनों देशों ने इस पर अपना समर्थन व्यक्त किया तथा तभी से यह समझौता लागू किया गया ।

13 अप्रैल 1976 को श्रीमती भंडारनायके भारत आयी तथा उन्होंने इन्दिरागाँधी से श्रीलंका में होने वाले आगामी गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन तथा सीमा निर्धारण सम्बन्धी समझौते में उत्पन्न समस्याओं पर विचार - विमर्श किया ।[3]

---

1. एशियन रिकॉर्डर 23 - 29 मई 1975 पृष्ठ - 12548
2. वही । 18 - 24 मार्च 1976 पृष्ठ - 13069
3. एम० सी० गुप्ता "इण्डियन फॉरेन पालिसी" पृष्ठ - 305

अगस्त 1976 में गुटनिरपेक्ष देशों का पाँचवा शिखर सम्मेलन कोलम्बो में आयोजित किया गया। कोलम्बो सम्मेलन में भारत ने प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया तथा सम्मेलन में मुख्य स्वर भारत का ही रहा । भारत एवं श्रीलंका ने हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग का समर्थन किया ।

22 नवम्बर 1976 को भारत एवं श्रीलंका के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार मन्नार की खाड़ी में भारत, श्रीलंका एवं मालद्वीप के त्रिसंगम बिन्दु तक एक समुद्री सीमा रेखा का निर्धारण किया गया ।[1] जनवरी 1977 को 7 करोड़ रुपये का ऋण भारत सरकार ने श्रीलंका को भारत से ही औधोगिक वस्तुओं आदि को क्रय करने के लिये दिया ।

भारत में 25 जून 1975 से मार्च 1977 तक आपात स्थिति लागू की गयी थी, जिसका प्रभाव भारत के अन्य देशों से स्थापित सम्बन्धों पर पड़ा । श्रीलंका में भी श्रीमती भंडारनायके ने आपातकालीन स्थिति घोषित की थी, जिसके कारण उनकी सरकार की नीतियाँ भारत के प्रति सहानुभूति पूर्ण थी ।[2]

1977 में ही भारत एवं श्रीलंका दोनों में ही आम चुनाव सम्पन्न हुये । इस चुनाव में इन्दिरागाँधी एवं श्रीमती भंडारनायके दोनों ही चूनाव हार गयी तथा भारत में जनता पार्टी, एवं श्रीलंका में यूनाइटेड नेशनल पार्टी की नयी सरकार स्थापित हुयी ।

अत: श्रीमती इन्दिरागाँधी के शासन काल में भारत ने श्रीलंका के साथ आपसी समस्यायें सुलझाने एव् आर्थिक सम्बन्धों में बृद्धि करने का प्रयास किया। इस काल में भारत ने अपने पड़ोसियों के साथ सीमा सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया, भारत ने एक बड़े पड़ोसी देश की भूमिका का निर्वाह करते हुये कच्छतिबु एक समझौते के अनुसार श्रीलंका को दे दिया । इस काल में भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में सर्वाधिक बृद्धि हुयी तथा दोनो देशों ने तमिल प्रवासियों की समस्या समाधान के लिये उदारनीति का अनुसरण किया ।

---

1. एशियन रिकार्डर दिसम्बर 23 - 31, 1976 पृष्ठ - 13509
2. वी0 पी0 दत्ता "इण्डियन फॉरेन पालिसी" पृष्ठ - 320

जनता पार्टी का शासन एवं श्रीलंका

1977 में भारत एवं श्रीलंका दोनों देशों में एक लम्बे समय से शासन करने वाली सरकार के स्थान पर नयी सरकार की स्थापना हुयी । भारत में प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की शासन सत्ता तथा श्रीलंका में जयवर्धने के नेतृत्व में यूनाइटेड नेशनल पार्टी की सरकार स्थापित हुयी । भारत वर्ष के इतिहास में पहलीबार 1977 में कांग्रेस पार्टी के अतिरिक्त किसी अन्य दल के शासन की स्थापना हुयी थी ।

जनता सरकार ने भारतीय विदेशनीति के परिप्रेक्ष्य में नेहरू जी की नीतियों का अनुसरण करने के साथ कुछ अन्य तत्वों पर बल देकर इसमें परिवर्तन भी किया । प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई ने पद गृहण करने के साथ यह घोषणा की कि उनकी सरकार विशुद्ध गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करने के साथ पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित रखने के लिये प्रयत्नशील रहेगी । जनता सरकार ने अपने शासन काल में सोवियत संघ के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखते हुये अमेरिका एवं चीन के साथ सम्बन्धों में बृद्धि करने का प्रयास किया तथा पड़ोसी देशों के प्रति अपेक्षाकृत खुलेपन की नीति का अनुसरण किया । जनता सरकार ने बंगलादेश के साथ फरक्का विवाद को सुलझाने का प्रयास किया, नैपाल के साथ तीन सन्धियाँ की तथा श्रीलंका के साथ सांस्कृतिक समझौता किया । चीन एवं पाकिस्तान के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध घनिष्ठ करने की राजनैतिक इच्छा को व्यवहार में दिखाकर उन्हें प्रभावित किया ।

जनता सरकार ने अपने शासन में श्रीलंका के साथ सम्बन्ध बढ़ाने के लिये ईमानदारी भरा प्रयास किया ।

29 नवम्बर 1977 को भारत एवं श्रीलंका के मध्य एक सांस्कृतिक समझौता हुआ, जिसके अनुसार दोनों देश विभिन्न क्षेत्रों में एक दूसरे को शैक्षिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान करेगे । श्रीलंका के साथ इस प्रकार का यह पहला समझौता था, जबकि भारत के साठ अन्य

देशों से इस प्रकार के समझौते थे ।[1] जनवरी 1978 में भारत ने श्रीलंका को 15 वर्षों में लौटाया जाने वाला 5% ब्याज की दर पर भारत से आवश्यक वस्तुये के क्रय के लिये दस करोड़ रूपये का ऋण दिया ।

श्रीलंका के विदेशमन्त्री एस0 सी0 एस0 हमीद अप्रैल 1978 में भारत आये, भारतीय विदेशमन्त्री श्री अटल विहारी वाजपेयी ने उनका स्वागतत करते हुये कहा "1977 का वर्ष भारत एवं श्रीलंका के इतिहास का सीमा चिन्ह है । दोनों ही देशों के नागरिकों ने अपने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने के लिये समान रूप से अपने अधिकारों का प्रयोग किया है तथा दोनों ही देशों के नागरिकों ने एक लम्बे समय से शासन करने वाली सरकार को अस्वीकार कर दिया है तथा शासन के कार्यो को विपक्षी दलों के हाथ में देश को उन्नति के मार्ग में अग्रसर करने के लिये सौंप दिया ।[2]

भारत एवं श्रीलंका के शासक समान रूप से आपातकाल में लागू होने वाले नियमों के दोषों का खोजने के लिये प्रयत्नशील थे क्योंकि भारत एवं श्रीलंका दोनों में ही निर्वाचन से पूर्व आपातकालीन स्थिति लागू थी ।[3]

16 अगस्त 1978 को श्रीलंका में नया संविधान स्वीकार किया गया, जिसके अन्तर्गत श्रीलंका में अध्यक्षीप शासन प्रणाली को अपनाया गया । जयवर्धने ने अध्यक्षीप शासन प्रणाली के अन्तर्गत राष्ट्रपति के रूप में शासन गृहण किया । श्रीलंका के नये संविधान के अनुसार राष्ट्रीयता विहीन लोगों का यह मूलभूत अधिकार माना गया कि दस वर्षो में या तो उन्हें भारत प्रत्यावर्तित कर दिया जायेगा या श्रीलंका की नागरिकता प्रदान की जायेगी ।

27 अक्टूबर 1978 को श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने भारत यात्रा पर आये तथा दोनों देशों ने आपस में व्यापारिक सम्बन्धों में बृद्धि करने पर सहमति प्रकट की [4] इस समय

---

1. अशियन रिकॉडर 1 – 7 जनवरी 1978 पृष्ठ – 14029
2. कोडीकारा "फॉरेन पालिसी ऑफ श्रीलंका" पृष्ठ – 48
3. वही ।
4. एशियन रिकॉडर 3 – 9 दिसम्बर, 1976 पृष्ठ – 14627

भारत एवं श्रीलंका की विदेशनीति अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में लगभग समान थी । श्रीलंका में इस समय तमिलों का प्रथक राज की माँग पर वृहद आन्दोलन चल रहा था । इस आन्दोलन के सम्बन्ध में मोरार जी देसाई ने एक प्रेस विज्ञप्ति में कहा "मैं तमिलों को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं देता । उन्हें इस प्रकार के कार्य नहीं करना चाहिये । वे श्रीलंका के नागरिक है न कि तमिल।"[1]

मोरार जी देसाई 3 फरवरी 1979 को राष्ट्रपति जयवर्धन के आमन्त्रण पर श्रीलंका गये । मोरार जी देसाई श्रीलंका के स्वतन्त्रता दिवस के अवसर में मुख्य अतिथि के रूप में सम्मानित किये गये थे । इस यात्रा के दौरान दोनों देशों के शासनाध्यक्षो ने बौद्ध तीर्थयात्रियों की भारत यात्रा के लिये सुविधाओं में बृद्धि करने में सहमति प्रकट की ।[2] इसी समय प्रधानमंत्री प्रेमदास ने भारत में इन्दिरा जी एवं श्रीलंका में श्रीमती भंडारनायके के शासन पर टिप्पणी करते हुये कहा कि "भारत एवं श्रीलंका के नागरिकों ने अंधकारयुक्त कुशासन को अस्वीकार कर दिया है।[3] दोनों देशों के शासनाध्यक्षों ने उदारनीति अपना कर आपसी सम्बन्धों के विकास पर बल दिया । श्री देसाई ने अपनी इस यात्रा के दौरान प्रवासी भारतीयों की समस्या का स्वयं अवलोकन किया ।

मई 1979 में भारत एवं श्रीलंका संयुक्त रूप से सिन्थेटिक रोजिन कारखाना श्रीलंका में लगाने के लिये सहमत हुये । 22 अगस्त 1979 को भारत एवं श्रीलंका ने नई दिल्ली में एक समझौते पर हस्ताक्षार किये, जिसके अनुसार भारत श्रीलंका को दस करोड़ रुपये का ऋण देगा । यह ऋण 5% व्याज की दर पर 5 1/2 वर्षो में वापस किया जायेगा ।[4]

सितम्बर 1970 में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का छठा शिखर सम्मेलन क्यूबा की राजधानी हवाना में सम्पन्न हुआ इस सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इस शिखर सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व तत्कालीन विदेशमन्त्री श्री श्यामनन्दन मिश्र ने किया था यह पहला अबसर था जब गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में भारत के प्रधानमंत्री का स्थान रिक्त रहा था ।

---

1. कोडीकारा "फारन पॉलिसी ऑफ श्रीलंका" पृष्ठ – 4।
2. गुप्ता एस0 सी0 "इण्डियन फॉरन पालिसी" पृष्ठ – 305
3. वही ।
4. एशियन रिकॉर्डर 24 – 30 सितम्बर, 1979

1980 में भारत में मध्यावधि चुनाव हुये, जिसमें श्रीमती इन्दिरागाँधी ने पुनः सफलता प्राप्त की तथा प्रधानमंत्री के रूप में पद गृहण किया तथा जनता पार्टी के शासन की समाप्ति हुयी ।

अतः स्पष्ट है कि जनता शासन में भारत की विदेशनीति में कोई मूल-भूत अन्तर नहीं आया । पड़ोसी देशों के सम्बन्ध में जनता सरकार ने नेहरू जी एवं इन्दिरा जी की अपेक्षा अधिक उदारता की नीति अपनाने का प्रयास किया । इस काल में भारत ने श्रीलंका के साथ आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों में बृद्धि करने का प्रयास किया ।

जनता सरकार द्वारा श्रीलंका के प्रति अपेक्षाकृत अधिक उदार एवं खुलेपन की नीति का अनुसरण करने पर भी तमिल समस्या का समाधान करने में इस काल में भी कोई सफलता नहीं मिली, क्योंकि जयवर्धने सरकार ने तमिल समस्या को राजनैतिक समस्या न मानकर सदैव एक आंतकवादी समस्या माना था ।

इन्दिरा गाँधी का काल एवं श्रीलंका

जनवरी 1980 में श्रीमती इन्दिरागाँधी ने पुनः भारत के प्रधानमंत्री पद को ग्रहण किया श्रीमती गाँधी ने अपने शासनकाल के इस द्वितीय चरण में विश्व राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने के साथ ही पड़ोसी देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किये । वे श्रीलंका के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने तथा प्रवासी भारतीयों की समस्या समाधान के लिये निरन्त प्रयत्नशील रही, लेकिन श्रीमती इन्दिरागाँधी के शासनकाल के इस द्वितीय चरण में भारत श्रीलंका सम्बन्धों में काफी मतभेद उत्पन्न हुये इस काल में तमिल अल्पसंख्यकों एवं त्रिकोमाली बन्दरगाह से सम्बन्धित विवादों ने काफी सीमा में दोनों देशों के मध्य कटुता उत्पन्न की।

श्रीमती इन्दिरागाँधी के प्रधानमंत्री बनने के उपरान्त 14 मार्च 1980 को भारत एवं श्रीलंका के मध्य दोहरी कर प्रणाली को हटाने से सम्बन्धित समझौता हुआ ।[1] 1981 में भारतीय विदेशमंत्री श्री वेकंटरमन श्रीलंका की यात्रा पर गये तथा कोलम्बों में एक समझौते के अनुसार भारत ने दस करोड़ रुपये का ऋण भारत से मशीनरी आदि की खरीदारी के लिये दिया । इस यात्रा के दौरान वित्त मंत्री ने भारत श्रीलंका सम्बन्धों को सबसे अच्छी स्थिति में बताया ।[2]

8 जुलाई 1981 को यूनाइटेड नेशनल पार्टी ने भारत - श्रीलंका समझौते के अधिनियम 1967 में श्रीलंका की नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में परिवर्तन कर दिया । सिरामाओं - शास्त्री समझौते की अवधि 30 अक्टूबर 1981 को समाप्त हो गयी । श्रीमती इन्दिरागाँधी ने कहा "कि ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है, जिसके कारण सिरामाओं-शास्त्री समझौते को नया रूप दिया जाये । उन्होंने कहा कि भारत उन व्यक्तियों के भारत प्रयावर्तन के लिये राजी नहीं होगा जो भारत वापस नहीं आना चाहते ।[3]

---

1. एशियन रिकॉर्डर अप्रैल 22 - 28, 1980 पृष्ठ - 15428
2. वेकट रामान्स रिपोर्ट इन द हिन्दू 7 जनवरी 1981
3. एशियन रिकॉर्डर दिसम्बर 24 - 31, 1981 पृष्ठ - 16378

इस समय श्रीलंका में तमिल विरोधी भीषण दंगें हो रहे थे । सिंहलियों ने अनेक तमिलों की हत्या कर दी थी तथा श्रीलंका की सेना तमिलों के विरोध में दमन चक्र चला रही थी । श्रीलंका में तमिलों पर हो रहे अत्याचार पर भारत ने प्रारम्भ में कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तथा श्रीलंका के साथ सामान्य सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास किया ।

18 जनवरी 1982 को भारत एवं श्रीलंका के मध्य माइक्रोवेव लाइन जोड़ी गयी । 27 जनवरी 1982 को पुनः भारत सरकार एवं श्रीलंका सरकार के मध्य दोहरी कर प्रणाली हटाने से सम्बन्धित एक समझौता हुआ, जिससे दोनों के आर्थिक सम्बन्धों में विकास हो सके ।[1] इसी समय भारत के राष्ट्रपति श्री संजीव रेड्डी श्रीलंका यात्रा पर गयें । जयवर्धने ने श्री रेडडी की यात्रा को दो पड़ोसी एवं मित्र राष्ट्रों की मित्रता के प्रतीक की संज्ञा दी ।[2] प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में जयवर्धने ने कहा कि भारत को उन सभी व्यक्तियों को ले लेना चाहिये, जिन्होने श्रीलंका की नागरिकता नहीं प्राप्त की है । इसके अतिरिक्त जो नागरिकता विहीन लोग है, उनके सम्बन्ध में दोनों देशों को विचार करना चाहिये । उन्होने कहा कि भारत यदि एक निश्चित मात्रा से अधिक व्यक्तियों को भारत की नागरिकता प्रदान नहीं कर सकता तो अन्य व्यक्तियों को हमें श्रीलंका के नागरिक के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा । हम नागरिकताविहीन व्यक्तियों को श्रीलंका में नहीं रख सकते ।[3]

श्रीलंका में इस समय सिंहली एवं तमिलों के बीच भीषण दंगें हो रहे थे, अनेक तमिल आंतकबादी गुटों का प्रदुर्भाव हो चुका था । तमिल अपनी आत्म रक्षा एवं अधिकारों की प्राप्ति हेतु अनेक आतंकबादी गतिविधियों में लिप्त थे । श्रीलंका की सरकार का विचार था कि तमिल आंतकबादियों को दक्षिण भारत में प्रशिक्षण एवं सहयोग दिया जा रहा है ।

---

1. एशियन रिकॉडर मार्च 26 – अप्रैल 1, 1982
2. हिन्दुस्तान टाइम्स 2 फरवरी 1982
3. वही ।

मार्च 1982 में श्रीलंका की राष्ट्रीय सभा द्वारा इस द्वीप के उत्तरी क्षेत्र में होने वाले आंतकवाद के लिये आतंकवाद विरोधी बिल पारित किया गया ।[1] जून 1982 में श्रीलंका ने एशियान की सदस्यता गृहण करने का प्रयास किया लेकिन एशियान के सदस्यों द्वारा इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया । श्रीलंका द्वारा एशियान की सदस्यता गृहण करने का प्रयास स्वभाविक रूप से भारत के लिये चिन्ता का विषय था । इस समय तमिल एवं सिंहलियों के बीच होने वाली आतंकवादी गतिविधियों के कारण भी भारत एवं श्रीलंका के बीच काफी मतभेद उत्पन्न हो गये थे ।

भारत एवं श्रीलंका के बीच तमिल समस्या के कारण इस समय काफी तनाव उत्पन्न होने पर भी दोनों देशों के आर्थिक सम्बन्ध लगभग समान ही रहे । 27 सितम्बर 1982 को भारत एवं श्रीलंका ने कोलम्बों में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये । इस समझौते के अनुसार भारत एवं श्रीलंका पोलवट्टा में चीनी कारखाना सम्मिलित रूप से लगाने के लिये सहमत हुये ।

नई दिल्ली में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का सातवाँ शिखर सम्मेलन 6 से 12 मार्च 1983 को सम्पन्न हुआ । इस सम्मेलन से पूर्व भारत एवं श्रीलंका ने हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने पर अपनी सहमति व्यक्त की थी ।[2] लेकिन इस सम्मेलन के दौरान भारत एवं श्रीलंका के मध्य महाशक्तियों की नीति के कारण कुछ मतभेद उभर कर आये । श्रीलंका ने मारीसस की डिपागोगार्सियां से अमेरिका की वापसी की माँग को हिन्दमहासागर में गैर-शस्त्रीकरण करने के तथ्य से एकवद्ध नहीं होने दिया, जबकि भारत ने डिपागोगार्सियां में अमेरिका की उपस्थिति का खुलकर निन्दा की । इस समय भारत एवं श्रीलंका के मध्य तमिल अल्पसंख्यकों की समस्या के कारण काफी तनाव चल रहा था।श्रीलंका सरकार तमिलों की गतिविधियों को दवाने के लिये अत्याचारपूर्ण दमनात्मक नीति अपना रही थी । भारत सरकार श्रीलंका की इस प्रकार की कार्यवाही के पक्ष में नहीं था ।

मार्च 1983 में ही श्रीलंका के प्रधानमंत्री श्री रणसिंह प्रेमदास ने भारत पर आरोप लगाया कि "तमिल आतंकवादियों को दक्षिण भारत में प्रशिक्षण दिया जा रहा है । श्रीलंका इसे अब

---

1. एशियन रिकॉर्डर अप्रैल 6 - 12, 1982

2. स्टेटसमैन फरवरी 2, 1983

लम्बे समय तक नहीं सह सकता, भारत अब श्रीलंका को और अधिक परेशान नहीं कर सकता ।"[1]

15 अप्रैल 1983 को श्रीलंका की सेना ने जाफना में गोलीबारी की, जिसमें अनेक तमिल मारे गये । श्रीलंका के रक्षामन्त्री अथुलथमुदाली परामर्श के लिये भारत आये तथा दोनों देशों ने तमिल समस्या के राजनयिक समाधान पर बल दिया ।

भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरागाँधी ने श्री जयवर्धने से दूरभाष पर सम्पर्क करके भारतीय विदेशमन्त्री श्री राव को कोलम्बो भेजने का प्रस्ताव रखा, जिसे श्री जयवर्धने ने सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा भारत के विदेशमंत्री भारतीय प्रवासियों की समस्या पर विचार-विमर्श करने के लिये कोलम्बों गये । इसी समय श्रीलंका सरकार ने यह निर्णय लिया कि श्रीलंका उन व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करेगा जिन्होंने इसके लिये आवेदन किया है । श्रीलंका की मजदूर कांग्रेस इसी बात की माँग कर रही थी । श्री जयवर्धने ने श्री नरसिम्हा राव से कहा "मैं एकबार में इस समस्या का समाधान हमेशा के लिये करने जा रहा हूँ ।"[2]

श्री राव के दिल्ली पहुँचने के बाद यह निश्चय किया गया कि भारत सरकार श्रीलंका के आग्रह पर नौ सेना का एक जहाज कोलम्बों भेजेगा, जो वहाँ के दक्षिणी क्षेत्रों में फंसे तमिलजनों को जाफना पहुँचायेगा, इसके साथ ही जहाज राहत सामान के साथ भेज दिया गया ।

यद्यपि भारतीय विदेशमन्त्री को कोलम्बों भेजने का प्रस्ताव श्री जयवर्धने ने सहर्ष स्वीकार किया था, लेकिन राव के वापस आने के बाद जयवर्धने ने एक विज्ञप्ति में कहा था कि "क्या भारत प्रत्येक उस देश में अपने विदेशमंत्री भेजेगा या भेजता है जहाँ भारतीय मूल के निवासी संकट ग्रस्त होते है ।" स्पष्ट रूप से जयवर्धने का वक्तव्य भारत विरोधी था ।[3]

श्रीलंका में हिंसा का ताडंव लगातार चलता रहा तथा भारत द्वारा सदैव इन घटनाओं पर चिन्ता व्यक्त की जाती रही । 1983 के दंगों में भारत ने पहलीबार सिंहली एवं

---

1. द हिन्दू मार्च 2, 1983
2. द टाइम्स ऑफ इण्डिया अप्रैल 9, 1983
3. दिनमान अगस्त 7 - 13, 1983

तमिलों के झगड़ों में हस्तक्षेप किया, क्योंकि भारतीय मूल के व्यक्ति एवं भारतीय पासपोर्ट धारक इन दंगों से विशेष रूप से प्रभावित हुये 1983 से पूर्व भारत एवं श्रीलंका के मध्य नागरिकता प्रदान करने के अतिरिक्त और कोई भी समस्या नहीं थी । सिंहली एवं तमिलों के झगड़े श्रीलंका पिछले तीस वर्षों से चल रहे थे, लेकिन भारत ने कभी सीधा हस्तक्षेप नहीं किया था श्रीमती इन्दिरागाँधी ने इस सम्बन्ध में कहा था "तमिल समस्या में भारत दूसरे देशों के समान नहीं रह सकता क्योंकि इसका सम्बन्ध भारत एवं श्रीलंका दोनों देशों के साथ है ।"[1] श्रीलंका भारत पर बराबर आरोप लगाता रहा कि भारत श्रीलंका पर तमिल उग्रवादियों का सहारा लेकर हस्तक्षेप करना चाहता है ।

इसी समय भारत एवं श्रीलंका के मध्य त्रिकोमाली के विषय में कुछ और कटुता उत्पन्न हो गयी । श्रीलंका ने त्रिकोमाली में अमेरिका को तेल आपूर्ति सुविधा प्रदान करने की स्वीकृति प्रदान कर दी । सोवियत रूस ने भी त्रिकोमाली में तेल आपूर्ति सुविधा प्राप्त करने में रूचि प्रदर्शित की । त्रिकोमाली पर किसी विदेशी शक्ति का अधिपत्य भारत के लिये चिन्ता का विषय था, इसी कारण भारत का श्रीलंका के प्रति अविश्वास बढ़ा । श्रीलंका के राष्ट्रपति भारत से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध कायम रखने के समर्थक थे, लेकिन वे अपने आन्तिरिक एवं विदेशी विषयों पर किसी विदेशी शक्ति के हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं कर सकते थे । भारत ने सदैव श्रीलंका की त्रिकोमाली से सम्बन्धित नीतियों पा आपत्ति प्रकट की । जयवर्धने ने श्रीलंका की नीतियों एवं कार्यों को लेकर भारत द्वारा अपनाये गये सुरक्षा तर्कों पर घोषणा करते हुये कहा कि वे त्रिकोमाली को सैनिक उपयोग के लिये नहीं देंगे तथा उन्होंने कहा कि भारत को विश्वास दिलाने के लिये यह वक्तत्व पर्याप्त है।[2] जयवर्धने ने कहा कि "त्रिकोमाली पर उनका पूर्ण अधिकार है तथा इसको वे अपनी इच्छानुसार किसी को भी दे सकते है ।" उन्होंने कहा कि "हम भारत को भी अपने साथ सम्मिलित कर सकते है, लेकिन यदि उन्हें डर है कि अमेरिका की सेना त्रिकोमाली आ रही हैं,

---

1. द हिन्दू अगस्त 2, 1983

2. द हिन्दू मई 9, 1983

तो हम उनकी कोई सहायता नहीं कर सकते । हम उनकी चिल्लाहट एवं गुर्राहट में कोई रूचि नहीं रखते । हमें भारत से कोई भय नहीं है । हम अपने निर्णय स्वयं लेगें तथा किसी से सहायता नहीं मागेंगे । हम अपनी रक्षा स्वयं कर सकते है ।"[1]

भारत की कोई सरकार त्रिकोमाली को अमैत्रीपूर्ण हाथों में नहीं जाने दे सकती, क्योंकि त्रिकोमालीं पर किसी विदेशी शक्ति के अधियत्व से भारत की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है ; अतः भारत आवश्यक समझकर त्रिकोमाली से अपने ऊपर आक्रमण होने से पूर्व उस पर अपना अधिपत्य स्थापित करके अपनी सुरक्षा के खतरे को नष्ट करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है ।

इस समय श्रीलंका की विदेशनीति भारत के प्रति मित्रता की नहीं कही जा सकती थी । श्रीलंका की सरकार ऐसे तरीके अपना रही थी जिसका भारत की सुरक्षा पर सीधा प्रभाव पड़ रहा था । श्रीलंका ने अमेरिका, ब्रिटेन, पाकिस्तान एवं बंगलादेश से सैनिक सहायता माँग कर भारत के प्रति अपनी संदिग्ध नीति का पूर्ण रूप से परिचय दिया था ।[2]

30 जुलाई 1983 को श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने लन्दन से लौटते हुये भारत आये, इस समय तक दोनों देशों के मध्य मन-मटाव बहुत बढ़ गया था । दोनों ही देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने आपसी वार्ता के माध्यम से इस कटुता को कम करने का प्रयास किया । प्रजातीय समस्या पर दोनों देशों ने समान विचार व्यक्त किये । श्रीमती गाँधी ने एक बार फिर इस बात पर बल दिया कि भारत किसी प्रकार की हिंसा का विरोधी है । श्रीमती गाँधी ने कहा कि "भारत अपने पड़ोसी देश श्रीलंका की एकता एवं आखण्डता का सम्मान करता है तथा अहस्तक्षेप की नीति पर विश्वास करता है ।"[3]

नवम्बर 1983 को तमिल सांसदों द्वारा प्रथक राज्य की माँग के आधार पर राष्ट्रीय सभा का तीन महीने तक बहिस्कार करने पर अपनी संसद सदस्यता को त्यागना पड़ा ।

---

1. द हिन्दू मई 8, 1983
2. द हिन्दू अगस्त 6, 1983
3. रविकान्त दुवे "इण्डिया - श्रीलंका रिलेसन्स" पृष्ठ - 99

श्रीमती इन्दिरागाँधी ने जी० पार्थसारथी को अपना विशेष दूत बनाकर इस समस्या का समाधान करना चाहा लेकिन श्री जयवर्धने ने उन्हें अलग रहने की सलाह दी ।

नवम्बर 1983 में ही राष्ट्रकुल देशों का सम्मेलन नयी दिल्ली में सम्पन्न हुआ इस सम्मेलन में भाग लेने के लिये श्री जयवर्धने भारत आये । सम्मेलन के बाद दोनों देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने भारतीय प्रवासियों की समस्या पर विचार विमर्श किया । श्रीलंका के राष्ट्रपति ने सदैव इस बात पर बल दिया कि वे किसी विदेशी शक्ति के हस्तक्षेप को नहीं स्वीकार कर सकते।

भारत एवं श्रीलंका के मध्य तमिल समस्या का विषय 24 अक्टूबर को संयुक्त राष्ट्रसंघ में रखा गया, जिसमें भारत ने श्रीलंका के आन्तरिक विषयों में हस्ताक्षेप के आरोप को अस्वीकृत किया तथा तमिलों पर हो रहे अत्याचार का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ में रखा । यह पहला अवसर था जब भारत के द्वारा किसी भी विषय को विश्व के समक्ष रखा गया था ।[1]

फरवरी 1984 को भारत के वाणिज्य मंत्रालय के सचिव श्री वी० सी० पाण्डेय अपने तीन सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल के साथ श्रीलंका गये तथा उन्होंने वहाँ पर चाय के व्यापार के सहयोग के सम्बन्ध में वार्ता की । दोनों देशों ने सहयोग के साथ चाय का व्यापार करने का फैसला किया ।

श्रीलंका अभी भी भारत पर अपने आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप का आरोप लगा रहा था । श्रीमती गाँधी ने एक वक्तव्य में कहा कि "हमने सदैव इस तथ्य को प्रकट किया है कि भारत अपने किसी पड़ोसी के आन्तिरिक विषयों में हस्तक्षेप में रूचि नहीं रखता, लेकिन श्रीलंका के सम्बन्ध में जहाँ भारतीय मूल के बहुत से व्यक्ति हैं, भारत चिन्तित है, तथा वहाँ की समस्या समाधान के लिये भारत सदैव सहयोग देगा । भारत द्वारा दी गयी सहायता एवं सामग्री को राष्ट्रपति जयवर्धने ने स्वेच्छा से स्वीकारा है ।"[2]

---

1. एशियन रिकॉर्डर दिसम्बर 17 – 23, 1983
2. द हिन्दुस्तान टाइम्स मई 13 – 19, 1984

श्रीलंका सरकार ने भारत सरकार को चेतावनी दी कि भारत ने यदि संतोषजनक तरीके से कोलम्बों का सहयोग नहीं दिया तो श्रीलंका इस विषय को संयुक्त राष्ट्रसंघ में एवं गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में रखेगा । श्रीलंका ने भारत सरकार से तमिलनाडु क्षेत्र में पकड़े गये आतंकबादियों को श्रीलंका सरकार को सौपने की अपील की । श्रीलंका के प्रधानमंत्री श्री प्रेमदासा ने श्रीलंका में होने वाली आतंकबादी गतिविधियों के लिये भारत को जिम्मेदार ठहराया उन्होंने कहा कि "भारत अब अधिक समय तक उनके देश को अधिक परेशान नहीं कर सकता । श्रीलंका इसे अब लम्बे समय तक नहीं सह सकता ।"[1]

30 जुलाई 1984 को जयवर्धने नई दिल्ली आये तथा दोनों देशों के शासनाध्यक्षों ने प्रजातीय समस्या पर विचार विमर्श किया ।

31 अक्टूबर 1984 को इन्दिरागाँधी की हत्या के कारण परिस्थितियों में कई परिवर्तन आये ।

अतः स्पष्ट है कि इन्दिरागाँधी ने अपने शासन के द्वितीय चरण में भी श्रीलंका के साथ मधुर सम्बन्ध कायम रखने एवं तमिल प्रवासियों की समस्या समाधान के लिये प्रयत्नशील रही, लेकिन श्रीलंका के शासकों में भारत के प्रति असुरक्षा की भावना के भय के कारण समस्या समाधान हेतु कोई स्थायी प्रयास सम्भव नहीं हो सका वरन दोनों देशों के सम्बन्धों में कटुता और बढ़ गयी भारत द्वारा तमिलों पर अत्याचार के सन्दर्भ में दिये गये तर्कों को श्रीलंका सरकार ने अपने आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप की संज्ञा दी तथा श्रीलंका सरकार ने तमिलों की आतंकबादी गतिविधियों में भारत के सहयोग का आरोप लगाया । अतः इस काल में दोनों देशों में सर्वाधिक मतभेद उत्पन्न हुये ।

---

1. एशियन रिकॉर्डर मई 13 - 19, 1984

राजीव गाँधी का काल एवं श्रीलंका

अक्टूबर 1984 में श्रीमती इन्दिरागाँधी की हत्या के बाद श्री राजीव गाँधी ने भारत के प्रधानमंत्री का पद गृहण किया । श्री राजीव गाँधी ने अपने शासनकाल में इन्दिरा जी द्वारा प्रतिपादित नीतियों का अनुसरण करते हुये बदलती हुयी परिस्थतियों के साथ आचरण करने की क्षमता का परिचय दिया राजीव गाँधी ने नि:शास्त्रीकरण उपनिवेशबाद उन्मूलन शान्ति की कूटिनीति एवं पड़ोसी देशों से मित्रतापूर्ण सम्बन्धों की नीतियाँ अपनायी । अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के प्रमुख विषयों के प्रति राजीव गाँधी का दृष्टिकोण बहुत प्रगतिशील एवं लचीला रहा । उन्होने अपने शासनकाल में चीन, पकिस्तान, नैपाल, मालद्वीप एवं श्रीलंका सहित समस्त पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास भी किया था । अपने शासनकाल के प्रारम्भ से ही राजीव गाँधी ने श्रीलंका के साथ लचीलेपन की नीति अपनाकर समझौताबादिता एवं तुष्टकरण के मिले-जुले तौर तरीके अपनाये ।

श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने इन्दिरा जी की अत्येष्टि में सम्मिलित होने के लिये भारत आये तथा उन्होंने भारत को आतंकबाद से छुटकारा पाने में सहयोग देने का आश्वासन दिया । राजीव गाँधी ने उनके वापस जाते समय इन्दिरा जी के वचन का दोहराया कि "श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता भारत के लिये सदैव सम्मानीय रहेगी ।"[1] राजीव गाँधी ने एक वक्तव्य में कहा कि "भारत के किसी भी भाग से श्रीलंका पर आक्रमण का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । भारत पर इस प्रकार का सन्देह करना पूर्ण रूप से गैरजिम्मेवारीपूर्ण एवं निराधार है । हमें इस बात का बेहद खेद है कि युद्ध का मनोविज्ञान तैयार हो रहा है ।"[2]

श्रीलंका में 1983 से ही अल्पसंख्यक तमिल नृवंशियों का नरसंहार लगातार जारी रहा, जो भारत के लिये विशेष चिन्ता का विषय था । श्रीलंका में इस तरह की घटनाओं ने तमिलों को बाध्य कर दिया कि या तो वे समुद्र में कूद पड़े या समुद्र पार करके भारत आ जाये । श्रीलंका के शरणार्थियों को काफी मात्रा में भारत आगमन के कारण तमिलनाडु क्षेत्र एवं भारतीय

1. सीलोन डेली न्यूज नवम्बर 10, 1984
2. इण्डियन एक्सप्रेस दिसम्बर 2, 1984

मच्छुआरे बहुत अधिक प्रभावित हुये है । भारत सरकार ने सदैव श्रीलंका की सरकार पर हिंसात्मक कार्यवाही छोड़ने के लिये दवाव डाला ।

जून 1985 में श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने भारत आये तथा दोनों देशों के शासनाध्यक्ष इस बात पर सहमत हुये कि प्रत्येक प्रकार की हिंसा बन्द होनी चाहिये तथा प्रजातीय समस्या का राजनैतिक समाधान किया जायेगा तथा श्रीलंका के उत्तरी पूर्वी प्रान्त में सामान्य स्थिति लाने के लिये दोनों देश प्रयत्नशील रहेगें । इस समस्या का समाधान संगठित एवं सुदृढ़ श्रीलंका के अन्तर्गत किया जायेगा । श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने भारत के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र से सेना की वापसी के प्रस्ताव के सम्बन्ध में कहा कि "वहाँ पर सेना केवल आतंकबादियों की हिंसात्मक कार्यवाहियों के कारण है । यदि वहाँ किसी प्रकार की हिंसा नहीं होगी तो वहाँ से सेना वापस बुला ली जायेगी ।[1] भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने एक साक्षात्कार में कहा कि "भारत इस बात के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ रहा है कि वह अपने एक क्षेत्र को तमिल छापामारों की प्रथक राज्य की मांग की पूर्ति हेतु हथियारों के निर्माण के लिये प्रयुक्त नहीं होने देगा ।"[2] राजीव गाँधी ने जयवर्धने से दो बातें स्पष्ट रूप से कहीं "कि श्रीलंका में किसी विदेशी शक्ति की उपस्थिति भारत तथा दक्षिणी एशिया के लिये एक समस्या बन जायेगी । दूसरे भारत श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता का सम्मान करता है एवं इसके लिये वह श्रीलंका को पूर्ण सहयोग देने के लिये तैयार है तथा भारत प्रजातीय समस्या के राजनैतिक समाधान के पक्ष में है ।[3]

13 जुलाई 85 को भूटान की राजधानी थिम्पू में श्रीलंका के राष्ट्रपति के भाई हेक्टर जयवर्धने के नेतृत्व में दस सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल एवं तमिल मुक्ति संगठनों के सदस्यों एवं भारत के पाँच अधिकारियों के मध्य प्रजातीय समस्या के सन्दर्भ में विचार विमर्श हुआ । इस वार्ता को थिम्पू वार्ता की संज्ञा दी जाती है । राजीव गाँधी ने जी0 पार्थसारथी को थिम्पू वार्ता के समय समझौता वार्ताओं से अलग करके श्रीलंका के इस आरोप को दूर करने का प्रयास किया कि

---

1. टाइम्स ऑफ इण्डिया जून 4, 1985
2. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, जून 5, 1985
3. नागपुर टाइम्स जून 15, 1985

जी0 पार्थसारथी तमिल होने के कारण तमिलों के प्रति अधिक उदार है, लेकिन भारत सरकार के प्रयत्नों के बाद भी थिम्पू वार्ता का कोई निष्कर्ष नहीं निकला । 12 अगस्त 1985 को थिम्पू के द्वितीय सम्मेलन में श्री हेक्टर जावर्धने ने तमिल राज्य के माँग सहित तमिलों की प्रथम तीनों मांगों को अस्वीकृत कर दिया तथा उन्होंने कहा कि श्रीलंका की सरकार ने पहले ही सभी नागरिकता विहीन लोगों को नागरिकता प्रदान करने के लिये निर्णय लिया ।[1]

दिसम्बर 1985 में आयोजित सार्क के प्रथम सम्मेलन में राजीव गाँधी एवं जयवर्धने ने प्रजातीय समस्या के सन्दर्भ में विचार–विमर्श किया । जयवर्धने ने राजीवगाँधी से कहा कि वे नहीं जानते कि वास्तव में तुल्फ के सचिव क्या चाहते है । तमिल संगठन भी अपने मांगों से कम पर सझौते के लिये तैयार नहीं ।

श्रीलंका में हिंसात्मक गतिविधियाँ निरन्तर जारी रही । श्रीलंका की सेना तमिल छापामारों के विरोध में नये–नये हथियार उपयोग कर रही थी, तथा तमिल छापामार इसका उत्तर अपने तरीके से दे रहे थे तथा भारत में आने वाले शरणार्थियों की संख्या बढ़ रही थी । दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में राजीव गाँधी ने श्रीलंका सरकार को चेतावनी देते हुये कहा कि "भारत सरकार अब और पाक की खाड़ी से आने वाले शरणार्थियों को नहीं ले सकती है ।[2] श्रीलंका ने पाकिस्तान एवं चीन से सैनिक सहायता लेना प्रारम्भ कर दिया था । यद्यपि श्रीलंका अपनी सहायता का स्त्रोत चुनने के लिये स्वतन्त्र है । लेकिन विदेशी सैन्य शक्तियों का पाक जल डमरूमध्य में आमन्त्रण न तो भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध के लिये उचित था और न श्रीलंका की जातीय समस्या के समाधान के लिये उचित था ।

4 मार्च 1986 को भारत ने जेनेवा में संयुक्तराष्ट्रसंघ में श्रीलंका पर मानव अधिकारों के उल्लेघन का आरोप लगाया तथा संगठन के सदस्यों को श्रीलंका की सेना द्वारा तमिलों के प्रति की गयी हिंसात्मक कार्यवाही के सन्दर्भ में अवगत कराया । भारत प्रतिनिधि

---

1. इण्डिया एण्ड श्रीलंका रविकान्त दुबे, 1988
2. नागपुर टाइम्स, दिसम्बर 27, 1985

जी0 एस0 ढिल्लन ने कहा कि 1,25,000 से अधिक तमिल शरणार्थी श्रीलंका में होने वाली हिंसात्मक कार्यवाहियों के कारण भारत आये है तथा 45,000 पश्चिमी योरोप में गये हैं ।[1]

श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने भारत पर आरोप लगाते हुये कहा कि भारत उनके देश में होने वाले आंतकबाद को सहायता दे रहा है । उन्होंने कहा कि "मेरे सम्बन्ध भारत की अपेक्षा पाकिस्तान से अधिक अच्छे है । हमारी समस्या यही है कि भारत जैसा देश आतंकबाद को सहयोग दे रहा है ।[2] इस समय भारत श्रीलंका सम्बन्ध संदेहों एवं शाकाओं से घिरे थे । दोनों ही देश एक दूसरे पर आरोप एवं प्रत्यारोप कर रहे थे । भारत यद्यपि इस बात के लिये काफी प्रयासरत था कि तमिल छापामार एवं श्रीलंका सरकार के बीच कोई समझौता हो जाये, जिससे समस्या का कोई समाधान हो सके । भारत में आने वाले तमिल शरणार्थियों की बढ़ती संख्या भारत सरकार के लिये एक अलग समस्या उत्पन्न कर रही थी ।

दिसम्बर 1986 में दक्षेरा के द्वितीय शिखर सम्मेलन से पूर्व भारत सरकार के आदेश से ईलम के प्रमुख नेता तमिलनाडु में नजरबन्द कर लिये गये तथा उनके हथियार जब्त कर लिये गये भारत सरकार तमिलों पर मनोवैज्ञानिक दवाब डालकर उन्हें श्रीलंका के प्रस्ताव मानने के लिये बाध्य कर रही थी । भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने लिट्टे के सदस्यों को अवगत कराया कि श्रीलंका की सरकार इसके अधिक सुविधा देने को तैयार नहीं है । बंगलौर सम्मेलन में राजीव गाँधी एवं जयवर्धने ने कुछ ऐसे निष्कर्ष निकाले जिनके अनुसार श्रीलंका की जातीय समस्या का राजनीतिक समाधान सम्भव हो सके । इस वार्ता में श्रीलंका सरकार एवं तमिल उग्रबादियों की दूरी को कम करने का प्रयास किया गया, इसमें ईलम के नेताओं ने भी भाग लिया, लेकिन फिर भी कोई निष्कर्ष नहीं निकला । क्योंकि तमिल गुट उत्तरी एवं पूर्वी प्रान्त के विलय के प्रस्ताव को शामिल करना चाहते थे उसपर सरकार की सहमति नहीं थी ।

---

1. एशियन रिकॉर्डर, अप्रैल 16 – 22, 1986
2. एशियन रिकॉर्डर जून 4 – 10, 1986

फरवरी 1987 को श्रीलंका की सरकार ने भारत सरकार को अवगत कराया कि यदि तमिल हिंसात्मक कार्यवाही रोक दे तो उन्हें समान अधिकार प्रदान कर दिये जायेंगे तथा वे उन तमिलों को छोड़ देंगे, जिनको आतंकबाद विरोधी अधिनियम के अन्तर्गत पकड़ा गया है, तथा जिनके विरूद्ध कोई प्रभाव नहीं है ।[1] श्रीलंका में जातीय संघर्ष बराबर चलता रहा । एक तरफ श्रीलंका की सेना तमिल जनों का संहार कर रही थी, दूसरी तरफ विभिन्न तमिल गुट अपनी आपसी मागों में मतभेद होने के कारण झगड़ रहे थे । राजीव गाँधी ने अपने एक संदेश में श्रीलंका की सरकार में जाफना में सैन्य कार्यवाही रोकने का अनुरोध किया लेकिन श्रीलंका की सरकार ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया ।[2]

मई 1987 को श्रीलंका की थल एवं वायू सेना ने जाफना पर आक्रमण कर दिया जाफना पर फौजी कार्यवाही के सन्दर्भ में राजीवगाँधी ने जयवर्धने को एक आवश्यक सन्देश भेज कर कहा कि समस्या का सैनिक हल कारगर नहीं होगा इस लिये जाफना पर सैनिक कार्यवाही रोकनी चाहिये । जयवर्धने ने इस अनुरोध को ठुकरा दिया तथा समुद्र पर चौकसी बढ़ा दी । राजीव गाँधी ने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से अपील की कि वह निर्दोष तमिलों की हत्या रोकने के लिये श्रीलंका सरकार पर दवाब डाले ।

श्रीलंका की सरकार पर भारत सरकार के अनुरोध का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, जाफना में युद्ध पीड़ित तमिलों को राहत सामग्री पहुँचानें का भारत का पहला अभियान नाटकीय हो गया । जून 1987 को राहत सामग्री एवं देशी, विदेशी पत्रकारों से भरी 19 नौकायें जब समुद्र के बीच पहुँची तो श्रीलंका सेना ने इस्राईल से मिली गनवोटों से उनका रास्ता रोक लिया, जिससे भारतीय नौकाओं की वापसी के बाद भारत सरकार ने कहा कि वह जाफना की घटनाओं की मूकदर्शक नहीं बनी रहेगी । भारत ने पाँच माल वाहक विमानों में 25 टन राहत समग्री जाफना भेजी, इनकी सुरक्षा के लिये चार मिराज 2000 भी भेजे गये । श्रीलंका ने इस बार प्रतिरोध नहीं किया तथा भारतीय विमानों ने राहत सामग्री को कुशलता से जाफना में

---

1. आइ0 डी0 एस0 ए0 न्यूस रिव्यू , अप्रैल 1987

2. वही ।

उतार दिया ।[1] 15 जून को भारत एवं श्रीलंका के मध्य भारतीय राहत सामग्री को भेजने के सम्बन्ध में समझौता हो गया । जिसके परिणामतः विगड़ी हुयी परिस्थितियों पर एक बार फिर नियन्त्रण स्थापित हो गया ।

राहत समग्री की सफलताओं एवं विफलताओं के विशलेषण के बीच कई रक्षा विशेषज्ञों ने प्रश्न उठाया कि ए0 एन0 32 मालवाही विमानों के साथ चार मिराज 2000 लड़ाकू विमान भेजने की क्या जरूरत, यदि राहत सामग्री भेजने के पीछे क्षेत्रीय चौधराहत जमाने का इरादा न हो कर केवल मानवीय नजरिया था । श्रीलंका के पास नीचे से विमानों पर गोलीवारी का कोई साधन नही था ।[2] श्रीलंका के प्रधानमंत्री श्री प्रेमदासा ने भारत सरकार से अपील की भारत सरकार श्रीलंका की जातीय समस्या के समाधान से पहले श्रीलंका सरकार की सद्भावना एवं विश्वास प्राप्त करे । उन्होंने कहा कि "श्रीलंका वासियों का यह सन्देह है कि भारत धीरे-धीरे श्रीलंका को विभाजन की ओर ले जा रहा है ।"

श्रीलंका सरकार द्वारा अनेक आरोप लगाने पर भी भारत सरकार सदैव इस बात के लिये प्रयत्नशील रही कि तमिल उग्रवादियों एवं श्रीलंका सराकर में कोई समझौता हो जाये, लेकिन ऐसा सम्भव नहीं हो सका, बल्कि तमिल समझौतिगी एवं समझौता विरोधी गुटों में संघर्ष तेज हो गया । लिट्टे पूर्ण राज्य सक कम की माँग पर सहमत नहीं था, जबकि टुल्फ स्वायत्ता की माँग पूरी होने पर भी समझौता करने को तैयार था, लेकिन भारत ने भी हिम्मत नहीं हारी तथा लगाता प्रयत्नशील रहा कि सरकार एवं उग्रवादियों के बीच वार्तालाप हो सके जिससे समस्या के राजनैतिक समाधान की कोशिष की जा सके ।

भारत में 1983 से 1987 तक 1,33,415 व्यक्ति श्रीलंका से आये तथा भारत ने 3,000 टन राहत सामग्री श्रीलंका भेजी ।

---

1. दिनमान जून 1987 "सैनिक हल की जिद"
2. दिनमान जुलाई 1987 जाफना : हारकेमैरलेगी

15 जून को भारत एवं श्रीलंका के मध्य राहत सामग्री का भेजने क सन्दर्भ में समझौता होने के बाद, राहत सामग्री के साथ जाफना पहुँचे पहले जहाज के साथ ही भारतीय उच्चायोग के सचित हरदीप पुरी भी जाफना गये । वहाँ उन्होंने लिट्टे के नेता वी० प्रभाकरन से मिलकर उन्हें सरकार से बातचीत के लिये राजी किया ।[1]

पहली जुलाई 1987 को समझौते के प्रारूप के साथ श्रीलंका में भारतीय उच्चायुक्त श्री जे० एन० दीक्षित राष्ट्रपति जयवर्धने से मिले । 16 जुलाई 1987 तक वे बारह बार सझौते के सन्दर्भ में राष्ट्रपति जयवर्धने से मिले । 16 जुलाई 1987 श्रीलंका की मंत्रिमण्डल की बैठक में श्री दीक्षित को आमंत्रित किया गया । वहाँ उन्होंने समझौते के सन्दर्भ में उठी अनेक शंकाओं का समाधान किया ।[2]

दूसरी ओर हरदीप पुरी लिट्टे के सातों कमांडरों से बातचीत में जुटे थे । 24 जुलाई 1987 को प्रभाकरन को जाफना से तिरूचिरापुल्ली पहुँचाया गया । एम० जी० रामचन्द्रन से मिलने के बाद प्रभाकरन दिल्ली जाकर प्रधानमंत्री राजीव गाँधी से मिले और समझौते पर राजी हो गये । कोलम्बों में श्री दीक्षित ने एक बार फिर श्रीलंका के मंत्रिमण्डल को सम्बोधित किया । इसके बाद 48 घन्टे के भीतर ही कोलम्बो में 29 जुलाई 1987 को भारत श्रीलंका समझौता पर हस्ताक्षर हो गये ।

इस समझौते के अनुसार उत्तरी एवं पूर्वी प्रान्तों की एकीकृत स्वायत्त परिषद बनायी जायेगी । उत्तरी एवं पूर्वी प्रान्त के विलय के लिये जनमत संग्रह कराया जायेगा । 48 घन्टे में तमिल उग्रबादी युद्ध विराम करेगें, जिसे भारत एवं श्रीलंका की मिली जुली सेनायें लागू करेंगी । तीन महीने में प्रान्तीय परिषद के चुनाव होगें । यदि श्रीलंका का कोई तमिल छापामार समझौता नहीं मानता तो यह भारत का कार्य होगा कि उसके भू भाग में ऐसा कोई कार्य न हो जिससे श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता खतरे में पड़ जाये । जब भी श्रीलंका की सरकार सैनिक सहायता की माँग करेगी तो यह सहायता हमें देनी होगी ।[3]

1. नवभारत टाइम्स 30 जुन 1990
2. वही ।
3. जनसत्ता 30 जुलाई 1987

इस समझौते का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि इसका क्रियान्वन भारतीय देखरेख में होना था । तमिल छापामारों के हथियार डलवाने एवं तमिल बहुल्य प्रान्तों में उनकी सुरक्षा करने के लिये भारतीय शान्ति सेना वहाँ भेजी गयी ।

इस समझौते पर मिली जुली प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी । समझौते के तुरन्त बाद अमेरिका एवं सोवियत रूस सहित कई राष्ट्रों ने इसका स्वागत किया । सोवियत रूस के उप प्रधानमंत्री ने एक वक्तव्य में कहा "भारत श्रीलंका समझौता क्षेत्रीय विवादों को वास्तविक तरीके से सुलझाने का एक उदाहरण है ।"[1] पाकिस्तान, चीन एवं श्रीलंका के बौद्ध भिक्षुओं ने इसका विरो किया । श्रीलंका फ्रीडम पार्टी की श्रीमती भंडारनायके ने इस समझौते का विरोध करते हुये कहा कि "राष्ट्रपति जयवर्धने ने समझौते के नाम पर श्रीलंका की जनता के साथ विश्वासघात किया है ।" उन्होंने कहा कि "मुझे समझ नही आता कि भारत ने इतनी सैनिक सामग्री तथा हजारों सैनिक हमारे यहाँ क्यो भेजे है ? हम पर कौन आक्रमण करने आ रहा है ? अब हम भारत के संरक्षि हो गये है ।"[2]

श्रीलंका में समझौते के विरूद्ध वहाँ घोर प्रदर्शन भी हुआ । श्रीलंका के नौसैनिक की की राइफल से राजीव गाँधी पर आक्रमण एवं ज0 वि0 पेरूनुमा द्वारा जायवर्धने पर आक्रमण से इस शान्ति समझौते के गुलाबों की पंखुरियाँ बिखर गयी । विरोध व हिंसा में श्रीलंका के वे तमिल संगठन भी शामिल थे, जिनको समझाकर समझौता मनवाने की जिम्मेवारी भारत ने ली थी । श्रीलंका के तमिलों से सहानुभूति रखने वाले भार के तमिलनाडु क्षेत्र के तमिल संगठनों ने समझौते की प्रतियाँ जलाकर राख राजीव गाँधी को भेजने की घोषणा की थी ।

प्रारम्भ से ही इस समझौते पर अनेक प्रश्न चिन्ह लग गये थे, क्योंकि भारत श्रीलंका समझौते में भारत की भूमिका काफी जोखिम भरी थी । समझौते के अनुसार श्रीलंका सरकार सैनिक सहायता की माँग करेगी तो हमें देनी होगी । भारत सरकार श्रीलंका से अपने नागरिकों की

---

1. आइ0 डी0 एस0 ए0 न्यूज रिव्यू सितम्बर 1987 पृष्ठ - 1333

2. टेलीग्राफ 7.8.1987

वापसी का कार्य तेजी से निपटायेगी तथा तमिलनाडु से आये तमिल शरणार्थी वापस भेजेगी । भारत इस जिम्मेदारी पूर्ण कार्य को तभी कर सकता था जब श्रीलंका सरकार सक्रिय रहती तथा तमिल छापामार संगठन भारत का साथ देते ।

30 जुलाई 1987 को भारतीय शान्ति सेना के 1500 जवान श्रीलंका पहुँच गये, धीरे-धीरे भारतीय शान्ति सेना की संख्या बढ़ती गयी । शान्ति सेना ने कुछ ही दिनों में बहुत से तमिल छापामारों को आत्म-समर्पण करवाया तथा उसका भरपूर प्रचार भी किया । लोगों को आशा बंधी कि सब कुछ ठीक हो जायेगा । लिट्टे उग्रवादियों ने कुछ हथियार भी सौंपना प्रारम्भ कर दिया, लेकिन कुछ ही दिनों बाद लिट्टे ने समझौते का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया । लिट्टे के बी० प्रभाकरन ने इस समझौते को भारत का भू राजनैतिक स्वार्थ माना । उन्होंने इस शान्ति समझौते पर असंतोष व्यक्त करते हुये कहा कि "इस समझौते में तमिलजनों के हितों की उपेक्षा की गयी है ।" यह समझौता जल्दबाजी में किया गया है, इसमें दोनो देशों की सरकारों ने अपने-अपने हितों का ध्यान रखा है । समस्या का अन्तिम हल तमिल ईलम है ।"[1] 11 अक्टूबर 1987 को लिट्टे उग्रबादी एवं शान्ति सेना के जवान आमने-सामने आ गये । इस प्रकार समझौते की धज्जियाँ उड़ गयी ।[2]

प्रथक तमिल ईलम की माँग तमिल छापामारों की थी तथा अब भी है, जिसका भारत ने सदैव विरोध किया है, तो भारत ने इस समझौते में अपने हाथ कैसे बाँध लिये? समझौता तो तमिल छापामार संगठन एवं श्रीलंका सरकार के बीच होना चाहिये था । समझौते में भले ही भारत प्रत्यक्ष दर्शी होता, लेकिन समझौते में हाथ उनके बन्धने चाहिये थे जिनके हाथ में राईफले एवं मशीन गने थी । इस समझौते का सिंहली एवं तमिल उग्रवादी संगठनों ने संदेह की दृष्टि से देखा तथा दोनों ने ही इस समझौते का विरोध किया, जिसके परिणाम स्वरूप श्रीलंका में रक्तपात एवं हिंसा जारी रही ।

---

1. आइ० डी० एस० ए० न्यूज रिव्यू सितम्बर 1987 पृष्ठ - 1344
2. दैनिक जागरण 31 मार्च 1990

नवम्बर 1987 में भारत सरकार के अनेक दवावों एव प्रयासों के परिणामस्वरूप उत्तरी-पूर्वी प्रान्तीय परिषद के चुनाव 1987 में सम्पन्न हुये, लेकिन तमिल उग्रबादी संगठन लिट्टे एवं सिंहली उग्रबादी संगठन जे० वी० पी० ने इसका बहिष्कार किया । लिट्टे एवं जे० वी० पी० बहिष्कार के बाद भी पचास प्रतिशत के लगभग मतदान हुआ तथा उग्रवादी ईलम पीपुल्स रिवोल्यूसनरी फ्रंट के नेता ए० वरदराज पेरूमल उत्तरी-पूर्वी प्रान्त के मुख्य मन्त्री बने । लेकिन इससे तमिलों की समस्या नही सुलझी क्योंकि उनका शक्तिशाली गुट लिट्टे कुछ और ही चाहता था ।

इस चुनाव के साथ जहाँ शान्ति एवं सद्‌भाव की उम्मीदे जागीं थी, वही अशंकाओं के बादल फिर भी मडराने लगे थे । लिट्टे तो जुलाई से ही भारत श्रीलंका समझौते की मुखालत करने में लगा था, लेकिन इन चुनावों के समय उसने जे० वी० पी० से गठजोड़ करके नये खतरों के बीज बो दिये थे । इसी कारण विभिन्न तमिल गुटों, शान्ति सेना एवं लिट्टे में संघर्ष जारी रहा । वास्तव में शान्ति सेना की मौजूदगी एवं ई० पी० आर०एल०एफ की चुनावी जीत से लिट्टे के क्षेत्र की तमिल जनता पर अपनी पकड़ कमजोर होती महसूस हो रही थी । जे० वी० पी० की तो इन दोनों से पुरानी दुश्मनी थी ही, ऐसे में लिट्टे एवं जे० वी० पी० ने फौरी तौर पर हाथ मिला लिया तथा शान्ति सेना का विरोध शुरू कर दिया । इस दौर में एक तरफ लिट्टे लाशों का ढेर लगा रहा था तो दूसरी तरफ जे० वी० पी० का निशाना सरकारी लोग, सरकारी सम्पति तथा उनके विरोधी लोग थे । लिट्टे ने अपने विरोधी तमिल गुटों को तथा शान्ति सैनिकों को अपनी हिंसा का निशाना बनाया ।[1]

दिसम्बर 1987 में श्रीलंका में राष्ट्रपति पद के लिये निर्वाचन हुये, जिसमें श्री प्रेमदास श्रीलंका के नये राष्ट्रपति बने । प्रेमदास ने अपने प्रारम्भिक भाषण को सिंहली के साथ तमिल में भी पढ़ा तथा अपने को सिंहली एवं तमिल दोनों का राष्ट्रपति वताया । प्रेमदास यद्यपि खुले रूप में भारत विरोधी रूख नहीं अपना रहे थे, लेकिन उन्होंने जल्दी ही स्पष्ट कह दिया कि वे शान्ति सेना के श्रीलंका में मौजूदगी के हिमायती नहीं है । प्रेमदास ने भारत विरोधी

1. दैनिक जागरण 31 मार्च 1990

प्रचार का लाभ अपने संसद के चुनावों में मिला तथा उनकी यूनाइटेड नेशनल पार्टी को श्रीलंका के संसद के चुनाव में 125 सीटें मिली ।

जातीय उन्माद, आक्रामक तेवर एवं नफरत की माँग पर नियन्त्रण पाने की दृष्टि से ये चुनाव एक महत्वपूर्ण प्रयास थे । ये चुनाव सिंहली एवं तमिल दोनों के लिये महत्वपूर्ण थे । इस चुनाव में वामपक्षियों की पराजय हुयी तथा उत्तरी पूर्वी प्रान्त में लिट्टे द्वारा चुनाव वहिष्कार के नारे को ठुकरा दिया गया था, लेकिन समस्यायें बरकरार रहीं । शान्ति सेना की वापसी के प्रचार का फायदा तो मिला लेकिन स्वयं श्रीलंका की सेना के प्रमुख वानसिंह ने चेतावनी दी कि भारतीय सैनिकों की वापसी से सुरक्षा व्यवस्था में एक शून्य पैदा हो जायेगा ।

चुनाव के दौरान काफी हिंसा हुयी । चुनाव पूर्व के पाँच हफ्तों में बारह उम्मीदवारों सहित 900 व्यक्ति लिट्टे या जे0 वी0 पी0 की गोलियों के शिकार हुये । चुनाव के दिन 57 लोग मारे गये । शान्ति सेना के जवाबी प्रहार ने लिट्टे को दुबकने के लिय मजबूर कर दिया ।[1]

प्रेमदास को लगा कि वे शान्ति सेना की मौजूदगी का विरोध करते हुये भी एक साथ लिट्टे एवं जे0 वी0 पी0 से नहीं निबट सकते, इसलिये उन्हें उत्तरी पूर्वी प्रान्त में शान्ति सेना की जरूरत है । कुछ समय तो वे शान्त रहें, लेकिन अन्दर ही अन्दर शान्ति सेना की वापसी का रास्ता खोजते रहे । मई 1989 में मुक्ति चीतों के साथ प्रेमदास ने सीधे बात चीत प्रारम्भ कर दी तथा भारत को शान्ति सेना हटाने के सन्दर्भ में संकेत दे दिया । इसके बाद श्रीलंका सरकार एवं लिट्टे के बीच गुप-चुप बात होने लगी तथा ई0 पी0 आर0 एल0 एफ0 सरकार को हटाने की योजना बनने लगी ।[2] मुक्ति चीतों ने शान्ति सेना पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया । सरकार एवं लिट्टे दोनों ही अखबारी बयानों में शान्ति सेना के खिलाफ ज़हर उगल रहे थे ।

---

1. नव भारत टाइम्स 30 जून 1990
2. वही ।

पहली जून 1989 को श्रीलंका के राष्ट्रपति प्रेमदास ने एक नया पासा फेका, कोलम्बों से दस मील दूर वट्टूरमला के प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर में आयोजित उदघाटन समारोह में बोलते हुये उन्होंने कहा कि "भारत 29 जुलाई 1989 तक अपनी शान्ति सेना हटा ले ।" अपने भाषण में उन्होंने यह भी कहा कि "बौद्ध धर्म हमें सिखाता है कि सेना का सहारा लेकर कदापि शान्ति स्थापित नहीं हो सकती ।"[1]

श्रीलंका के राष्ट्रपति की इस घोषणा का लिट्टे के अलावा सभी तमिल गुटों ने विरोध किया । भारत सरकार ने भी श्रीलंका द्वारा एक तरफा ढंग से शान्ति सेना की वापसी को ठुकरा दिया तथा भारत ने कहा कि शान्ति सेना की वापसी का कार्यक्रम परस्पर विचार विमर्श के बाद निश्चित किया जा सकता है, एकतरफा ढ़ंग से तिथि निर्धारण द्वारा नहीं । भारत सरकार ने कहा कि शान्ति सेना की वापसी के साथ भारत श्रीलंका समझौते की सभी शर्तों का पालन होना चाहिये । भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने एक वक्तव्य में कहा कि "समझौते की पूर्णतः तब तक नहीं मानी जायेगी, जब तक श्रीलंका सरकार सत्ता हस्तान्तरण प्रक्रिया पूरी नहीं कर देती।"[2]

श्रीलंका सरकार एक ओर भारत को शान्ति सेना की वापसी के लिये कठोर से कठोर पत्र लिख रही थी तथा दूसरी ओर जे0 वी0 पी0 के युवकों को बेरहमी से कुचल रही थी । श्रीलंका ने शान्ति सेना की वापसी के प्रश्न के आधार पर इस्लामाबाद में होने वाले दक्षेस के विदेश सचिवों के सम्मेलन का बहिष्कार किया । श्रीलंका के विदेश मन्त्री ने पाकिस्तान के विदेशमन्त्री को एक पत्र लिख कर सूचित किया कि "वे दक्षेस के विदेश सचिव स्तर की बैठक में सम्मिलित होने के लिये सक्षम नहीं है, क्योंकि भारत एवं श्रीलंका के मध्य शान्ति सेना की उपस्थिति के सन्दर्भ में काफी मतभेद हो गया है ।"[3] दक्षेस के घोषणा पत्र में द्विपक्षीय विवादों का विचार-विमर्श स्पष्ट रूप से वर्जित है । श्रीलंका का यह कार्य भारत की अन्तर्राष्ट्रीय छवि को धूमिल करने का प्रयास था ।

---

1. पब्लिक एशिया जुलाई 1989 पृष्ठ - 61
2. दैनिक जागरण 13 जून 1989
3. द हिन्दू 28 जून 1989

भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में शान्ति सेना की वापसी को लेकर काफी गतिरोध उत्पन्न हो गया था । यह विषय काफी उलझ गया था, क्योंकि जो हजारों सैनिक श्रीलंका में हताहत हुये थे उनका बलिदान बिल्कुल व्यर्थ चला जाये यह बात भी किसी की समझ में नहीं आ रही थी श्रीलंका में शान्ति सेना उसकी इच्छा के बिना और बनी रहे, इसका औचित्य भी किसी को समझ में नहीं आ रहा था ।

29 जुलाई 1989 तक भारत एवं श्रीलंका के बीच आरोपों एवं प्रत्यारोपों के कई दौर चलने के बाद भारत इस दिन से शान्ति सेना की प्रतीकात्मक पहल करने एवं उसकी पूर्ण वापसी की प्रक्रिया तय करने के लिये राजी हो गया । इस बीच शान्ति सेना एवं भारत के खिलाफ हिंसा एवं घृणा का दौर चलता रहा । भारतीय प्रतिष्ठानों पर बम फेंके जा रहे थे तथा शान्ति सेना पर घात लगाकर हमले हो रहे थे ।[1]

इसी समय लिट्टे के प्रमुख प्रभाकरन की मौत की अफवाह फैल गयी तथा समय को दृष्टि में रखकर राष्ट्रपति प्रेमदास ने ई0 पी0 आर0 एल0 एफ0 से भी सम्पर्क करने की कोशिश की अनेक प्रयत्नों के बाद भी प्रेमदास शान्ति स्थापित करने में सफल नहीं हो पा रहे थे । भारत से उनके मतभेद भी जारी रहे तथा जे0 वी0 पी0 को कुचलने का सपना भी अधूरा दिखायी पड़ रहा था । दूसरी तरफ लिट्टे शान्ति सेना के विरोध में जंग लड़ रहा था तथा जे0 वी0 पी0 ने भी अंधी हिंसा का एक नया दौर शुरू कर दिया था ।

शान्ति सेना के वापसी के सन्दर्भ में दोनों देशों में काफी विवाद उत्पन्न हो गया था । दोनों ही देशों ने अपने-अपने पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत किये, लेकिन फिर दोनों ही पक्षों ने समझौतावादिता की नीति का अनुसरण करते हुये शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में एक समझौता किया । इस समझौते पर भारतीय उच्चायुक्त लखनलाल मेहरोत्रा एवं श्रीलंका के विदेश सचिव बर्नाड तिलकरटनें ने अपनी सरकार की ओर से 18.9.1989 को हस्ताक्षर किये ।

---

1. नवभारत टाइम्स 30 जून 1990

इस समझौते के माध्यम से प्रेमदास शान्ति सेना की वापसी के लिये भारत को एक समय सीमा में राजी करने में सफल हो गये । यह समय सीमा 31 दिसम्बर 1989 तय की गयी थी, यद्यपि साझा बयान में सिर्फ यह कहा गया था कि भारत इस समय के भीतर शान्ति सेना को वापिस करने की कोशिष करेगा । इस समझौते के अनुसार श्रीलंका सरकार तमिल बाहुल पूर्वोत्तर प्रान्त में नगर प्रशासन को मजबूत बनायेगी तथा शान्ति कायम करने का प्रयास करेगी तथा सभी जातीय समूहों को मिलाकर एक शान्ति समिति बनायी जायेगी ।[1] भारत ने समझौते के अनुसार शान्ति सेना की वापसी का कार्य प्रारम्भ कर दिया था तथा 24 मार्च 1990 तक भारतीय शान्ति सेना पूर्णरूप से भारत वापस आ गयी ।

प्रेमदास इस समझौते को श्रीलंका के आन्तिरिक विषय में सैनिक दखल न देन के भारत के निश्चित वक्तव्य के रूप में प्रस्तुत कर सकते है, लेकिन यह कहना मुश्किल है कि इस भारतीय बादे को प्रचारित करके प्रेमदास पेरूनुमा की हिंसा से उत्पन्न संकट से निकल जायेगे । अभी भी श्रीलंका में हिंसात्मक गतिविधियाँ जारी है तथा तमिल एवं सिंहली उग्रबादी संगठन अड़ियल रुख अपनाये हुये है ।

नवम्बर 1989 में भारत में आम चुनाव सम्पन्न हुये, जिसमें श्री राजीव गाँधी कांग्रेस पार्टी को बहुमत प्राप्त न होने के कारण सरकार का गठन करने में असमर्थ रहे तथा भारत में श्री वी0 पी0 सिंह के नेतृत्व में जनता दल की सरकार का गठन हुआ। श्री राजीव गाँधी ने अपने शासनकाल में श्रीलंका के साथ समझौतावादिता की नीति का अनुसरण करते हुये मधुर सम्बन्ध बनाने का प्रयास किया, लेकिन तमिल एवं सिंहलियों के अड़ियल रवैये एवं भारत सरकार द्वारा श्रीलंका के आन्तिरिक विषयों में आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप करने के कारण राजीव गाँधी को अपने प्रयासों में कोई सफलता नहीं मिली, वरन समस्या ने और जटिल रूप धारण कर लिया । राजीव गाँधी के कार्यकाल में भारतीय कूटनीति की कसौटी श्रीलंका की तमिल समस्या रही है ।

---

1. जनसत्ता 19.9.1989

आज स्थिति यह है कि सुलह कराने वाला मध्यस्थ मुँह कि बल चित्त है, उसकी प्रतिष्ठा को अनेक घाव हैं और श्रीलंका के सिंहली सैनिक एवं तमिल लड़ाकू हिंसात्मक गतिविधियों में संलग्न हैं । श्रीलंका में शान्ति सेना की उपस्थिति ने भारत के प्रति संदेहात्मक स्थिति उत्पन्न कर दी, इसी कारण श्रीलंका सरकार ने शान्ति सेना की वापसी का विषय अपनी प्रतिष्ठा का विषय बनालिया और भारत को एक निश्चित तिथि के भीतर शान्ति सेना की वापसी की स्वीकृति देनी पड़ी । अतः राजीव गाँधी के शासन काल में शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में भारत की स्थिति अपमान जनक रही तथा भारत की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँची थी ।

वर्तमानकाल मे भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध

अक्टूबर 1989 में भारत में श्री वी० पी० सिंह के नेतृत्त्व में राष्ट्रीय मोर्चा की नयी सरकार का गठन हुआ । श्री वी० पी० सिंह ने भारत के प्रधानमन्त्री का पद गृहण करने के पश्चात् यह घोषणा की कि उनकी सरकार गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करने के साथ पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने हेतु प्रयासरत रहेगी । राष्ट्रीय मोर्चा की नयी सरकार ने सोवियत रूस के साथ मधुर सम्बन्ध रखते हुये संयुक्त राज्य अमेरिका एवं साम्यवादी चीन के साथ मैत्रीय सम्बन्धों के विकास का प्रयास किया है तथा पड़ोसी देशों के प्रति अपेक्षाकृत खुलेपन की नीति का अनुसरण किया है ।

भारत की नयी सरकार ने श्रीलंका के साथ मधुर सम्बन्धों के विकास हेतु ईमानदारीपूर्ण प्रयास किये तथा श्रीलंका से भारतीय शान्ति सेना की वापसी पूर्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी द्वारा शान्ति सेना की वापसी के आधार पर किये गये समझौते के अनुसार करने की बचनवद्धता प्रकट की । श्रीलंका सरकार ने भी भारत के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के विकास हेतु आकांक्षा व्यक्त की थी । राष्ट्रीय मोर्चा की वर्तमान सरकार ने श्रीलंका के सम्बन्ध में तीन घोषणायें की हैं । पहली – भारत श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता का सम्मान करेगा । दूसरी – वह अपनी भूमि को किसी भी तमिल आतंकवादी गुट का अड्डा नहीं बनने देगा । तीसरी – भारत किसी भी परिस्थिति में श्रीलंका में हस्तक्षेप नहीं करेगा ।

दिसम्बर 1989 में प्रथम सप्ताह में श्रीलंका के विदेशमन्त्री श्री रंजनविजयरत्ने भारत यात्रा पर आये तथा उन्होंने भारत सरकार से 4 फरबरी 1990 तक शान्ति सेनाक की पूर्ण वापसी का अनुरोध किया । भारत के प्रधानमन्त्री श्री वी० पी० सिंह ने श्रीलंका के विदेशमन्त्री को अवगत कराया कि उनकी सरकार शान्ति सेना की शीघ्र वापसी के सन्दर्भ में निर्णय कुछ विषयों पर अवलोकन करने के बाद ही लेगी, विशेषत: उत्तरी–पूर्वी प्रान्त में सभी की सुरक्षा को दृष्टि में रख कर लेगी ।[1]

---

1. नेशनल हेरल्ड 9 दिसम्बर 1989 ।

भारतीय शान्ति सेना ने श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता को कायम करने के लिये पूर्ण सहयोग दिया है । श्रीलंका के पूर्व राष्ट्रपति श्री जयवर्धने ने स्वयं यह स्वीकार किया कि "भारत के साथ शान्ति समझौता उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता थी, क्योंकि उस समय बाहरी सैनिक सहायता से सरकार का तख्ता पलटने की आशंका थी तथा कोई भी पश्चिमी देश श्रीलंका की सहायता के लिये तैयार नहीं था ।"[1] भारतीय शान्ति सेना ने श्रीलंका में वह सब कुछ किया जो श्रीलंका की सेना नहीं कर पायी, लेकिन फिर भी भारतीय शान्ति सेना की रक्षक के स्थान पर भक्षक की संज्ञा मिली ।

श्रीलंका के वर्तमान राष्ट्रपति श्री प्रेमदास अपने चुनाव प्रचार के समय से ही भारत-श्रीलंका समझौता 1987 के स्थान पर एक मैत्रीय सन्धि पर बल दे रहे थे । भारत में राष्ट्रीय मोर्चा की नयी सरकार के गठन के पश्चात श्रीलंका सरकार ने भारत एवं श्रीलंका के बीच मैत्रीय सन्धि का प्रस्ताव रखा जिसे भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया, लेकिन प्रस्तावित मैत्रीय सन्धि के मसौदे पर भारत एवं श्रीलंका के बीच पर्याप्त मतभेद होने के कारण यह प्रस्ताव गिर गया है । श्रीलंका के विदेश सचिव वर्नाड तिलकरत्ने फरबरी 1990 में मैत्रीय सन्धि के सन्दर्भ में विचार-विमर्श करने के लिये भारत आये थे तथा दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने इस सन्दर्भ में विचार विमर्श किया । नयी दिल्ली सरकार यह चाहती है कि प्रस्तावित संधि में दोनों देशों की मूलभूत नीतियों से सम्बन्धित समस्त तथा भारत - श्रीलंका समझौता 1987 के सभी प्रावधानों को सम्मिलित किया जाये, लेकिन श्रीलंका सरकार यह चाहती है कि 29 जुलाई 1987 के समझौते को समाप्त करके नये तरीके से दोनों देशों के बीच मैत्रीय सन्धि हो जिससे श्रीलंका सरकार के पूर्व समझौते के तहत समस्त दायित्व समाप्त हो जाये ।

मैत्रीय सन्धि के प्रारूप में पर्याप्त मतभेद होने के कारण भारत एवं श्रीलंका के बीच कुछ विवाद उत्पन्न हो गया । श्रीलंका के विदेशमन्त्री ने भारत पर आरोप लगाया कि भारत श्रीलंका पर मैत्रीय सन्धि शीघ्र करने हेतु तनाब डाल रहा है, जबकि श्रीलंका भारतीय शान्ति सेना

1. जनसत्ता 13.2.1990

की पूर्ण वापसी के बाद ही मैत्रीय सन्धि करने के लिये तैयार हो सकती है । भारत के विदेशमन्त्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल ने श्रीलंका के विदेशमन्त्री के इस आरोप का खण्डन करते हुये स्पष्ट किया कि "भारत मैत्रीय सन्धि के लिये किसी प्रकार की शीघ्रता नहीं कर रहा है क्योंकि भारत सरकार जुलाई 1987 के समझौते से पूर्णतः सन्तुष्ट है ।" उन्होंने कहा कि "श्रीलंका के विदेशमन्त्री का इस प्रकार का वक्तव्य पर्याप्त रूप से दुर्भाग्यपूर्ण है ।"[1] अतः मैत्रीय सन्धि के मसौदे में पर्याप्त मतभेद होने के कारण यह प्रस्ताव गिर गया ।

24 मार्च 1990 को भारतीय शान्ति सेना का अन्तिम जवान भारत वापस आगया, जिससे भारत एवं श्रीलंका के बीच शान्ति सेना के सन्दर्भ में उठे विवाद का समापन हो गया । शान्ति सेना की वापसी के बाद कुछ समय के लिये ऐसा प्रतीत हुआ कि अब भारत एवं श्रीलंका के बीच सम्बन्धों में विकास हो सकेगा, लेकिन इसी बीच श्रीलंका सरकार द्वारा नागरिकता की समस्या उठाने के कारण दोनों देशों के मध्य पुनः विवाद उत्पन्न हुआ । श्रीलंका के बगान उद्योगमन्त्री श्री रंजन विजयरत्ने ने एक वक्तव्य में कहा कि "भारत सरकार को उन सभी एक लाख से अधिक तमिल बागान श्रमिकों को भारत प्रत्यावर्तित कर लेना चाहिये जिन्होंने लगभग तीन दशक पूर्व भारतीय नागरिकता की प्राप्ति हेतु आवेदन किया था ।"[2] इसके साथ ही श्रीलंका सरकार ने भारत सरकार को धमकी दी है कि वह भारत के उड़ीसा प्रान्त में बसे लगभग 90,000 श्रीलंका के शरणार्थियों को वापस नहीं लेगा, जबकि भारतीय प्रधानमन्त्री श्री वी0 पी0 सिंह ने स्पष्ट किया कि श्रीलंका को अपने शरणार्थी वापस लेने होंगे । अतः भारतीय मूल के व्यक्तियों की नागरिकता एवं श्रीलंका के शरणार्थियों के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका के बीच पर्याप्त मतभेद उत्पन्न हो गया है । श्रीलंका सरकार अब 26 वर्षों बाद भारत सरकार पर उस विस्मृत समझौते को लागू करने के लिये दवाब डाल रही है जो अब समय एवं परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन होने के कारण भारतीय हितों के अनुकूल नहीं है ।

---

1. इण्डियन एक्सप्रेस 17 फरवरी 1990
2. इण्डियन एक्सप्रेस 2 मई 1990

भारतीय शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में राष्ट्रपति रणसिंग्हें प्रेमदास की सरकार एवं लिट्टे नेताओं के बीच जो समझौता वार्तायें चली थी एवं जो एकता स्थापित हुयी थी, उनमें शान्ति सेना की वापसी के बाद ही दरार उत्पन्न होने लगी थी । लिट्टे ने प्रेमदास सरकार द्वारा बुलायी गयी सर्वदलीय बैठक का बहिस्कार कर दिया तथा सशास्त्र संघर्ष की तैयारी में जुट गया, जिसकी परिणति ।। जून 1990 को लिट्टे द्वारा श्रीलंका की पुलिस पर आक्रमण के साथ हुयी ।

।। जून 1990 से श्रीलंका में हिंसा का एक नया दौर प्रारम्भ हो गया है । श्रीलंका की सेना एवं लिट्टे के सैनिक एक-दूसरे के साथ आर-पार की लड़ाई लड़ने में संलग्न है, कई बार संघर्ष विराम होने के बाद टूट चुका है । अनेक व्यक्तियों की जानें जा चुकी है तथा अभी भी श्रीलंका में भीषण युद्ध जारी है । श्रीलंका की सरकार ने अपनी सेना की कमान पुराने क्रूर सेनानायकों के हाथ में सौप दी है । जातीय संघर्ष के इस वीभत्स दौर में साधारण तमिल नागरिक ही वेमौत मर रहे है । श्रीलंका के उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में लिट्टे एवं श्रीलंका की सेना के बीच घमासान युद्ध चल रहा है । पूर्वी प्रान्त में लिट्टे का पलड़ा भारी है तथा उत्तर में लिट्टे की पकड़ काफी शक्तिशाली है । पूर्वी भागों में भी शहरों में सेना का वर्चस्व है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी लिट्टे अपना प्रभुत्व बनाये हुये है ।

श्रीलंका में बढ़ती हुयी हिंसा पर भारत सरकार ने गम्भीर चिन्ता प्रकट की है तथा यह स्पष्ट किया है कि श्रीलंका की जातीय समस्या का हल विचार-विमर्श के आधार पर ही सम्भव है ।[1] भारत की तमिलनाडु प्रान्त में भारत सरकार द्वारा श्रीलंका में निर्दोष तमिलों की हत्या रोकने हेतु उचित कदम उठाने की माँग हो रही है । श्रीलंका की सरकार ने भारत के प्रधानमन्त्री श्री वी० पी० सिंह एवं विदेशमन्त्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल को यह विश्वास दिलाया है कि उनकी लड़ाई लिट्टे के विरूद्ध है न कि तमिलों के विरोध में है । श्रीलंका के राष्ट्रपति श्री प्रेमदास ने यह घोषणा की है कि लिट्टे से अब कोई भी वार्ता अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की उपस्थिति में ही सम्भव होगी । यही प्रमदास छः माह पूर्व शान्ति सेना की वापसी के प्रश्न पर कह रहे थे कि तमिल

1. नवभारत टाइम्स 28 जून 1990

समस्या श्रीलंका की आंतिरिक समस्या है तथा इसमें किसी तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है । वास्तव में प्रेमदास का उद्देश्य उस समय भारत को अपने रास्ते से हटाना था तथा आज भी नहीं है । वर्तमान समय में श्रीलंका में घटनाक्रम एक पूरा चक्कर काट कर फिर वहीं वाप्स आ पहुँचा है, जहाँ तीन वर्ष पूर्व था । भारत आज श्रीलंका में उन्हीं दृश्यों की पुनरावृत्ति देख रहा है, जिनसे परेशान होकर भारत ने श्रीलंका के आन्तरिक विषयों पर हस्तक्षेप किया था । भारतीय शान्ति सेना की वापसी के बाद श्रीलंका में भारत की प्रत्यक्ष भागीदारी समाप्त हो गयी है वर्तमान समय में भारत अपने को श्रीलंका के विषय में किंकर्तव्य- विमूढ़ पा रहा है ।

तमिलनाडु में भारत सरकार की ओर से पुनः श्रीलंका में हस्तेक्षय की माँग उठ रही है, लेकिन फिर भी भारत सरकार शान्ति सेना के सन्दर्भ में हुये कटु अनुभवों के कारण अपनी अहस्तक्षेप की नीति पर अभी तक अटल है । भारत के विदेशमन्त्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल ने स्पष्ट किया है कि भारत सरकार श्रीलंका के आन्तिरिक विषय में हस्तक्षेप नहीं करेगी । भारत सरकार ने श्रीलंका सरकार से साधारण तमिल जनों की सुरक्षा हेतु तथा उत्तरी-पूर्वी प्रान्त के व्यक्तियों के अधिकार देने के सन्दर्भ में अनुरोध किया है, लेकिन भारत सरकार ने श्रीलंका में होने वाले हिंसा के ताण्डव के सन्दर्भ में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का मन्तव्य नहीं प्रकट किया है ।

अतः भारत की राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने अपने लगभग एक वर्ष के शासनकाल में श्रीलंका के सन्दर्भ में तटस्थता की नीति का अनुसरण किया है । भारत एवं श्रीलंका के बीच इस काल में प्रस्तावित मैत्रीय सन्धि एवं शरणार्थियों की समस्या के कारण कुछ मतभेद अवश्य उत्पन्न हुये है, लेकिन फिर भी दोनों देशों के सम्बन्धों में कोई विशेष तनाव उत्पन्न नहीं हुआ है । भारत सरकार ने श्रीलंका के साथ सम्बन्धों को सामान्य बनाने के लिये उसके आन्तरिक विषय में हस्तक्षेप न करने का निश्चय किया है ।

****

तृतीय अध्याय

भारत एवं श्रीलंका के मध्य प्रमुख समस्या – तमिल समस्या

भारत के समान श्रीलंका बहुजातीय एवं बहुभाषीय देश है । श्रीलंका द्वीप में प्रमुख रूप से चार जातीय समुदाय निवास करते है । सिंहली इस देश का बहुसंख्यक समुदाय है, दूसरा समुदाय श्रीलंका के तमिलों का है, तीसरा समुदाय मुसलमानों का है तथा चौथा समुदाय भारतीय तमिलों का है । तमिलों की अधिकांश जनसंख्या श्रीलंका के उत्तरी पूर्वी प्रान्त में निवास करती है । सिंहली भाषा – भाषी देश की कुल जनसंख्या के 74 प्रतिशत है तथा तमिल 13 प्रतिशत सम्पूर्ण देश 24 जिलों में बंटा है जिनमें से उत्तर के चार जिलों में तमिलों का बाहुल्य है । देश का उत्तरी प्रान्त जाफना में 94.6 प्रतिशत तमिल निवास करते है । इसके अतिरिक्त मन्नार में 50.6 प्रतिशत वायुनिया में 56.9 प्रतिशत तथा मालातिवु में 76 प्रतिशत तमिल बाहुल्य है । जाफना भारत से केवल 35 कि0मी0 दूरी पर वसा है । श्रीलंका में तमिल एवं सिंहली एक दूसरे पर अपनी संस्कृति एवं भाषा की प्रभूसत्ता जमाने के होड़ में सदियों से लगे हुये है ।

श्रीलंका में सिंहली एवं तमिल दोनों ही अपने को श्रीलंका के मूल निवासी मानते है । श्रीलंका का बहुसंख्यक सिंहली समुदाय यह विचार रखता है कि तमिल लोग विदेशी हैं इसलिये उन्हें इस द्वीप में सिंहलियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं होना चाहिये । श्रीलंका में तमिलों का प्रवेश दक्षिण भारत के चोल राज्यों के आक्रमणों के परिणामस्वरूप दूसरी शताब्दी में हुआ था तथा ये तमिल श्रीलंका के उत्तरी पूर्वी प्रान्त में वहीं के निवासी रूप में रहने लगे । इन तमिलो को श्रीलंका के तमिलों की संज्ञा दी जाती है । भारतीय तमिलों की संज्ञा उन व्यक्तियों को दी जाती है जो उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ में बागानों के श्रमिक के रूप में तमिलनाडु से श्रीलंका गये थे तथा वहीं के निवासी के रूप में रहने लगे । भारत एवं श्रीलंका के मध्य तमिलों को नागरिकता प्रदान करने की समस्या इन्ही भारतीय तमिलों से सम्बन्धित रही है ।

तमिल समस्या भारत एवं श्रीलंका के मध्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है । तमिल समस्या के कारण ही भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में सर्वाधिक उतार – चढ़ाव होता रहता है । 1983 से पूर्व भारत एवं श्रीलंका के मध्य तमिल समस्या के सन्दर्भ में केवल भारतीय तमिलों
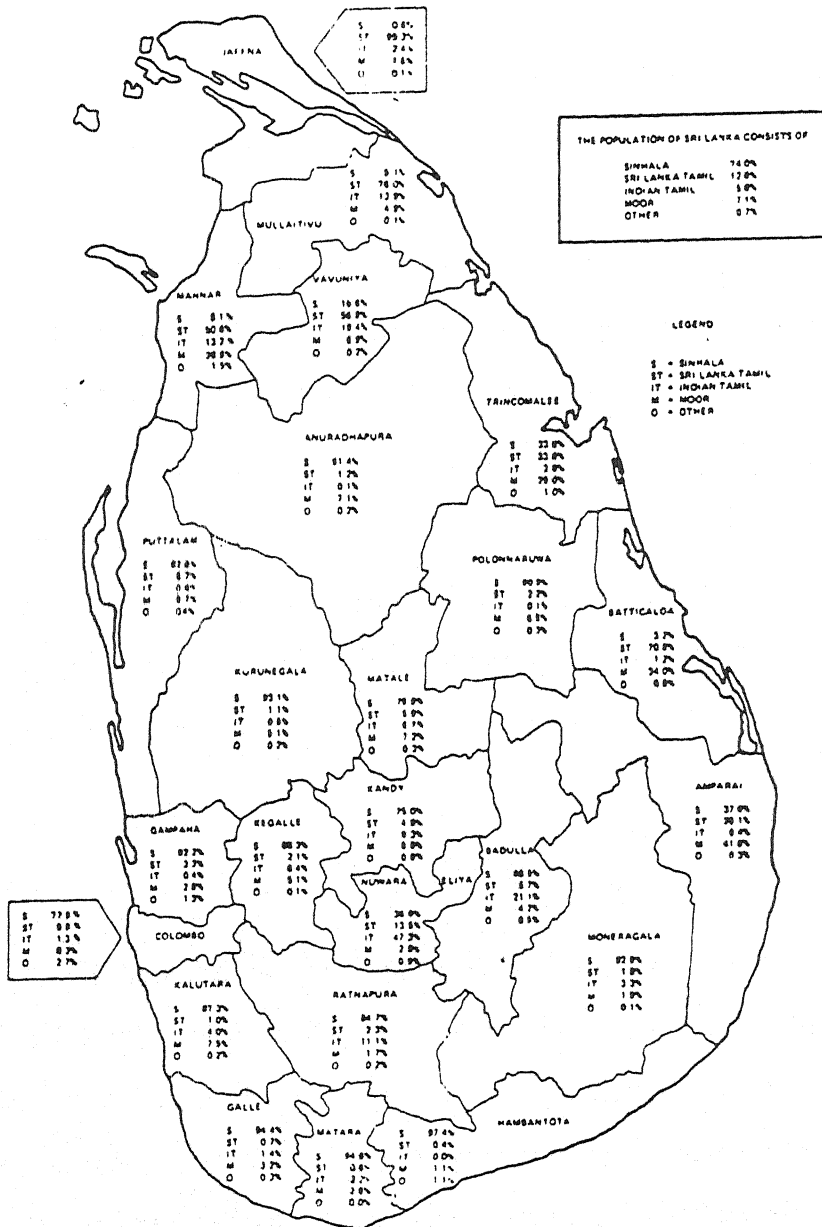
श्रीलंका में भौगोलिक आधार पर विभिन्न जातीय समूहों की स्थिति

(साभार – न्यू देहली एण्ड श्रीलंका – पी० रामास्वामी)

को नागरिकता प्रदान करने की समस्या रही है, लेकिन 1983 में सिंहली एवं तमिल समुदाय के जातीय विद्वेश के जहर के कारण भयंकर विस्फोट हुआ, जिसके परिणामस्वरूप श्रीलंका सरकार राजनीति के प्रभाव में तमिलों (भारतीय एवं श्रीलंका के तमिल) का दमन करने पर आमदा हो गयी । भारत सरकार द्वारा तमिलों पर हो रहे अत्याचार का विरोध करने तथा तमिलनाडु क्षेत्र के तमिलों का श्रीलंका के तमिलों को सहयोग मिलने पर समस्या और जटिल होती गयी तथा भारत सरकार को तमिलों पर हो रहे अत्याचार के कारण श्रीलंका सरकार की नीतियों में हस्तक्षेप करना पड़ा ।

भारत एवं श्रीलंका ने यद्यपि भारतीय तमिलों को नागरिकता प्रदान करने की समस्या के काफी सीमा तक सुलझाने का प्रयास किया है, लेकिन वर्तमान समय में भारत – श्रीलंका सम्बन्ध तमिल अल्पसंख्यकों (भारत एवं श्रीलंका) की समस्या से प्रभावी है । श्रीलंका सरकार एवं तमिल उग्रवादी संगठनों के अड़ियल रूख के कारण समस्या समाधान की ओर किये गये अनेक प्रयासों के बाद भी कोई सफलता नहीं प्राप्त हुयी है ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक रूप से तमिल समस्या ब्रिटिश साम्राज्यवाद की देन है । उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ में ही भारत एवं श्रीलंका पर अंग्रेजों का अधिपत्य स्थापित हो चुका था । अंग्रेजों के आक्रमण के समय श्रीलंका की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी थी । अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन एवं वाणिज्यक क्षेत्र में बृद्धि करना था, जबकि श्रीलंका की तत्कालीन अर्थव्यवस्था में यह सम्भव नहीं था । उसी समय योरोपीय बाजार में चाय एवं काफी की माँग बहुत अधिक बढ़ रही थी । श्रीलंका के मृतप्राय आर्थिक ढाचे को पुर्नजीवित करने के लिये अंग्रेजों ने इसको स्वर्णिम अवसर समझा तथा चाय एवं कॉफी के उत्पादन में बृद्धि करने का प्रयास किया । चाय बगानों में कार्य करने के लिये श्रीलंका में मजदूरों का अभाव था, इसलिये अंग्रेजों ने एशिया के बाहर से भी मजदूर लाना प्रारम्भ कर दिया । एशिया में सबसे सस्ते श्रमिक भारत में ही मिलते

थे, फलस्वरूप अंग्रेज भारत के तमिलनाडु क्षेत्र से भारतीय श्रमिकों को बहलाकर ले गये तथा उनसे चाय एवं रबर की खेती का कार्य कराने लगे । 1828 में कंपनी व्यवस्था (बिचौलिया) के माध्यम से भारतीय श्रमिकों का पहला दल श्रीलंका पहुँचा ।[1] भारतीय श्रमिकों का श्रीलंका में विशेष स्वागत होता था तथा भारतीय श्रमिकों को यह विश्वास दिलाया जाता था कि उनको सीलोन में सिंहलियों के समान राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अधिकार प्रदान किये जायेंगे ।[2]

भारतीय श्रमिकों के कठोर परिश्रम से श्रीलंका की आर्थिक स्थिति में सुधार होने लगा धीरे-धीरे भारतीय श्रमिकों की संख्या श्रीलंका में बढ़ती गयी तथा भारतीय श्रमिक श्रीलंका के निवासी के रूप में वहीं रहने लगे । अपने परिश्रमी स्वभाव के कारण भारतीय श्रमिकों के अंग्रेजों से मधुर सम्बन्ध स्थापित हो गये थे तथा धीर-धीरे भारतीय श्रमिक सीलोन की अर्थव्यवस्था पर अधिपत्य स्थापित करने लगे थे । सिंहलियों ने भारतीयों के बढ़ते हुये प्रभाव को रोकने का हर सम्भव प्रयास किया तथा सिंहली अंग्रेजों के साथ-साथ भारतीय श्रमिकों से भी घृणा करने लगे, परिणामस्वरूप बगानों में तमिल श्रमिकों के साथ दुर्व्यवहार एवं अत्याचार होने लगा । तमिलों में हो रहे अत्याचार के विरोध में भारत सरकार ने 1839 में सीलोन जाने वाले समस्त श्रमिकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया ।[3] परिणामस्वरूप श्रीलोन में बगानों का उत्पादन बहुत कम हो गया, जिससे सीलोन की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी । सीलोन की सरकार ने भारत सरकार से भारतीय श्रमिकों को सीलोन भेजने के लिसे अनुरोध किया तथा भारत सरकार को विश्वास दिलाया कि सीलोन में भारतीय श्रमिकों के साथ निष्पक्ष एवं समान व्यवहार किया जायेगा । भारत सरकार ने सीलोन की सरकार के अनुरोध पर 1847 में भारतीय श्रमिकों के श्रीलंका जाने के प्रतिबन्ध को समाप्त कर दिया, लेकिन फिर भी भारत सरकार सीलोन जाने वाले भारतीय श्रमिकों के भविष्य के प्रति चिन्तत रही । 1847 से 1867 तक भारतीय श्रमिकों की सुरक्षा के लिये सीलोंन की सरकार ने लगभग 24 कानून बनाये ।[4] 1917 में सीलोन राष्ट्रीय कांग्रेस नामक संगठन का गठन हुआ । इस संगठन में तमिल

---

1. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर, 1988
2. वाइनट कोल्हो "एक्रोस द पाक स्टेट" पृष्ठ - 155
3. पी0 आर0 रामाराव "इन्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 43
4. पी0 आर0 रामाराव "इन्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 44

TABLE

Indian Tamil Propulation in Sri Lanka

Year	Tamil workers on estates	Tamil estate Population	Total Indian population		Percentage of total population based on(4)
	1	2	3	4	
1827		10,000			
1847		50,000			
1877		146,000			
1911		457,765		531,000e	12.9
1921		493,944		602,700e	13.4
1931		692,540		818,500ef	15.8
1942	433,800		673,000		
1946	454,914	665,853	693,000	780,600e	11.7
1953	448,044		815,000	974,100de	12.0
1958	440,743	864,000a	864,000		
1962	425,036	949,684ab	932,000c	1,123,000g	10.6
1964				975,000h	
1967		866,797a			
1971				1,175,000	9.3

Sources : 1. S U Kodikara : Indo.Ceylon Relations ...,

2. " : An Unassimilated ....

3. " : Indo-Ceylon Relations....

4. Statisticeal Abstract of Ceylon 1970-1971/ Statistical Pocket Book of the Democratic Socialist Republic of Sri Lanka 1978.(i)

Notes : a : The figure does not include Indian Tamils with Sri Lankan citizenship.

b : The figure is valid for 1961.

c : The figure is valid for 1960.

d : The 1953 figure (and onestfd?) includes all Indians.

e. The figure excceds that of the Ceylon Tamils for this year.

f : The figure is an estimate.

g : The figure is valid for 1963.

h : This figure according to the estimate in the Indo-Ceylon Agreement of that year.

i : The census years 1881, 1891 and 1901 did not distinguish between Indian and Ceylon Tamils.

एवं सिंहली दोनों ही समुदाय सम्मिलित थे तथा दोनों के बीच उस समय कोई विवाद नहीं था ।

1920 एवं 1923 के संविधान के अनुसार भारतीय तमिलों को सीलोन के मूलनिवासियों के समान वैधानिक एवं राजनैतिक अधिकार प्रदान किये गये तथा उन्हें मताधिकार भी प्राप्त हो गया । 27 जुलाई 1922 को सीलोन की सरकार ने भारत सरकार को एक पत्र के माध्यम से अवगत कराया कि भारतीय श्रमिकों को सीलोन के नागरिकों के समान समस्त नागरिक सुविधाये प्राप्त है ।[1] भारतीयों को इस द्वीप में समस्त वैधानिक अधिकार प्राप्त थे ।

1927 में सीलोन में संविधान सुधार के लिये अंग्रेजों द्वारा डोनगमूर आयोग की स्थापना की गयी । आयोग ने अनेक सुझावों के साथ पिछले पाँच वर्षो से सीलोन में रहने वाले सभी व्यक्तियों को मताधिकार प्रदान करने की संस्तुति की, इसके विपरीत सिंहली राजनेता आय एवं शिक्षा के आधार पर व्यक्तियों को मताधिकार प्रदान करने के पक्ष में थे, लेकिन आयोग ने सरकार के इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया था । बागानों में कार्य करने वाले अधिकांश श्रमिक अशिक्षित एवं निर्धन थे, ऐसा करने से अधिकांश भारतीय श्रमिक मताधिकार से वंचित रह जाते । सिंहलियों ने आयोग द्वारा पारित प्रस्तावों का विरोध किया ।

इस समय तक भारतीय श्रमिकों को सीलोन में समान अधिकार प्राप्त थे । पहली जुलाई 1929 को सीलोन काउंसिल ने भारत सरकार को अवगत कराया कि "भारतीयों को सीलोन में वहाँ की जनता के समान समस्त अधिकार प्राप्त है, उन्हें भू-स्वामित्व का भी अधिकार प्राप्त है ।"[2] 1931 तक भारतीयों को इस द्वीप में अन्य प्रजातीय समुदायों के समान मताधिकार प्राप्त था । 1931 तक सीलोन में भारतीयों को कई प्रशासनिक सेवाओं में स्थान मिलता रहा तथा अधिकांश महत्वपूर्ण पदों पर मद्रास - प्रेसीडेन्सी से गये भारतीय आसीन थे ।[3]

---

1. पी० आर० रामाराव "इन्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 44
2. पी० आर० रामाराव "इन्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 48
3. एम० वम्बेडरण "सोसियों इकनामिक्स स्टेटस आफ प्लान्टेसन लेवर इन श्रीलंका वाल्यूम 4, 1985

1931 में अंग्रेज सरकार ने सीलोन के समस्त नागरिक को मताधिकार दिया, लेकिन सीलोन काउंसिल ने शासनादेश जारी करके आय एवं शिक्षा सहित निवास की अवधि स्थाई निवासी के रूप में कम से कम पाँच वर्ष का प्रमाण पत्र मताधिकार प्राप्त करने के लिये अनिवार्य कर दिया । 1935 से ही भारतीय मूल के व्यक्तियों के साथ इस द्वीप में भेदभावपर्ण व्यवहार प्रारम्भ हो गया था । 1938 में संविधान संशोधन करके सीलोन काउंसिल ने बागनों के श्रमिकों को मताधिकार से वंचित कर दिया था । 1939 में भारतीय वेतन भोगी लगभग 2515 कर्मचारियों की छंटनी कर दी गयी ।[1] परिश्रमी होने के कारण भारतीय तमिलों ने अंग्रेजी का पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त किया और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने लगे थे प्रशासनिक सेवाओं में भी ये सिंहली समाज को पीछे छोड़ गये थे इन प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि तमिल श्रलंका के राजनीतिक ढाचें के इर्दगिर्द ही अपने सुखत भविष्य की कल्पना करते रहे । उन्होंने इस समय इस बात की चिन्ता नहीं की कि श्रीलंका का बहुसंख्यक सिंहली समाज उनके प्रति कितलन संवेदना रखता है ।

भारत सरकार सीलोन की भारतीय तमिलों के प्रतिनीतियों को सदैव विरोध करती रही तथा भारतीय राजनेता बागनों में कार्य करने वाले श्रमिकों की स्थिति में सुधार के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहे तथा भारत से बंधुआ मजदूरों के निर्गम पर रोक लगाने की माँग करने लगे । इसके विपरीत सीलोन के राजनेता इस आशंका को व्यक्त करने लगे कि इतनी बड़ी संख्या में भारतीयों की उपस्थिति एक समस्या बन सकती है । इस तनावपूर्ण समस्या के समाधान के लिये 1939 में नेहरू जी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में सीलोन गये । नेहरू जी ने कोलम्बों मे एक सभा को सम्बोधित करते हुये कहा "भारत साम्राज्यवादियों को दूसरे देशों को गृहण करने या अन्य देशों पर अधिकार रखने से दूर रखना चाहता है । यदि भारतीयों को दूसरों के प्रति रूचि है तो यह उनकी दूसरों के प्रति सहयोग एवं सद्इच्छा की भावना है । मुझे भारतीय होने पर गर्व है । मै नहीं चाहता कि भारतीय ऐसी जगह जाये जहाँ उनका स्वागत न हो, यदि वे कहीं जाते है तो उन्हे वहाँ के व्यक्तियों की सदइच्छा से जाना चाहिये । भारतीय जहाँ हैं उनपर किसी प्रकार का

---

1. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर, 1988

अत्याचार नहीं होना चाहिए मै भारतीयों को बम के नीचे गिरकर मरना पसन्द करूँगा, वजाये इसके कि उनका अनादर हो ।"[1]

भारत एवं सीलोन के मध्य राजनयिक संवाद का प्रथम दौर 1940 में सम्पन्न हुआ जिसके प्रमुख विषय थे गैरकानूनी आव्रजन एवं भारतीय वंशजों की नागरिकता । इसी अवसर पर सोलेमान भंडानायके ने एक नाटकीय घोषणा की थी "यदि भारतीय इतनी बड़ी संख्या में श्रीलंका के निवासी बने रहेगे तो सिंहलियों का राजनैतिक एवं आर्थिक सफाया हो जायेगा – हमारे लिये यह जीवन मरण का प्रश्न है ।"[2] भंडारनायके का मत था "कि श्रीलंका में सिंहली तीस भिन्न अल्पसंख्यक समूहों में विभाजित है, अपनी आर्थिक एवं शैक्षिक श्रेष्ठता के आधार पर तमिलभाषी राजनीति में प्रभूत्व स्थापित कर सकते है ।"[3] वास्तव में जबकि स्थिति यह थी कि अधिकांश भारतीय श्रमिक निर्धन थे तथा शिक्षा के अभाव में नित परिवर्तित नागरिकता अधिनियमों का लाभ उठाने में असमर्थ रहे । राजनैतिक अधिकारों से वंचित होने पर ये भारतीय श्रमिक अपने आर्थिक हितों की सुरक्षा भी नहीं कर सके ।

भारत एवं श्रीलंका के सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयत्नों का कुछ ठोस परिणाम निकलने से पहले ही द्वितीय विश्वयुद्ध के बढ़ते हुये ज्वार ने इस समस्या को गौण बना कर पीछे कर दिया तथा बात कुछ दिनों के लिये टल गयी ।

1944 में समस्या समाधान हेतु अंग्रेजों ने सीलोन के संविधान की जटिलताओं को अध्ययन करके उसमें संशोधन के उद्देश्य से सोलेवरी आयोग को सीलोन भेजा । लार्ड सोलेबरी के नेतृत्व में इस आयोग ने तमिलों एवं सिंहलियों दोनों से अलग-अलग बात की । तमिलों ने आयोग से माँग की कि उन्हें सीलोनी विधयिका में बराबर का प्रतिनिधित्व दिया जाये । सिंहलियों ने तमिलों की इस माँग का पूर्ण रूप से विरोध किया, परिणामस्वरूप सोलेबरी आयोग संविधान में संशोधन के लिये

---

1. आर0 रामास्वामी "न्यू देलही एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ – 153
2. दिनमान 7 – 13 अगस्त, 1983
3. वही ।

कोई संस्तुति नहीं कर पाया ।[1]

1946 में डोनगमूर आयोग के अन्तर्गत सीलोन में आम चुनाव सम्पन्न हुये । 1946 में डी० एस० सेनानायके सीलोन के प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुये । 15 अगस्त 1947 को भारत तथा 4 फरवरी 1948 को सीलोन पूर्ण रूप से अंग्रेजों के अधिपत्य से स्वतन्त्र हो गया । ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अन्तिम दिनों में ही तमिलों ने सिंहलियों से आक्रान्त होकर तमिल कांग्रेस के नाम से अपना अलग संगठन निर्मित किया था, जिसका नेतृत्व तमिल राष्ट्रवाद के गाँधीवादी नेता एस० जे० बी० चेलवामपकम द्वारा किया गया । श्रीलंका में जब तक विदेशी शासन रहा, तबतक तमिल एवं सिंहलियों के बीच प्रतिस्पर्धा उभर कर सामने नहीं आ सकी, परन्तु जैसे ही देश स्वतन्त्र हुआ इन समुदायों में कलह राष्ट्रीय समस्या के रूप में सामने आने लगे तथा देश को बहुत शोचनीय स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया । श्रीलंका में बहुसंख्यक सिंहली एवं अल्पसंख्यक तमिल राष्ट्रीयताओं के मध्य भेदभाव उत्पन्न करने में साम्राज्यवादियों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था ।

---

1. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर, 1988

तमिल समस्या का वास्तविक रूप

भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में तमिल समस्या का वास्तविक स्वरूप स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ उचित हुआ । 15 अगस्त 1947 को भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति एवं 4 फरवरी 1948 को श्रीलंका की स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही दोनों देशों के सम्बन्धों में एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी ।[1] भारतीय प्रवासियों के अधिकार का प्रश्न स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही उनकी नागरिकता के प्रश्न के रूप में परिणित हो गया, क्योंकि 1948 में ही श्रीलंका सरकार ने नागरिकता कानून बनाकर उन लगभग दस लाख तमिलों की नागरिकता समाप्त कर दी, जिन्हें अंग्रेजों ने अपने चाय बगानों के श्रमिक के रूप में तमिलनाडु से ले जाकर बसाया था ।

श्रीलंका सरकार ने 1949 में पारित भारत एवं पाकिस्तान नागरिकता कानून के अन्तर्गत व्यक्तियों को पंजीकरण के बाद श्रीलंका की नागरिकता प्रदान करने की जो व्यवस्था की, उससे भारत में आक्रोश एवं असन्तोष उत्पन्न हो गया । इस अधिनियम के अनुसार भारतियों को यह सिद्ध करना पड़ता था कि उनके माता-पिता व वे श्रीलंका में उत्पन्न हुये है तथा 1939 से बराबर श्रीलंका में रह रहे हैं । श्रीलंका के प्रधानमन्त्री श्री डी० एस० सेनानायके ने यह स्पष्ट किया कि "वे व्यक्ति जिनकों सीलोन की नागरिकता प्राप्त नहीं है वे भारतीय नागरिक के रूप में इस द्वीप में अब भी रह सकते है ।"[2]

श्रीलंका की सरकार ने नागरिकता अधिनियम केवल सिंहलियों के दवाब के कारण ही पारित नहीं किया था, वरन इसके पीछे अन्य कारण भी थे – सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि यदि भारतीय तमिलों को इस द्वीप में राजनैतिक अधिकार मिलता रहा तो वे श्रीलंका के तमिलों के साथ मिलकर बहुसंख्यक सिंहली समुदाय के लिये समस्या उत्पन्न कर सकते है तथा श्रीलंका की राजनीति को निर्णायक के रूप में प्रभावित कर सकते थे ।[3] भारतीय तमिलों का संगठन "सीलोन भारतीय कांग्रेस" काफी शक्तिशाली हो रहा था । इसके अतिरिक्त कुछ सिंहलीय राजनेताओं

---

1. महेश्वरी "इण्डिया श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्सव" पृष्ठ – 163
2. न्यू देलही एण्ड श्रीलंका पृष्ठ – 47
3. एन० के० श्रीवास्तव "भारत की विदेश नीति"

श्रीलंका: तमिल आबादी वाले क्षेत्र

देश की कुल आबादी: 1.5 करोड़

सिंहली	74.0%
श्रीलंका के तमिल	12.6%
भारतीय तमिल	5.6%
मूर	7.1%
अन्य	0.7%

1981 की जनगणना

50% से ज्यादा श्रीलंका के तमिल

20-35% श्रीलंका के तमिल

लगभग 47% भारतीय तमिल
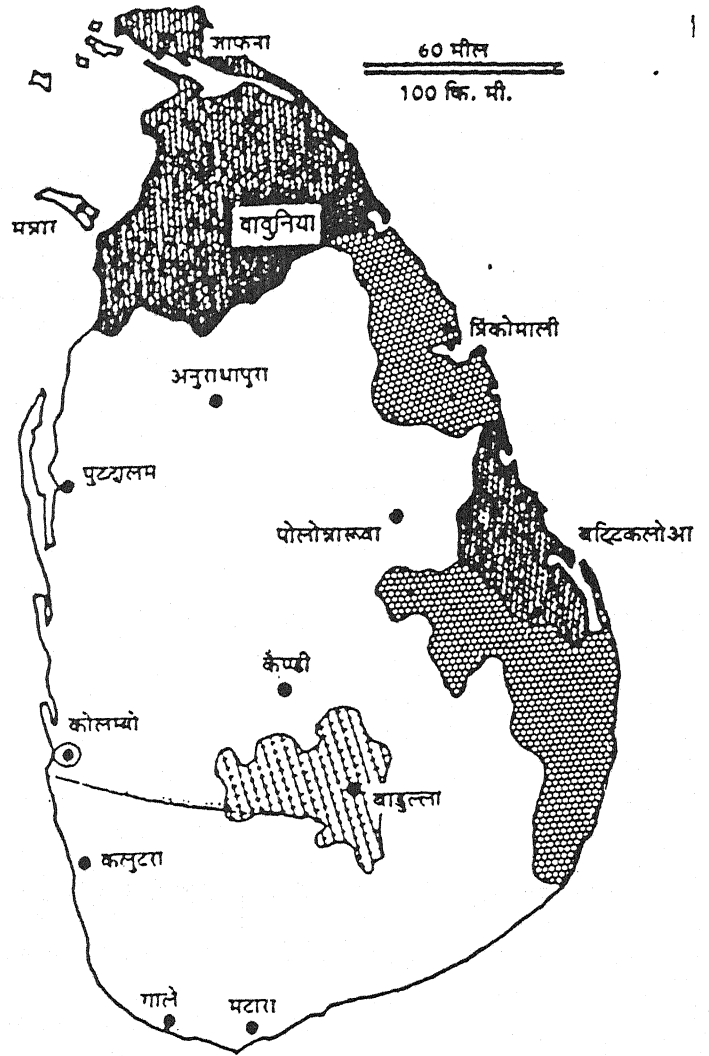
का विचार था कि जो श्रमिक समुदाय अंग्रेज निरीक्षकों के अधीन थे यदि उनको राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुये तो उनकी आवाज अंग्रेजों की आवाज होगी तथा वे उन्हीं के हित की बात कहेंगे । श्रीलंका सरकार ने इन सभी कारणों से ही भारतीय तमिलों की नगरिकता समाप्त कर दी थी ।[1]

नागरिकता के समाप्ति पर भारतीय श्रमिक जो श्रीलंका के चाय बगानों में रहते थे, उनके जीवन स्तर में काफी गिराबट आयी । उनकी सामाजिक एवं भावनात्मक समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, वे अपने परिश्रम को अपनी जवनवृत्ति के लिये बेचने लगे । भारतीय तमिल श्रीलंका की चाय समृद्धि में मेरूदण्ड के समान थे तथा आज भी है । भारतीय तमिलों पर ही श्रीलंका की अर्थव्यवस्था निर्भर है, फिर भी श्रीलंका का बहुसंख्यक सिंहली समुदाय इनको इस द्वीप से बाहर निकालना चाहता है । प्रत्येक सिंहली का यह विचार है कि श्रीलंका उनका देश है इसलिये तमिलों को इस देश में कोई अधिकार नहीं माँगना चाहिये ।[2] भारतीय तमिलों को विचार था कि उन्होंने कठोर परिश्रम करके श्रीलंका की अर्थव्यवस्था में जो सहयोग दिया था, उसका परिणाम इस द्वीप ने उन्हें मतदान से वंचित करके दिया । भारतीय प्रवासियों की समस्या उस समय और गम्भीर हो गयी थी जब श्रीलंका सरकार ने 1950 में नागरिकता अधिनियम में संशोधन करके श्रमिकों को बागान मालिकों की कृपा पर जीवित रहने के लिये बाध्य कर दिया तथा बगानों का राष्ट्रीयकरण कर दिया।[3] भारतवासियों ने श्रीलंका सरकार के इन कार्यो का प्रारम्भ से ही विरोध किया । भारतवासियों ने विरोध स्वरूप 1952 के चुनाव का बहिष्कार भी किया ।

श्रीलंका की सरकार सभी प्रवासी भारतीयों की अनिवार्य वापसी के समर्थन में थी, लेकिन भारत सरकार श्रीलंका सरकार के प्रस्ताव से सहमत नहीं थी । भारतीय प्रवासियों के कारण भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में कटुता बढ़ती ही गयी ।

1956 में श्री भंडारनायके ने श्रीलंका फ्रीडम पार्टी का गठन किया तथा चुनाव लड़ा । अपने चुनाव के घोषणा-पत्र में श्री भंडारनायके ने स्पष्ट रूप से जातीय विद्वेष को भड़काया, जिसका

1. न्यू देलही एण्ड श्रीलंका रामास्वामी पृष्ठ - 40
2. द हिन्दू 31 मई, 1985
3. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर, 1988

उन्हें पर्याप्त लाभ भी मिला । वे भारी मतों से विजयी हुये एवं प्रधानमन्त्री बनते ही श्री भंडारनायके ने सिंहली जनता को खुश करने के लिये बौद्ध धर्म को राष्ट्र-धर्म धोषित कर दिया तथा सिंहली भाषा को राष्ट्र भाषा का स्थान दिया । इससे पहले तमिल भाषा को सिंहली के समान स्थान प्राप्त था । सरकारी सेवाओं, विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेनें में सिंहलियों को आरक्षण की सुविधा प्रदान की गयी । श्रीलंका सरकार ने तमिल बाहुल्य क्षेत्र में सिंहली किसानों के पुर्नवास की योजना स्थापित की जिसमें तमिलों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया । श्रीलंका सरकार तमिलों को बाहर निकालने के प्रत्येक तरीके अपना रही थी । परिणाम स्वरूप श्रीलंका में पहली बार भीषाण दंगें हुये ।[1] स्थिति को नियन्त्रित करने के लिये श्रीलंका में आपात स्थिति लागू कर दी गयी।

भारत के तमिलनाडु क्षेत्र के राजनेता श्रीलंका में सैनिक शासन द्वारा तमिलों पर हो रहे अत्याचार का विरोध कर रहे थे तथा भारत सरकार से तमिलों पर हो रहे अत्याचारों पर हस्तक्षेप का अनुरोध कर रहे थे । तमिल नेशनल पार्टी के नेता डी० एम० के० के एक समूह के साथ नेहरू जी से मिले तथा श्रीलंका पर तमिलों पर हा रहे अत्याचारों पर हस्तक्षेप करने का आग्रह किया । नेहरू जी ने इस विषय पर श्रीलंका सरकार से अनौपचारिक वार्ता करने का आश्वासन भी दिया । भारत सरकार तमिल समस्या पर कोई प्रथक हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी, क्योकि यह नेहरू जी का विचार था कि यह पूर्णरूप से श्रीलंका का आन्तिरिक विषाय है ।

भारत एवं श्रीलंका की सरकार प्रारम्भ से ही इस समस्या के समाधान के लिये प्रयत्नशील रही, लेकिन दोनों ही देशों के असफल प्रयासों के कारण समस्या आज भी अपने विकृत रूप में विद्यमान है ।

अक्टूबर 1964 में दोनों देशों ने तमिल समस्या के समाधान हेतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया तथा एक निश्चित सीमा के अन्दर दोनों ही देश तमिलों को नागरिकता प्रदान करने के लिये सहमत हो गये, लेकिन समस्या यह थी कि भारत ने जितने व्यक्यिों को

---

1. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर, 1988

नागरिकता प्रदान करने में सहमति प्रकट की थी उतने व्यक्ति श्रीलंका से भारत आना नहीं चाहते थे तथा दूसरी तरफ श्रीलंका की सरकार समझौते के अनुसार नागरिकता प्रदान करने का कार्य बहुत धीरी गति से कर रही थी । परिणामस्वरूप श्रीलंका में जातीय संघर्ष बराबर होता रहा तथा श्रीलंका सरकार तमिलों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें श्रीलंका छोड़ने के लिये विवश करती रही । 1971 में श्रीलंका सरकार ने एक अधिनियम पारित करके भारतीय निवासियों पर कर लगाने की घोषणा की, जिसके अनुसार प्रत्येक अस्थाई निवासी को 500 रुपये प्रतिवर्ष कर देना पड़ेगा ।

1971 में श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके ने एक नया गणतन्त्रीय संविधान प्रस्तावित करने का निश्चय किया । इस समय तमिल दलों ने मिलकर संविधान सभा के सामने एक नौ सूत्रीय प्रस्ताव रखा । तमिलों की प्रस्ताविक माँगे निम्न प्रकार से थीं ।

(1) सिंहली धर्म को राजधर्म हटाकर एक धर्म निरपेक्ष संविधान की स्थापना करना ।

(2) तमिल भाषा को सरकारी भाषा का स्थान मिले ।

(3) सभी व्यक्तियों को विना किसी भेदभाव के नागरिक्ता प्रदान की जाये ।

(4) जाति प्रथा को समाप्त किया जाये ।

(5) शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाये ।

(6) तमिल जिलों में मुक्त व्यापार कायम किया जाये ।

(7) तमिल जिलों में सिंहलियों के आवास की योजना को रोका जाये ।

(8) विश्वविद्यालय प्रवेश नीति निष्पक्ष हो ।

(9) सभी व्यक्ति को मौलिक अधिकारों को दिया जाये ।

श्रीलंका सरकार ने तमिलों के प्रस्ताव को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि इससे देश की एकता कमजोर होगी । श्रीलंका ऐसा देश है जहाँ कुल जनसंख्या का आधा हिस्सा 18 से 25 आयुवर्ग का है तथा यह युवा वर्ग बहुतायत में बेरोजगार हो इन असन्तुष्ट सिंहली युवा वर्ग ने ही श्रीलंका में 1971 में क्रान्ति की थी तथा श्रीमती भंडारनायके के शासन को पलटने की कोशिष की । वेरोजगार सिंहली युवा वर्ग की असन्तुष्टता के कारण भी सिंहली एवं तमिलों के बीच प्रतिस्पर्धा और बढ़ती गयी ।

श्रीलंका ने सिंहलियों एवं तमिलों के मध्य असंतोष स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद ही में पनपता रहा, किन्तु उग्रवाद एवं अलगाववाद की औपचारिक घोषणा विभिन्न तमिल दलों द्वारा बादुकोडी सम्मेलन में की गयी । सभी तमिल दलों ने 1972 में मिलकर "तमिल यूनाइटेड फ्रन्ट" अर्थात् तमिल संयुक्त स्वतन्त्र मोर्चा गठित किया लेकिन कुछ समय बाद ही तमिलों ने पथक राज्य की माँग का निर्णय लिया । तमिल यूनाइटेड की परिगति तमिल यूनाइटेड लिवरेशन फ्रान्ट में हो गयी ।[1] इस प्रकार ईलम अर्थात् स्वतन्त्र तमिल राज्य की माँग की नीव 1971 में पड़ गयी थी तथा 1973 में यह मांग तमिलों की औपचारिक राजनैतिक विचार एवं लक्ष्य के रूप में परिग्रित हो गयी । 22 मई 1973 के दिन 20 लाख तमिल भाषी लोगों ने स्वतन्त्रा दिवस को राष्ट्रीय शोक दिवस के रूप में मनाया ।

1977 में सत्ता में आने के बाद राष्ट्रपति जयवर्धने ने कुछ सीमा तक तमिल मांगों को मान भी लिया था तथा तमिल समस्या के समाधान के लिये प्रयास भी किया था, लेकिन वे सभी तमिल संगठनों विशेषात: तुल्फ को भी सन्तुष्ट नहीं कर पाये । श्रीलंका सरकार ने तमिल समस्या को राजनैतिक समस्या न मानकर भारत के पंजाब एवं उत्तरी आयरलैण्ड की आंतकबादी समस्या के समान माना इसी कारण श्रीलंका की सरकार ने सदैव दमन चक्र चलाया । 1981 में पुन: तमिल विरोधी भीषण दंगें हुये, जिसके कारण तमिलों द्वारा की गयी आतंकबादी गतिविधियों में बृद्धि होने लगी । तमिल युवकों का अपने अदारवादी नेताओं से विश्वास समाप्त होने लगा, परिणाम स्वरूप श्रीलंका लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम तथा पीपुल्स लिवरेशन आर्गनाइजेशन कार तमिल ईलम, टेलो प्लोटस,ई0 पी0 आर0 एल0 एफ0 जैसे अनेक उग्रबादी गुटों का प्रार्दुभाव हुआ । ये तमिल गुट हिंसा की राजनीति में विश्वास रखते है । इन तमिल गुटों ने अपनी आत्मरक्षा एवं अधिकारों की प्राप्ति हेतु अनेक प्रकार की आंतकबादी गतिविधियाँ अपनायी । श्रीलंका सरकार ने इन आतंकवाद गतिविधियों के विरोध में मार्च 1982 में इस द्वीप के उत्तरी क्षेत्र में होने वाले आंतकबाद के लिये आंतकबाद विरोधी बिल पारित किया ।[2]

---

1. पी0 रामास्वामी "न्यू देलही एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ – 128
2. एशियन रिकॉर्डर अप्रैल 6 – 13, 1982
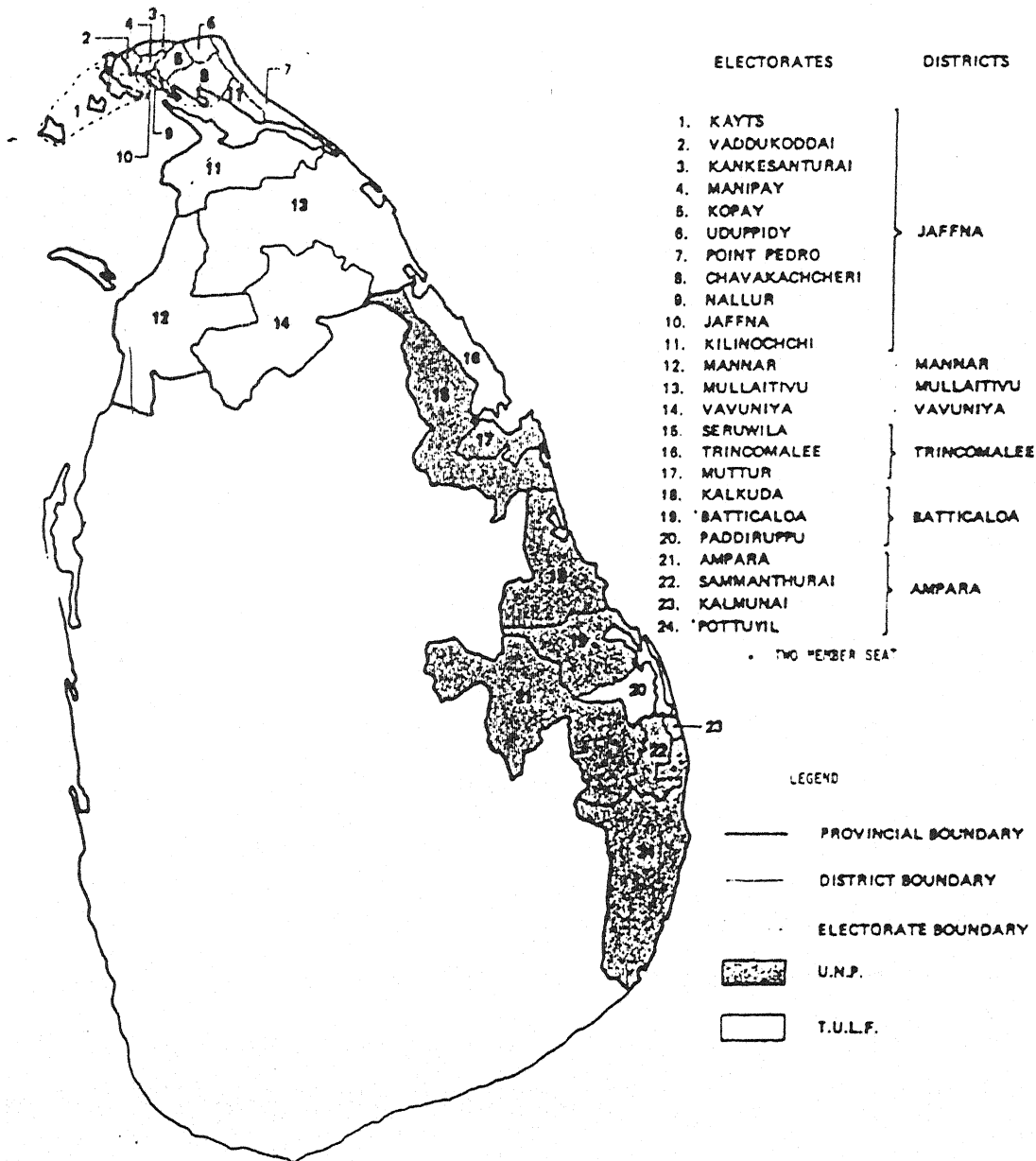
The shaded portion of this map of Sri Lanka shows that part of the island which Sri Lankan Tamils regard as the Tamil areas which should form an independent state—"Tamil Eelam"

जुलाई 1983 में एक बार श्रीलंका में सिंहलियों एवं तमिलों के मध्य भीषण दंगे हुये । जाफना में सेना ने घरो में घुस कर तमिलों की सरे आम हत्या की परिणामस्वरूप श्रीलंका से भारत आने वाले शरणार्थियों की संख्या में भारी मात्रा में बृति होने लगी । जुलाई 1983 के दंगों के कारण भारत में 30,000 व्यक्ति श्रीलंका से आये थे । श्रीलंका में जातीय संघर्ष बराबर चलता रहा तथा सेना तमिलजनों का सहार करती रही जिससे भारी मात्रा में श्रीलंका से शरणार्थी भारत आते रहे, जिसक कारण तमिल समस्या का रूप और भी विकृत होता गया । 1983 के दंगों में ही 470 व्यक्तियों की हत्या हुयी तथा आठ हजार से अधिक लूटमार एवं आगजनी की घटनाये हुयी थी । श्रीलंका में पीढ़ियों से रहने वाले भारतीय मूल के तमिलों एवं सिंहलियों के बीच फसाद पहले भी हुये थे तथा उनमें भीड़ का आक्रोश भी उभरा था, लेकिन जुलाई 1983 के दंगों में फौजियों ने जाफना में घरों में घुस-घुस कर लोगों को मारा था । जेल के अन्दर तमिल नजरवन्दों को सजा काट रहे सिंहली अपराधियों ने मौत के घाट उतार दिया, क्योंकि उनके पास घातक हथियार थे । अतः यह माना जा सकता है कि उनका आक्रमण योजनावद्ध था । कुछ लोगों का विचार था कि 1983 के दंगे तब प्रारम्भ हुये, जब तमिल उग्रपंथियों ने सेना के जत्थे पर हमला करके 13 फौजियों को मार दिया था । एक सूचना के अनुसार यह आक्रमण एक तरह का प्रतिशोध था, क्योंकि उसके पहले कुछ फौजियों ने घरों में घुस कर कुछ तमिल स्त्रियों की इज्जत लूट ली थी । औरतों की इज्जत लूटे जाने की घटना एक तत्कालीन उत्तेजना हो सकती है, लेकिन असंतोष के कारण कहीं और गहरे थे ।

जयवर्धने सरकार ने एक आदेश के माध्यम से सेना को यह अधिकार दे दिया था कि तमिल बाहुल्य क्षेत्र में किसी लाश की जाँच पडताल न की जाये । अल्पसंख्यक तमिल वर्ग के नेताओं ने इसका विरोध इस आधार पर किया कि इस प्रकार के अधिकार से तमिल लोग सैनिक ज्यादती के शिकार होंगे, लेकिन सरकार ने इस पर ध्यान नहीं दिया ।

भारत सरकार ने श्रीलंका सरकार के इन आदेशों के सन्दर्भ में साधारण सी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहा कि "इन आदेशों को अज्पसंख्यकों पर गलत प्रभाव पड़ेगा । इस साधारण सी प्रतिक्रिया को श्रीलंका के विदेशमन्त्री ने अपने देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप की संज्ञा दी ।

श्रीलंका की संसद में भारत के विरूद्ध विषवमन किया गया ।

भारतीय संसद में विभिन्न दलों के सदस्यों ने वहाँ की स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुये सरकार से उपयुक्त कदम उठाने की माँग की । भा0 क0 प0 के दीपेन घोष ने कहा कि "श्रीलंका में नर संहार वहाँ की सरकार के शह पर हुआ है, इसकी सीधे निन्दा की जानी चाहिये । इस प्रकार की निन्दा आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं है ।[1]

आर मोहन रंगम का विचार था "श्रीलंका की सरकार 35 वर्षों से तमिलजनों को निकालने की सुनियोजित कोशिश कर रही है, लेकिन सरकार ने अपनी जवान नहीं खोली है । कम से कम मानव अधिकार के नाम पर सरकार को आवाज उठानी चाहिये ।"[2] तमिलनाडु के मुखमन्त्री श्री एम0 जी0 रामचन्द्रन ने सभी दलों के प्रतिनिधियों के साथ प्रधानमन्त्री से यह माँग की "केन्द श्रीलंका में प्रभावी एवं सक्रिय हस्तक्षेप करे ।"[3]

भारत के विदेशमन्त्री श्री राव ने कहा कि "जब तक श्रीलंका में तनाव रहेगा, हिंसाजारी रहेगी तब तक सभी भारतवासी चिन्तत रहेंगे" भारत की इस चिन्ता को श्रीलंका ने सदैव सन्देह की दृष्टि से देखा ।"

श्रीलंका सरकार ने तमिल समस्या के मानवीय पहलू को सदैव नजरअन्दाज किया है । वह यह मानकर चलती रही कि उसकी दमनात्मक कार्यवाहियों से परेशान होकर तमिल घुटने टेक देंगे, लेकिन ऐसा नही हुआ वे और अधिक संगठित होते गये तथा उनकी आतंकवादी गतिविधियों में बृद्धि होती गयी । इसके साथ ही भारत में आने वाले शरणार्थियों की संख्या में भी लगातार बृद्धि होती रही । 1983 से 1987 तक 1, 33, 415 व्यक्ति श्रीलंका के शरणार्थी भारत आ चुके थे ।

1987 में तमिल उग्रवादी संगठन अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु अनेक उक्रामक गतिविधियाँ अपना रहे थे । श्रीलंका के निवर्तमान राष्ट्रपति जयवर्धने ने समस्या को सुलझाने के लिये

---

1. दिनमान अगस्त 1983
2. वही ।
3. वही ।

एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया, परन्तु वह सफल नहीं रहा । तमिलों पर दमानात्मक कार्यवाही करने हेतु श्रीलंका सरकार ने देश के उत्तरी प्रान्त का शेष भाग से सम्पर्क काट दिया और वहाँ जाने वाली सभी प्रकार की सामग्री पर रोक लगा दी । इन इलाकों में बसे लोग खाद्य सामग्री एवं अन्य जरूरी चीजों की कमी से परेशान होने लगे । उनकी इस परेशानी का प्रभाव भारत सरकार पर स्वाभाविक रूप से पड़ा । भारतीय तमिलों ने सरकार पर इस मामले में हस्तक्षेप के लिये दवाब डालना प्रारम्भ कर दिया ।

दूसरी ओर मई 1987 से ही भारत के कुछ महत्वपूर्ण अधिकारी श्रीलंका सरकार एवं तमिलों के बीच बातचीत एवं समझौते की सम्भावनाये खोजने में लगे थे । इनमें विदेश सचिव के० वी० एस० मेनन छापामारों से बातचीत बनाये हुये थे और श्रीलंका में उच्चायुक्त जे० एन० दीक्षित राष्ट्रपति जयवर्धने को समझौते के लिये राजी करने में लगे थे ।[1]

ये प्रयास जारी ही थे कि श्रीलंका की सेना ने तमिल बाहुल्य जाफना प्रान्त पर आक्रमण कर दिया । यह आक्रमण इतने व्यापक स्तर पर किया गया था कि श्रीलंका की सेना जाफना के तमिल छापामारों से मुक्त मानने लगी थी । हमले एवं नाकाबन्दी की तमिलनाडु एवं भारत के अन्य भागों में तीखी आलोचना हुयी । परिणामस्वरूप जाफना प्रान्त में तमिलों को सहायता भेजने के लिये उपाये सोचे जाने लगे । जनता के दवाब के कारण भारत सरकार को सैनिक संरक्षण के साथ जाफना में राहत सामग्री गिरानी पड़ी । इससे श्रीलंका सरकार सकते में आ गयी । कुछ समय के लिये दोनों देशों के सम्बन्ध बहुत नाजुक स्थिति में पहुँच गये, लेकिन फिर दोनों देशों ने समझौतावदिता की नीति अपनाकर राहत समग्री भेजने के सम्बन्ध में एक समझौता कर लिया । राहत सामग्री के साथ जाफना पहूँचे पहले जहाज के साथी भारतीय उच्चायोग के प्रधान सचिव श्री हरदीप पुरी भी जाफना गये । वहाँ उन्होंने वी० प्रभाकरन से मिलकर उन्हें श्रीलंका की सरकार के साथ बातचीत करने के लिये सहमत कर लिया ।[2]

---

1. नवभारत टाइम्स 30 जून 1990
2. वही ।

29 जुलाई 1987 को श्रीलंका के प्रधानमन्त्री सहित कुछ मंत्रियों तथा सिंहली उग्रपंथियों के विरोध एवं लिट्टे की गम्भीर आपत्तियों के बावजूद श्रीलंका के जातीय संघर्ष का समाधान करने की एक प्रक्रिया के अनुसार भारत एवं श्रीलंका के मध्य एक शान्ति समझौता सम्पन्न हुआ - जिसके अनुसार भारत ने समस्या समाधान की पूरी जिम्मेदारी ले ली तथा श्रीलंका में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने के लिये भारतीय शान्ति सेना श्रीलंका भेजी ।

भारत एवं श्रीलंका की सरकार ने इस समझौते को कुछ सीमा तक पूरा करने का प्रयास किया, लेकिन श्रीलंका सरकार की ढुलमुल नीति एवं तमिल उग्रबादी गुटों के अड़ियल रवैये के कारण समस्या का समाधान नहीं हो सकता है । वर्तमान समय में श्रीलंका में जातीय संघर्ष बराबर चल रहा है - तमिल उग्रवादी संगठन, सिंहली उग्रवादी संगठन एवं श्रीलंका की सेना तीनों ही एक दूसरे के प्रति हिंसात्मक गतिविधियों में लीन हैं, जिससे समस्या समाधान के निकट भविष्य में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिल रहे है ।

भारत श्रीलंका के मध्य तमिल समस्या वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की देन है, जिसका समाधान अनेक प्रयासों के बाद भी सम्भव नहीं हो सका है । प्रारम्भ में तमिल समस्या का मूल रूप यह रहा कि श्रीलंका का बहुसंख्यक सिंहली समुदाय एवं श्रीलंका सरकार भारतीय तमिलों को अपने देश से बाहर निकालना चाहते थे, जबकि भारतीय तमिल जो अनेक वर्षों से श्रीलंका में अपना जीवन यापन अच्छी तरह से कर रहे थे तथा वही के निवासी के रूप में रहने के बाद भारत वापस नहीं आना चाहते थे । श्रीलंका सरकार ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही भारतीय तमिलों की नागरिकता समाप्ति कर दी थी, लेकिन भारतीय तमिलों ने नागरिकता की समाप्ति होने पर भी भारत नहीं आना चाहा तथा वहीं अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये संघर्ष करते रहे । इसी कारण तमिल समस्या के समाधान में कोई विशेष सफलता नहीं मिली है ।

भारत एवं श्रीलंका के बीच इस समस्या के समाधान हेतु समय-समय पर अनेक समझौते किये गये । 1964 के समझौते के अनुसार 5,25,000 व्यक्तियों को भारत को नागरिकता प्रदान करनी थी, लेकिन बहुत कम व्यक्तियों ने भारत आना स्वीकार किया । इसके विपरीत श्रीलंका

की सरकार ने बहुत धीमी गति में व्यक्यिों को नागरिकता प्रदान की जिससे नागरिकता विहीन व्यक्तियों का अस्तित्व वना रहा तथा तमिल समस्या अनेक नये रूप लेती रही । 1980 से तमिल उग्रवादी संगठनों, श्रीलंका सरकार के हिंसात्मक कार्यवाहियों एवं भारत सरकार के हस्तक्षेप से इस समस्या ने और भी विकृत रूप ले लिया । आज भी श्रीलंका में सिंहली उग्रवादी संगठन, तमिल उग्रवादी संगठन एवं श्रीलंका की सेना के बीच हिंसात्मक गतिविधिया जारी है । सिंहली इस द्वीप से तमिलों को बाहर निकालने एवं उनको इसी प्रकार के अधिकार न देने के पक्ष में है, जबकि तमिल अपनी पृथक राज्य ईलम भी माँग की पूर्ति हेतु अक्रामक गतिविधियों में लिप्त हैं एव् समस्या अपने स्थाई रूप मे विद्यमान है ।

समस्या समाधान के लिये किये गये प्रयास

तमिल समस्या ने प्रारम्भ से ही भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है । तमिल समस्या से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में समय-समय पर उतार-चढ़ाव होता रहा है । प्रारम्भ से ही भारत एवं श्रीलंका इस समस्या का समाधान करने के लिये प्रयत्नशील रहे हैं । भारत सरकार ने समय-समय पर समझौतावादिता की नीति अपना कर इस समस्या का समाधान करने के अनेक प्रयास किये हैं ।

नेहरू जी एवं भारत के शीर्षस्थ राजनेताओं ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों की नागरिकता की समस्या का समाधान करने के प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे । दिसम्बर 1947 में ही नेहरू जी एवं सीलोन के प्रधानमन्त्री डी० एस० सेनानायके ने भारतीय मूल के व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में एक समझौते का निर्णय किया इस समझौते को पूर्ण एवं निश्चित रूप कोलम्बो अबलोकन के बाद दिया जाना था ।[1] मार्च 1948 को सेनानायके ने समझौते की परिस्थितियों में परिवर्तन किया । नेहरू जी ने भी कुछ परिवर्तनों के साथ सुझाव प्रस्तुत किये, लेकिन डी० एस० सेनानायके ने स्पष्ट कर दिया कि वे नेहरू जी द्वारा प्रस्तुत सुझावों को स्वीकार नहीं कर सकते ।[2] अतः प्रारम्भ से ही श्रीलंका सरकार की नीतियाँ नागरिकता कि सम्बन्ध में भारतीय भावनाओं के विपरीत थी तथा समस्या समाधान के लिये उसने अपनी रूचि कभी भी प्रदर्शित नहीं की ।

भारत एवं श्रीलंका के मध्य प्रवासी भारतवासियों की समस्याओं के समाधान के सन्दर्भ में निरन्तर वार्तायें चलती रही । जून 1953 में जब इंगलैण्ड की महरानी एलिजावेथ द्वितीय के सिंहासनारोध्या के लिये जब सभी राष्ट्रमंण्डल के देश सम्मिलित हुये तो परिस्थितियों का लाभ उठाकर नेहरू जी एवं सेनानायके ने इस समस्या पर विचार किया, परन्तु वार्ता असफल रही,

---

1. रामाराव "इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ - 70
2. वही ।

क्योंकि सेनानायके सभी प्रवासी भारतवासियों की अनिवार्य रूप से वापसी चाहते थे । नेहरू जी ने अनिवार्य वापसी के वक्तव्य को अस्वीकार कर दिया तथा उन्होंने यह इच्छा प्रदर्शित की कि सभी प्रवासियों का भारत एवं पाकिस्तान के नागरिकता अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकरण हो तथा श्रीलंका की स्थाई नागरिकता प्रदान करने की सीमा सात लाख बढ़ा दी जाये, लेकिन वे इस विचार से सहमत नहीं हुये ।[1]

जनवरी 1954 में श्रीलंका के प्रधानमन्त्री सर जॉन कोटलेवाला नेहरू जी के आमंत्रण पर नयी दिल्ली अपने प्रतिनिधि मण्डल के साथ आये । दिल्ली वार्ता सफल रही तथा दोनों प्रधानमंत्रियों के मध्य एक समझौता भारतीय प्रवासियों की नागरिकता के सम्बन्ध में हुआ । इस समझौते को नेहरू कोटलेवाला समझौते की संज्ञा दी जाती है । इस समझौते के अनुसार –

(1) सीलोन की नागरिकता प्राप्त करने के लिये पिछले दो वर्षों से पड़े प्रार्थना पत्रों पर तुरन्त निर्णय ।

(2) सीलोन के प्रवासी भारतवासियों का एक पृथक मतदाता रजिस्टर दस वर्ष की अवधि के लिये बनाया जायेगा तथा वे एक निश्चित संख्या में अपना प्रतिनिधित्व चुन सकेगें ।

(3) वे भारतीय प्रवासी जो सीलोन की नागरिकता चाहते है, उन्हें शीघ्र ही पंजीकरण करना स्वीकार किया जायेगा ।

(4) वे भारतीय प्रवासी जो भारतीय नागरिकता बनाये रखना चाहते है उन्हें सीलोन छोड़ कर तुरन्त भारत वापस आना पड़ेगा ।

इस समझौते के अन्त में यह आशा व्यक्त की गयी कि दोनों देश समय–समय पर इस समस्या पर विचार विमर्श करते रहेगें। इस समझौते में प्रवासियों भारतियों के लिये पृथक निर्वाचन रजिस्टर बनाने का निर्णय लिया गया । पृथ. निर्वाचन रजिस्टर से तात्पर्य था कि प्रवासी भारतियों

1. एम0 जी0 गुप्ता "इण्डियन फॉरेन पालिसी" पृष्ठ – 308

को श्रीलंका में समान अधिकार नही मिलना था जो मानवअधिकार के पूर्ण रूप से विरोध में था । दोनों देशो में इस समझौते का स्वागत हुआ, लेकिन प्रवासी भारतवासियों ने इनकी कड़ी आलोचना की थी । उनका आरोप था कि यह व्यवहारिक समझौता नहीं है । प्रवासी भारतियों का यह आरोप पूर्णतः सत्य था क्योकि श्रीलंका सरकार का प्रारम्भ से ही यह उद्देश था कि जहाँ तक सम्भव हो सके किसी न किसी रूप में प्रवासी भारतियों को देश छोड़ने के लिये बाध्य किया जाये । इस समझौते के बाद श्री कोटलेवाला ने एक वक्तव्य में कहा कि "इस समझौते का आधार बनाकर हम एक-एक भारतीय प्रवासी को सीलोन से बाहर निकालने में समर्थ हो सकेगें ।"[1]

1954 से 1955 के बीच एक वर्ष की अवधि में श्रीलंका की नागरिकता प्राप्त करने के इच्छुक भारतीय प्रवासियों के प्रार्थना पत्रों में से केवल 7,500 को स्वीकार किया गया । मार्च 1955 में श्रीलंका सरकार ने निवास अनुमति पत्र समाप्त कर दिये, जिन व्यक्तियों के वीसा की अवधि समाप्त हो गयी थी उन्हें देश से निर्वासित करने का निर्णय लिया गया तथा श्रीलंका सरकार ने बिना कोई रजिस्टर तैयार किये नागरिकों पर अपनी वैधता प्रमाणित करने का भार डाल दिया । इसका विरोध भारत सरकार एवं श्रीलंका की जनतन्त्रीय काँग्रेस द्वारा किया गया । श्री कोटलेवाला ने एक वक्तव्य में कहा "यह कदम श्रीलंका में अवैध प्रवेश रोकने के लिये आवश्यक है चाहे वह दिल्ली समझौते के अनुरूप हो अथवा नहीं श्रीलंका सरकार रजिस्टर तैयार करने के लिये वाध्य नहीं है ।"[2]

भारत सरकार ने श्रीलंका से निर्वासित व्यक्तियों को भारत में लेने से अस्वीकार कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप श्रीलंका ने भारत पर असहयोग कर आरोप लगाया । भारत श्रीलंका के बीच आरोप एवं प्रात्यारोपों के कारण समस्या समाधान की दिशा में कोई सफलता नहीं मिली ।

नेहरू जी अपने शासनकाल में प्रवासी भारतियों की समस्या समाधान के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहे तथा श्री भंडारनायके के शासनकाल में भारत - श्रीलंका सम्बन्ध उच्च स्तर के रहे,

---

1. डा० एम० पी० राय "भारत एवं विश्व राजनीति" पृष्ठ -
2. एम० के० श्रीवास्तव "भारत की विदेश नीति"

लेकिन फिर भी प्रवासी भारतियों की समस्या समाधान की ओर कोई महत्वपूर्ण प्रयास सम्भव नहीं हो पाया ।

नेहरू जी के उपरान्त श्री लाल बहादुर शास्त्री ने भारत के प्रधानमन्त्री का पद गृहण किया । शास्त्री जी ने भी अपने शासनकाल में प्रवासी भारतियों की समस्या समाधान के लिये प्रयास प्रारम्भ कर दिये । अक्टूबर 1964 में भारत एवं श्रीलंका के अथक प्रयासों के बाद दोनों देशों के मध्य तमिल समस्या के सन्दर्भ में एक समझौता सम्पन्न हुआ । यह समझौता दोनों देशों द्वारा अब तक तमिल समस्या के सन्दर्भ में किये गये प्रयासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास था । 1964 में श्री लाल बहादुर शास्त्री ने भारत के प्रधानमन्त्री का पद गृहण करने के साथ ही अपने पड़ोसी देशों से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापि करने का प्रयास किया । श्रीलंका में इस समय प्रवासी भारतवासियों को योजनाबद्ध तरीकों से भगाया जा रहा था । तमिल समस्या को लेकर शास्त्री जी एवं श्रीमती भंडारनायके के मध्य लम्बा पत्र व्यवहार चला, जिसके परिणामस्वरूप 1964 का समझौता सम्पन्न हो सका । इस समझौते को शास्त्री सिरामाओं समझौते की संज्ञा दी जाती है । यह समझौता उनके कठनाइयों के बाद सम्भव हो सका था । दोनों ही प्रधानमंत्रियों के दृढ़ निश्चय एवं अनेक प्रयासों के बाद इस समझौते रूपी परिणाम की प्राप्ति हो पायी थी ।[1] 1964 के शास्त्री सिरामाओं समझौते के अनुसार –

(1) श्रीलंका में रहने वाले भारतीय प्रवासी जिनकी संख्या लगभग 9,75,000 है । उनमें से 3,00,000 को सीलोन की नागरिकता प्रदान की जायेगी । 5,25,000 को भारत की नागरिकता प्रदान की जायेगी । 1,25,000 व्यक्तियों की नागरिकता का निणाय बाद में लिया जायगा ।

(2) भारत लौटने वाले व्यक्तियों को सीलोन की सरकार पूर्ण सुविधा प्रदान करेगी, लेकिन धन भेजने की सुविधा नहीं दी जायेगी ।

---

1. ललित कुमार "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ – 47

(3) भारत लौटने वाले व्यक्ति अपने साथ चार हजार रुपये तक का सामान ले जा सकेगें ।

(4) भारत लौटने का कार्य प्रतिवर्ष योजनाबद्ध रूप में 15 वर्षों की अवधि में पूरा किया जायेगा । प्रत्यावर्तन श्रेणी के लोगों को भी सीलोन के नागरिकों के समान अधिकार प्राप्त होगें ।

इस समझौते पर भारत एवं श्रीलंका दोनों देशों में मिली-जुली प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी, लेकिन अधिकांश लोग यह स्वीकार करते थे कि यह एक उदार समझौता था तथा वर्षों से चली आ रही समस्या का एक हल था । भारतीय प्रवासी एवं भारत की जनता इस समझौते से बहुत खुश नहीं थे, क्योंकि 1,25,000 व्यक्तियों के भाग्य को भविष्य पर छोड़ दिया गया था । 15 वर्ष की अवधि एक लम्बी अवधि थी । इस समझौते में मानवीय भावनाओं का ध्यान न रखकर अपनी सुविधा एवं इच्छानुसार निर्जीव वस्तु की भाँति बटवारा किया था । तीन लाख, पाँच लाख एवं एक लाख की संख्या क्यो एवं कैसे निर्धारित की गयी, इसका कोई तर्क सम्मत आधार नहीं था । भारत के विपक्षी दल के नेता श्री जे0 वी0 कृपलानी तथा सी0 राजगोपालाचारी ने इस समझौते को अनिश्चतताओं से युक्त माना । जे0 कृपलानी ने कहा कि यह समझौता भारत सरकार के पक्ष में नही है ।[1] भारतीय जनसंघ के एक नेता ने भारत को शरणार्थियों के राष्ट्र की संज्ञा दी । उनका मत था कि इस समझौते में मानवीय तत्वों की पूर्ण उपेक्षा की गयी है । जिन व्यक्तियों का भविष्य निर्धारण करना था, उनसे विचार विमर्श करना चाहिये था ।[2]

1964 के समझौते की अनेक आलोचनाओं के बाद भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि 1948 से चली आ रही तमिल समस्या के समाधान की ओर यह समझौता दोनों देशों का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास था ।

---

1. नेशनल हेरल्ड, 1 नवम्बर, 1964
2. इण्डिया लोक सभा डिवेड्स, वाल्यूम 35, 1964 काल्स - 1266 - 73

10 नवम्बर 1964 को श्रीमती भंडारनायके ने घोषित किया कि जिन व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता प्रदान की जायेगी उन्हें प्रथक निर्वाचक रजिस्टर में रखा जायेगा ।[1] उन्होंने कहा कि प्रथक निर्वाचक रजिस्टर में भारतीय प्रवासियों को रखने से उनके राजनैतिक हितों के लिये उनके प्रतिनिधियों को चुनने में सरलता रहेगी ।

1954 के नेहरू कोटलेवाला समझौते में प्रथक निर्वाचन विधि की व्यवस्था थी, जिसे श्री भंडारनायके ने 1959 में संशोधन करके हटाया था तथा लगभग पचास हजार भारतीय मूल के व्यक्तियों को सामान्य निर्वाचक रजिस्टर में रखा था ।[2]

समझौते के कुछ समय बाद ही श्री डड्ले सेनानायके श्रीलंका के प्रधानमंत्री बने । उन्होंने इस समझौते पर निम्न विषय उठाये, जिन पर वे भारत सरकार से बात करना चाहते थे (1) पंजीकृत नागरिकों के लिये प्रथक निर्वाचक रजिस्टर का प्रश्न (2) सीलोन के द्वारा रोजगार बिल पर नियन्त्रण तथा (3) अनिवार्य प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त ।[3]

5 नवम्बर 1965 को सीलोन के राज्यमन्त्री श्री जयवर्धने ने यह घोषित किया अभी सरकार भारतीय मूल के व्यक्तियों के लिय प्रथक निर्वाचक रजिस्टर नहीं बना रही है । इस विषय को भविष्य में निर्धारित किया जायेगा, जब यह समझौता लागू किया जायेगा । इस प्रकार सेनानायके ने समझौते को टाल दिया ।

7 दिसम्बर 1966 के सीलोन के प्रधानमंत्री श्री डड्ले सेनानायके ने 1964 के समझौते को लागू करने के लिये एक अधिनियम संसद में प्रस्तुत किया इस अधिनियम के अनुसार भारतीय मूल के व्यक्ति जो सीलोन की नागरिकता प्राप्त करना चाहते है, वे एक निम्न समय के अन्दर आवेदन करें । नागकिता प्रदान करने या न करने का अधिकार कार्यपालिका को होगा । सम्बन्धित मन्त्री का निर्णय अन्तिम निर्णय होगा ।[4]

---

1. ललित कुमार "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 57
2. एशिया रिकॉर्डर, वाल्यूम 10 न0 50, पृष्ठ - 6185
3. एशियन रिकार्ड, मई 14 - 20, 1969
4. ललित कुमार "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 69

1964 के समझौते में यह तय किया गया कि श्रीलंका की नागरिकता प्राप्त करने की अन्तिम तिथि 30 अप्रैल 1970 है । प्रत्यावर्तन के सन्दर्भ में श्री डड्ले सेनानायके का मत था कि दोनों देशों की सरकारों को आकड़ों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये । समझौते के प्रथम दो वर्षों में इस सम्बन्ध में कोई समस्या नहीं आयी, क्योंकि 60,000 व्यक्ति श्रीलंका छोड़ने के इच्छुक थे । शास्त्री जी ने अपने शासनकाल में प्रवासी भारतीयों की समस्या समाधान के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास किया था । इस समझौते की यद्यपि अनेक आधारों पर आलोचना की गयी थी, लेकिन फिर भी यह समझौता 1948 से चली आ रही समस्या समाधान की ओर महत्वपूर्ण प्रयास था ।

शास्त्री जी के निधन के बाद श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने भारत के प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण किया । इन्दिरा जी ने अपने शासनकाल के प्रथम चरण में श्रीलंका के साथ आर्थिक एवं राजनैतिक सम्बन्धों में वृद्धि करने के साथ ही प्रवासी भारतीयों की समस्या समाधान की ओर निरन्तर प्रयत्न किया । इन्दिरा जी ने समय-समय पर श्रीलंका सरकार से शास्त्री - सिरामाओं समझौते को लागू करने का आग्रह किया, लेकिन श्रीलंका सरकार ने काफी धीमी प्रक्रिया द्वारा प्रवासी भारतीयों को नागरिकता प्रदान की तथा समझौते की शर्तों को पूर्ण करने में अनेक अड़चनों उत्पन्न की ।

4 मार्च 1968 को भारत एवं सीलोन की संयुक्त समिति में भारत - सीलोन समझौता 1964 की प्रगति का अवलोकन कोलम्बों में हुआ, जिसमें यह ज्ञात हुआ कि 30 अक्टूबर 1964 तथा 29 फरवरी 1968 के बीच 19,207 व्यक्ति भारतीय नागरिक के रूप में पंजीकृत हुये है तथा 1967 के नागरिकता अधिनियम के अनुसार भारतीय मूल के 80 व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता प्रदान की गयी थी ।[1] भारतीय मूल के व्यक्ति जो भारत आना चाहते थे उनका भारत आगमन आर्थिक अड़चनों के कारण लगभग रूका हुआ था, क्योंकि भारतीयों को अपनी सम्पति भारत ले जाने के लिये विदेशी मुद्रा प्रमाण पत्र प्राप्त करना था ।

---

1. एशियन रिकॉर्डर मई 6 - 12, 1968 पृष्ठ - 8569

नवम्बर 1968 में सेनानायके ने अपनी भारत यात्रा के दौरान अवगत कराया कि श्रीलंका की सरकार ने वहाँ के राज्यहीन भारतियों को आर्थिक परेशानियों से मुक्त करने का निर्णय लिया है । उन्होंने कहा कि 1964 के समझौते के अनुसार जिन व्यक्तियों ने भारत की नागरिकता प्राप्त की है उन्हे 75,000 रुपये की सम्पति भारत ले जाने का अधिकार है ।[1]

1969 तक भारत ने 37,500 व्यक्तियों को नागरिक्ता प्रदान कर दी थी, जबकि श्रीलंका ने अब तक केवल 450 व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान की । श्रीलंका की नागरिकता प्रदान करने की गति बहुत धीमी थी ।[2]

1970 में श्रीमती भंडारनायके ने पुन: श्रीलंका के प्रधानमंत्री का पद गृहण किया । 22 फरवरी 1971 को श्रीमती भंडारनायके ने एक अधिनियम पारित करके भारतीय प्रवासियों पर कर लगाने की घोषणा की, जिसके अनुसार प्रत्येक भारतीय को 500 रुपया प्रतिवर्ष कर देना पड़ेगा इस बीच भारत एवं श्रीलंका के बीच जब वार्ता हुयी, तब प्रवासी भारतवासियों की वापसी के प्रश्न पर सहमति बनी रही । श्रीलंका सरकार द्वारा नागरिकता प्रदान करने की प्रक्रिया तथा भारत प्रत्यावर्तित होने की प्रक्रिया धीमी रही । 1971 तक श्रीलंका सरकार ने 18,150 व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान की थी तथा 36,000 व्यक्ति भारत आ चुके थे । नागरिकता प्रदान करने का अनुपात 7 : 4 था । भारतीय उच्चायुक्त के अनुसार अब तक 94,000 व्यक्तियों को भारतीय नागरिक के रूप में स्वीकार किया गया था ।

22 मई 1972 को श्रीलंका में नया संविधान लागू किया गया, इस संविधान का तुल्फ ने विरोध किया । तुल्फ के मतानुसार नये संविधान में सभी प्रजातीय समूहों के लिये मौलिक अधिकार एवं समानता का समावेश नहीं है ।[3]

---

1. दिनमान दिसम्बर 1968
2. गुप्ता एम0 सी0 "इण्डियन फॉरेन पॉलिसी" पृष्ठ – 314
3. वाइनर कोलो "एक्रास द पाक स्टेट" पृष्ठ – 156

अप्रैल 1973 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी श्रीलंका की यात्रा पर गयी । इस यात्रा के दौरान यह निश्चय किया गया कि भारत समस्त 5,25,000 व्यक्तियों को ले लेगा तथा 1964 के समझौते की अवधि 30 अक्टूबर 1979 से बढ़ाकर 1982 कर दी जायेगी । इसके साथ ही दोनों प्रधानमंत्रियों ने बचे हुये लोगों के विषय में अति शीघ्र ही निर्णय लेने का निश्चय किया ।[1]

22 जनवरी से 29 जनवरी 1974 को श्रीमती भंडारनायेके की भारत यात्रा के मध्य दोनों प्रधानमंत्रियों ने यह तय किया कि 1964 के समझौते के अन्तर्गत जिन 1,50,000 व्यक्तियों के भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय नहीं लिया गया था, उनमे 75,000 व्यक्तियों को भारत तथा 75,000 को श्रीलंका ले लेगा ।[2] दोनों देशों के प्रधानमत्रियों ने इस बात पर पूर्ण संतोष व्यक्त किया कि दोनों देशों ने श्रीलंका में तमिल समस्या का समाधान पूर्ण रूप से कर लिया है। 1975 तक 89,993 व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता प्रदान की गयी तथा 1973 से 75 तक 33,000, 36,000 तथा 18,440 भारतीय प्रवासियों को भारत भेजा गया तथा भारत एवं श्रीलंका दोनों के द्वारा नागतिकता विहीन व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने की प्रक्रिया जारी रही।

1977 में जयवर्धने ने श्रीलंका का शासन संचालन करने के साथ कुछ सीमा तक तमिल समस्या का ईमानदारी से समाधान करने का प्रयास किया उन्होंने सर्वदलीय सम्मेलन आमंत्रित करके तमिल समस्या का समाधान करने की कोशिश की । 1978 में श्रीलंका में नया संविधान गृहण किया गया, जिसके अनुसार नागरिकता विहीन व्यक्तियों को श्रीलंका में दस वर्षों तक मौलिक अधिकार प्रदान किये जायेगें इसके बाद या तो उन्हें भारत जाना होगा अथवा 1964 एवं 1974 के समझौते के अनुसार श्रीलंका की नागरिकता प्रदान की जायेगी ।

जयवर्धने सरकार ने तमिल समस्या को राजनैतिक समस्या न मानकर सदैव एक आतंकवादी समस्या माना था । इसी विचार को रखकर राष्ट्रपति जयवर्धने ने 1979 से लेकर 1987

1. गुप्ता एम० सी० "इण्डियन फॉरेन पॉलिसी", पृष्ठ – 315
2. एशियन रिकार्ड फरवरी 19 – 24, 1974 पृष्ठ – 11862

तक निरन्तर दमनचक्र चलाया था जिसके परिणामस्वरूप श्रीलंका में 1977, 1981, 1983 से लेकर अब तक बराबर हिंसात्मक कार्यवाहियाँ जारी रही । श्रीलंका सरकार ने 1979 में आतंकवादी विरोधी अधिनियम पारित कर दिया, जिसके अनुसार तमिलों पर सेना द्वारा नृशंश अत्याचार किये गये । 1979 में श्री देसाई ने श्रीलंका की यात्रा की तथा प्रवासी भारतीयों की समस्याओं पर स्वयं अवलोकन किया । 1981 में एक बार फिर तमिल विरोधी भीषण दंगें हुये इसके परिणामस्वरूप अनेक तमिल आतंकवादी गुटों का प्रादुर्भाव हुआ ।

30 अक्टूबर 1981 को 1964 में शास्त्री-सिरामाउ समझौते की अवधि समाप्त हो गयी । श्रीमती गाँधी ने कहा कि "ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है, जिसके कारण सिरामाओ-शास्त्री समझौते को नया रूप दिया जाये।" उन्होंने कहा कि "भारत उन व्यक्तियों के भारत प्रत्यावर्तन के लिये सहमत नहीं होगा जो भारत नहीं आना चाहिते । अब भारत एवं श्रीलंका के बीच तमिल समस्या के सन्दर्भ में इस बात पर विचार विमर्श किया जायेगा कि भारतीय प्रवासी श्रीलंका के नागरिक के रूप में वहाँ रहेंगे ।"[1] इसके विपरीत श्रीलंका के विदेशमन्त्री ने कहा कि "हम भारत सरकार के इस तर्क से सहमत नहीं है कि अब दोनों देशों के मध्य सिरामाओ-शास्त्री समझौता नहीं लागू होगा ।" उन्होंने कहा "कि जब तक नागरिकता का प्रश्न पूरी तरह से सुलझ नहीं जाता, तब तक यह समझौता प्रभावी रहेगा ।"[2]

1981 तक 2,80,000 व्यक्ति भारत प्रत्यावर्तित हो चुके थे तथा 1,60,000 व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता प्रदान हो चुकी थी । श्रीलंका में इस समय 80 हजार ऐसे व्यक्ति थे जिनके पार-पत्र भारत के लिये बन चुके थे, लेनि प्रोवीडेन्ट फन्ड आदि के भुगतान के कारण वे भारत नहीं आये थे ।

श्रीलंका में इस समय तमिल विरोधी भीषण दंगे हो रहे थे अनेक निर्दोश तमिलों की हत्या कर दी गयी तथा उनके व्यवसायिक प्रतिष्ठानों को लूट लिया गया था । तमिलों पर हो

---

1. एशियन रिकाडर दिसम्बर 24 - 31, 1981 पृष्ठ - 16378

2. वही ।

TABLE

Number of persons repatriated and given Sri Lanka citizenship

Year	Repatriated (Indian figures)	Repatriated (Sri Lankan figures)	Repatriated Increase added	Natural (Ind.Fig.) total	Granted Sri L. Citizenship (Sri L Fig.)
1964		14			0
1965		512			0
1966		1,910			0
1967		2,648			0
1968		2,123			161
1969		5,284			2,939
1970		8,733			2,468
1971		21,867			13,696
1972		27,575			16,107
1973		33,175			18,960
1964-73	91,594	103,841	14,199	105,799	59,331
1974	30,930	35,141	9,112	40,042	20,074
1975	34,942	18,511	10,709	45,651	10,591
1976	33,344	33,321	12,579	45,923	19,034
1977	28,388	28,388	11,430	39,818	16,220
1978	20,274	20,281	9,156	29,430	11,594
1964-78	239,472	239,483	67,185	306,663	136,844
1979	15,780		7,987	23,767	
1980	12,169		6,701	18,870	
1981 (30/6)	278,742		84,535	363,281	
1964-81	278,742		84,535	363,281	

Sources : Department of Rehabilitation, Government of India, New Delhi. Department for the Registration Persons of Indian Origin, Government of Sri Lanka, Colombo.

रहे अत्याचारों पर प्रारम्भ भारत में कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तथा श्रीलंका के साथ सामान्य सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास किया । श्रीलंका के राष्ट्रपति श्री जयवर्धने ने भारतीय राष्ट्रपति श्री रेड्डी की यात्रा के दौरान प्रवासी भारतियों की समस्या समाधान के सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत करते हुये कहा कि "भारत को उन सभी व्यक्तियों को ले लेना चाहिये जिन्होंने अभी श्रीलंका की नागरिकता नहीं प्राप्त की है ।" उन्होंने कहा कि "भारत यदि एक निश्चित मात्रा से अधिक व्यक्तियों को भारत की नागरिकता नहीं प्रदान कर सकता है, तो अन्य व्यक्तियों को हमे श्रीलंका के नागरिक के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा । हम नागरिकता विहीन लोगों को श्रीलंका में नहीं रख सकते ।"[1] वास्तव में श्री जयवर्धने की नीतियाँ तमिल समस्या के समाधान के प्रति इमानदारी पूर्ण नहीं थी ।

श्रीलंका सरकार ने तमिलों के प्रति दमनात्मक नीति अपनाने के लिये मार्च 1982 में श्रीलंका के उत्तरी क्षेत्र में होने वाले आंतकवाद के लिये आतंकवाद विरोधी बिल पारित किया गया । श्रीलंका सरकार तमिलों की बढ़ती हुयी आतंकवादी गतिविधियों के लिये भारत को दोषी ठहरा रही थी । श्रीलंका के तत्कालीन प्राधानमन्त्री श्री प्रेमदास ने भारत पर आरोप लगाते हुये कहा कि "तमिल आतंकवादियों को दक्षिण भारत में प्रशिक्षण दिया जा रहा है । श्रीलंका इसे अब लम्बे समय तक नहीं सह सकता । भारत अब श्रीलंका को और अधिक परेशान नहीं कर सकता ।"[2] इस समय भारत एवं श्रीलंका के बीच काफी तनाव उत्पन्न हो गया था ।

श्रीलंका में आतंकवादी गतिविधियाँ निरन्तर जारी रहीं । अप्रैल 1983 में श्रीलंका की सेना ने जाफना में गोलावारी कर दी, जिसमें अनेक तमिल मारे गये । इस समय भारत की प्रधानमन्त्री ने भारत के विदेशमंत्री को कोलम्बों भेजने का प्रस्ताव रखा जिसे जयवर्धने ने सहर्ष स्वीकार कर लिया । दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने इस समस्या पर विचार-विमर्श किया तथा श्रीलंका सरकार ने यह निर्णय लिया कि श्रीलंका उन व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करेगा, जिन्होंने इसके लिये आवेदन किया है । जयवर्धने ने श्री राव से कहा कि "मै एक बार में इस समस्या का समाधान हमेशा

---

1. हिन्दुस्तान टाइम्स, 2 फरवरी 1982
2. द हिन्दू 2 मार्च 1983

के लिये करने जा रहा हूँ ।[1] श्री राव के दिल्ली पहुँने पर भारत सरकार ने कोलम्बो के आग्रह पर नौ सेना का एक जहाज राहत सामग्री के साथ श्रीलंका भेज दिया ।

श्रीलंका में हिंसा का तांडव लगातार जारी रहा तथा भारत द्वारा इन दंगों पर सदैव चिन्ता व्यक्त की जाती रही । 1983 के दंगों में भारत ने पहली बार सिंहली एवं तमिलों के झगड़ों में हस्तक्षेप किया, क्योंकि भारतीय मूल के व्यक्ति एवं भारतीय पासपोर्ट धारक इन दंगों से प्रभावित हो रहे थे । इसीलिये भारत के प्रधानमंत्री ने स्थिति का अवलोकन करने के लिये अपने विदेशमंत्री को श्रीलंका भेजा । भारतीय विदेशमन्त्री को कोलम्बो भेजने का प्रस्ताव श्री जयवर्धने ने सहर्ष स्वीकार किया था, लेकिन श्री राव के वापस आने के बाद श्री जयवर्धने ने एक विज्ञप्ति में कहा था कि "क्या भारत प्रत्येक उस देश में अपने विदेशमंत्री भेजेगा या भेजता है, जहाँ भारतीय मूल के निवासी संकटग्रस्त होते है ।"[2] श्रीलंका की नीतियाँ स्पष्ट रूप से भारत विरोधी थी ।

जुलाई 1983 में जयवर्धने के भारत आगमन पर श्रीमती गाँधी ने एक बार फिर इस बात पर बल दिया कि "भारत किसी प्रकार की हिंसा का विरोधी है ।" इस समय तक दोनों देशों में मन-मुटाव बहुत बढ़ गया था । दोनों ही देशों ने आपसी वार्ता के माध्यम से इस कटुता को कम करने का प्रयास किया । भारत सरकार ने श्रीलंका की तमिल समस्या को सदैव भारत से भी सम्बन्धित माना था । श्रीमती गाँधी ने एक विज्ञप्ति में कहा कि "तमिल समस्या के सन्दर्भ में भारत दूसरे देशों के समान तटस्थ नहीं रह सकता, क्योंकि इसका सम्बन्ध भारत एवं श्रीलंका दोनों देशों से है ।[2]

नवम्बर 1983 में तमिल सांसदों द्वारा पृथक राज्य की माँग के आधार पर श्रीलंका की राष्ट्रय सभा का तीन महीने तक बहिस्कार करने पर अपनी संसद सदस्यता को त्यागना पड़ा । श्रीमती गाँधी ने जी0 पार्थसारथी को अपना विशेष दूत बनाकर इस समस्या का समाधान करना चाहा, लेकिन श्री जयवर्धने ने उन्हें अलग रहने की सलाह दी । श्रीलंका सरकार का मत था कि

---

1. दिनमान 7 - 13 अगस्त, 1983

2. द हिन्दू 2 अगस्त, 1983

श्रीलंका में तमिलों द्वारा की गयी आतंकवादी गतिविधियों के पीछे भारत सरकार का हाथ है ।

जुलाई 1983 के दंगों के कारण भारत में लगभग 30,000 शरणार्थी श्रीलंका से आ गये थे । जयवर्धने सरकार ने एक आदेश के माध्यम से श्रीलंका की सेना को यह अधिकार दे दिया था कि तमिल बहुमत वाले क्षेत्र में किसी लाश की जाँच न की जाये । अल्पसंख्यक तमिल वर्ग ने इस आदेश का विरोध इस आधार पर किया कि इसके आधार पर तमिल लोग सेना की ज्यादती के शिकार होगें, लेकिन सरकार ने तमिलों की माँग पर ध्यान नहीं दिया । भारत सरकार ने इन आदेशों के सन्दर्भ में साधारण सी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहा कि "इन ओदशों का अल्पसंख्यकों पर गलत प्रभाव पड़ेगा ।" इस साधारण सी प्रतिक्रिया को श्रीलंका के विदेश मंत्री ने अपने देश के आन्तिरिक विषयों में हस्तक्षेप की संज्ञा दी । श्रीलंका की सेना अपनी सरकार के आदेशों का पालन कर रही थी, लेकिन सेना के अधिकारियों ने राजनैतिक कर्णधारी को यह सुझाव दिया कि वे समस्या का राजनैतिक समाधान करने की कोशिष करें ।

जनवरी 1984 में जयवर्धने ने प्रस्ताव रखा कि यदि तुल्फ अलगाव की नीति त्याग देगा तो उत्तरी एवं पूर्वी जिलों को मिलाकर एक प्रान्त बना दिया जायेगा, जिसके पास एक विधायी परिषद एवं मन्त्रीपरिषद होगी । यह प्रान्त श्रीलंका का एक अभिन्न अंग होगा तथा त्रिकोमाली बन्दरगाह सरकार के हाथ में ही होगा । यह समझौता तो हो गया, लेकिन इससे तुल्फ की ही उग्रवादी तत्व सन्तुष्ट नहीं हुये, क्योंकि परिषद का मेयर राष्ट्रपति का नामांकि व्यक्ति होता था तथा मन्त्रिपरिषद के नीचे कार्य करने वाले व्यक्ति केन्द्र सरकार के ही व्यक्ति थे, जिनमे से सभी सिंहली व्यक्तियों की ही नियुक्ति की गयी थी ।

सितम्बर 1984 में जयवर्धने सरकार ने पुनः तमिल समस्या के समाधान हेतु कुछ प्रस्ताव रखे जिसक अन्तर्गत श्रीलंका की संसद में सभी जातियों के लोगों को प्रतिनिधित्व देने के लिये द्वितीय सदन की स्थापना का प्रस्ताव रखा गया था । द्वितीय सदन के पास प्रजातीय विवादों का समाधान करने का भी अधिकार होगा । तमिलों द्वारा इन प्रस्तावों की आलोचना की गयी थी, क्योंकि यह प्रस्ताव बिल्कुल संक्षिप्त थे ।

जून 1985 में श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने भारत आये तथा दोनों देशों के शासनाध्यक्षों ने प्रजातीय समस्या के राजनैतिक समाधान पर सहमति प्रकट की तथा यह निश्चय किया गया कि समस्या का समाधान संगठित एवं सुदृढ़ श्रीलंका के अन्तर्गत किया जायेगा । भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने राष्ट्रपति जयवर्धने से स्पष्ट रूप से कहा कि "भारत किसी भी प्रकार की हिंसा का विरोधी है एवं भारत तमिल समस्या के राजनैतिक समाधान के पक्ष में है ।"[1] श्रीलंका के राष्ट्रपति ने उत्तरी - पूर्वी प्रान्त से सेना की उपस्थिति के सन्दर्भ में कहा कि "वहाँ पर सेना केवल आतंकवादियों की हिंसात्मक कार्यवाहियों के कारण है । यदि वहाँ किसी प्रकार की हिंसा नहीं होगी तो वहाँ से सेना बुला ली जायेगी ।"[2]

13 जुलाई 1985 को भूटान की राजधानी थिम्पू में श्रीलंका के राष्ट्रपति के भाई हेक्टर जयवर्धने के नेतृत्व में दस सदाचीय प्रतिनिधि मंडल एवं तमिल मुक्ति संगठनों के सदस्यों एवं भारत के पाँच अधिकारियों के बीच प्रजातीय समस्या के सन्दर्भ में विचार विमर्श हुआ । इस वार्ता की थिम्पू वार्ता की संज्ञा दी जाती है । थिम्पू वार्ता से भी इस समस्या के समाधान के लिये कोई निष्कर्ष नहीं निकला । 12 अगस्त 1985 को थिम्पू के द्वितीय सम्मेलन में भी तमिल समस्या के सन्दर्भ में विचार - विमर्श हुआ । इस वार्ता में तमिलों के सभी संगठनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । श्री हेक्टर जयवर्धने ने तमिलों की प्रथक राज्य की माँग सहित कई मांगों को अस्वीकृत कर दिया, उन्होंने कहा कि "श्रीलंका की सरकार ने पहले ही सभी नागरिकता विहीन लोगों को नागरिकता प्रदान करने का निर्णय लिया है ।"[3]

श्रीलंका में हिंसात्मक गतिविधियाँ निरन्तर जारी रही । श्रीलंका की सेना तमिल छापामारों का दमन करने के लिये नये - नये हथियारों का प्रयोग कर रहीं थी तथा तमिल छापामार भी इसका उत्तर अपनी शक्ति के अनुसार दे रहे थे । भारत आने वाले शरणार्थियों की संख्या में

1. नागपुर टाइम्स 15 जून, 1985
2. टाइम्स ऑफ इण्डिया 4 जून, 1985
3. रविकान्त दुबे "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 126

निरन्तर वृद्धि हो रही थी । दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में राजीव गाँधी ने श्रीलंका सरकार को चेतावनी देते हुये, कहा कि भारत सरकार अब और पाक की खाड़ी से आने वाले शरणार्थियों को नहीं ले सकती ।[1]

1986 में श्रीलंका सरकार ने तमिल समस्या के समाधान के लिये नये प्रस्ताव रखे, लेकिन ये नये प्रस्ताव न तो उदारवादी तमिल गुटों को और न ही उग्रवादी तमिलों को मान्य थे । तमिल उग्रवादी गुटों की माँगों में उत्तरी पूर्वी प्रान्तों को मिलाकर पृथक राज्य की प्रमुख थी , जिसकी श्रीलंका की सरकार के प्रस्तावों में कोई व्यवस्था नहीं । तुल्फ के नेताओं ने श्रीलंका की सरकार को स्पष्ट रूप में कहा था कि यदि उत्तरी एवं पूर्वी प्रान्तों को नहीं मिलाया गया तो जातीय समस्या का समाधान नहीं हो सकता ।

जनवरी 1986 में भारत एवं श्रीलंका ने नागरिकता विहीन लोगों की समस्या के समाधान हेतु सहमति प्रकट की । कोलम्बों में दोनों देशों के प्रतिनिधियों द्वारा यह निर्णय लिया गया कि भारत उन सभी व्यक्तियों को ले लेगा जिन्होंने 30 अक्टूबर 1981 से पूर्व भारतीय नागरिकता के लिये प्रतिवेदन किया है तथा श्रीलंका सरकार अन्य बचे हुये भारतीय मूल के व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के सम्बन्ध में कार्यवाही करेगी । दिसम्बर 1986 में दक्षेस के द्वितीय शिखर सम्मेलन से पूर्व भारत सरकार के आदेश से ईलम के प्रमुख नेता नजरबन्द कर लिये तथा उनके हथियार जब्त कर लिये गये । भारत सरकार तमिलों पर श्रीलंका सरकार के आदेशों को मानने के लिये मनोवैज्ञानिक दवाब डाल रही थी । बैंगलौर सम्मेलन में राजीव गाँधी एवं जयवर्धने ने विचार विमर्श करके तमिल समस्या के समाधान के लिये कुछ प्रस्ताव रखे इस वार्ता में ईलम के नेताओं ने भी भाग लिया । इस वार्ता के माध्यम से श्रीलंका सरकार एवं तमिल उग्रवादियों की दूरी को कम करने का प्रयास किया गया था, लेकिन फिर भी समस्या समाधान की ओर कोई प्रगति नहीं हो सकी ।

---

1. नागपुर टाइम्स, 27 दिसम्बर 1985
2. एशियन रिकार्डर, 26 फरवरी – 4 मार्च 1986

दिसम्बर 1986 में ही भारतीय प्रतिनिधि मंडल प्रजातीय समस्या के समाधान हेतु विचार - विमर्श करने के लिये श्रीलंका गया, लेकिन तमिल गुटों के अड़ियल रवैये के कारण कोई सहमति सम्भव नहीं हो सकी । उदारवादी तमिल गुटों ने उत्तरी पूर्वी प्रान्त के विलय के प्रस्ताव को रखा तथा उग्रवादी गुट ने प्रथक राज्य की माँग को दोहराया ।

फरवरी 1987 को श्रीलंका की सरकार ने भारत सरकार को अवगत कराया कि यदि तमिल हिंसात्मक कार्यवाही रोक दे तो उन्हे समान अधिकार प्रदान किये जायेंगें । श्रीलंका सरकार उन तमिलों को रिहा कर देगी, जिनको आतंकवादी विरोधी अधिनियम के अन्तर्गत पकड़ा गया हो तथा जिनके विरोध में कोई प्रमाण नहीं है ।[1] श्रीलंका में लेकिन जातीय संघर्ष बराबर चलता रहा । तमिल उग्रवादी संगठन मांगो की पूर्ति हेतु अनेक प्रकार की आतंकवादी गतिविधियाँ अपना रहे थे तथा विभिन्न तमिल गुटों की माँगों में मतभेद के कारण ये तमिल आपस में ही झगड़ रहे थे । श्रीलंका सरकार तमिलों की आतंकवादी गतिविधियों को दबाने के लिये दमानात्मक नीति अपना रही थी । भारत सरकार श्रीलंका सरकार से हिंसात्मक कार्यवाही रोकने तथा समस्या का राजनीतिक समाधान करने का अनुरोध कर रही थी, लेकिन श्रीलंका सरकार भारत सरकार के अनुरोध पर कोई ध्यान दिये विना तमिलों के प्रति दमानात्मकनीति अपनायी थी ।

श्रीलंका सरकार ने तमिलों को दवाब डालने के लिये तमिल बहुल प्रान्तों की नाकेबन्दी करके वहाँ जरूरी सामान की आपूर्ति रोक दी । इन इलाकों में फसे लोग खाद्य सामग्री एवं अन्य जरूरी चीजों की कमी से परेशान होने लगे । उनकी इस परेशानी का प्रभाव भारत पर भी पड़ा, भारतीय तमिलों ने सरकार पर इस विषय में हस्तक्षेप के लिये दवाब डालना प्रारम्भ कर दिया । बुद्धिजीवियों का एक वर्ग भी सरकार को श्रीलंका की घटनाओं का मूकदर्शक न बने रहने के लिये उकसाने लगा था ।[2]

---

1. आई० डी० एस० ए० न्यूज रिव्यू, अप्रैल 1987

2. नवभारत टाइम्स, 30 जून 1990

मई 1987 से ही भारत सरकार श्रीलंका एवं तमिलों के बीच बातचीत एवं समझौते की सम्भावनाओं के लिये प्रयत्नशील रही । विदेश सचिव के0 पी0 एस0 मेनन छापामारों से बातचीत बनाये हुये थे और श्रीलंका में भारतीय उच्चायुक्त जे0 एन0 दीक्षित राष्ट्रपति जयवर्धने को बातचीत के लिये सहमत करने के लिये प्रयत्नशील थे ।

भारत सरकार के ये प्रयास जारी ही थे कि श्रीलंका की वायु एवं थल सेना ने जाफना प्रान्त पर आक्रमण कर दिया । यह आक्रमण इतने बृद्ध स्तर पर था कि श्रीलंका की सेना जाफना को तमिल छापामारों से मुक्त मानने लगी थी । जाफना पर आक्रमण एवं नाकाबन्दी की तमिलनाडु एवं भारत के अन्य भागों में तीखी आलोचना हुयी । भारत सरकार ने जाफना में युद्ध पीड़ितों को राहत सामग्री भेजने का प्रयास किया, जिसे इस्रायली गनबोटों की सहायता से श्रीलंका की सेना ने रोक दिया । भारत सरकार ने पुन: सैनिक संरक्षण में विमानों की सहायता से राहत सामग्री श्रीलंका भेजी इससे श्रीलंका सरकार सकते में आ गयी ।

श्री जे0 एन0 दीक्षित ने जयवर्धने पर जोर डाला कि वह राहत सामग्री भारत से आने दें । श्रीलंका ने इस बार प्रतिरोध नहीं किया, भारतीय विमानों ने राहत सामग्री को कुशलता से जाफना में उतार दिया ।[1] 15 जून को भारत एवं श्रीलंका के मध्य राहत सामग्री को भेजने के सन्दर्भ में एक समझौता हो गया । राहत सामग्री के साथ जाफना पहुँचे पहले जहाज के साथ ही भारतीय उच्चायोग के सचिव हरदीप पुरी भी जाफना गये । वहाँ उन्होंने लिट्टे के नेता वी0 प्रभाकरन से मिलकर उन्हें सरकार से बातचीत के लिये राजी किया ।[2]

पहली जुलाई 1987 को समझौते के प्रारूप के साथ भारतीय उच्चायुक्त श्री जे0 एन0 दीक्षित राष्ट्रपति जयवर्धने से मिले । 16 जुलाई 1987 तक वे बारह बार समझौते के सन्दर्भ में श्रीलंका के राष्ट्रपति से मिले । 16 जुलाई 1987 को श्रीलंका के मन्त्रिमण्डल की बैठक में श्री दीक्षित को आमंत्रित किया गया, वहाँ उन्होंने समझौते के सन्दर्भ में उठी अनेक शंकाओ का

1. दिनमान जून 1987
2. नवभारत टाइम्स, 30 जून 1990

समाधान किया ।[1] दूसरी ओर हरदीप पुरी लिट्टे के सातों कमाण्डरों से विचार विमर्श में जुटे थे। 24 जुलाई 1987 को वी० प्रभाकरण को जाफना से तिरुचिरापुल्ली पहुँचाया गया । एम० जी० रामचन्द्रन से मिलने के बाद श्री प्रभाकरण दिल्ली जाकर प्रधानमंत्री राजीब गाँधी से मिले और समझौते के लिये अपनी सहमत प्रकट की ।

कोलम्बों में 26 जुलाई 1987 को श्री दीक्षित ने एक बार फिर श्रीलंका के मन्त्रिमण्डल को सम्बोधित किया । इसके बाद 48 घन्टे के भीतर ही एक प्रक्रिया के अनुसार भारत एवं श्रीलंका के मध्य शान्ति समझौता सम्पन्न हुआ। इस समझौते को 29 जुलाई 1987 को भारत की प्रधानमंत्री राजीब गाँधी एवं श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने कोलम्बो में हस्ताक्षर किये । इस समझौते के अनुसार –

(1) तमिल बाहुल्य उत्तरी एवं पूर्वी प्रान्तों की एकीकृत परषिद बनायी जायेगी । उत्तरी – पूर्वी प्रान्तों के प्रस्तावित विलय पर पूर्वी प्रान्तों के लोगों को मत जानने के लिये वहाँ एक वर्ष बाद जनमत संग्रह कराया जायेगा । यह कार्य भारतीय चुनाव आयोग के एक अधिकारी की उपस्थिति में होगा ।

(2) 48 घन्टे के अन्दर तमिल उग्रवादी युद्ध विराम करेगें, जिसे भारत एवं श्रीलंका की मिली जुली सेनाये लागू करायेगी, अगले 72 घन्टों में तमिल उग्रवादी अपने हथियार सौप देगें ।

(3) सिंहली भाषा के साथ तमिल एवं अंग्रेजी राष्ट्रभाषा होगी ।

(4) तीन महिने में प्रान्तीय परिषद के चुनाव होगें । उत्तरी एवं पूर्वी प्रान्त से 15 अगस्त 1987 तक आघात स्थिति हट जायेगी ।

(5) यदि श्रीलंका का कोई छापामार समझौता नहीं मानता तो यह भारत सरकार का कार्य होगा कि उसके भू–भाग में ऐसा कोई कार्य न हो, जिससे श्रीलंका की एकता

---

1. नवभारत टाइम्स, 30 जून 1990

अखण्डता एवं सुरक्षा खतरे में पड़े । भारतीय नौ सेना को श्रीलंका की नौ सेना से सहयोग करते हुये तमिल छापामारों की गतिविधियाँ रोकनी होंगी । जब भी श्रीलंका की सरकार सैनिक सहायता की माँग करेगी तो यह सहायता हमें देनी होगी

(6) श्रीलंका से भारतीय मूल के बगान श्रमिकों की वापसी एवं भारत से श्रीलंका के तमिल शरणार्थियों की वापसी का कार्य दोनों देश बराबरी से करेंगे ।

30 जुलाई 1987 को भारतीय सेना के 1,500 जवान श्रीलंका पहुँच गये, धीरे-धीरे भरतीय शान्तिसेना की संख्या बढ़ती गयी ।

इस समझौते पर मिली जुली प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी । अन्तार्राष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका, रूस, बंगलादेश एवं आस्ट्रेलिया आदि देशों ने इस समझौते का स्वागत किया । सोवियत संघ के उप प्रधानमन्त्री ने एक सभा को सम्बोधित करते हुये कहा कि "भारत-श्रीलंका समझौता क्षेत्रीय विवादों को वास्तविक तरीके से सुलझाने का एक उदाहरण है ।"[1] फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन के अध्यक्ष यासिर आराफात ने भारत - श्रीलंका समझौता 1987 को एशिया की प्रमुख घटना की संज्ञा दी ।[2] पाकिस्तान एवं चीन ने इस शान्ति समझौते का विरोध किया । पाकिस्तान के विदेशमन्त्री श्री अब्दुल सत्तार ने कहा कि "श्रीलंका में भारतीय शान्ति सेना का प्रवेश उसके आन्तिरिक विषय में हस्तक्षेप है ।" साम्यवादी चीन के एक प्रमुख जनरल ने इस समझौते पर टिप्पणी करते हुये लिखा कि "भारत - श्रीलंका समझौता भारत के पक्ष में प्रतीत होता है, जो श्रीलंका की स्वतन्त्राता एवं सम्प्रभुता के लिये अहितकर होगा ।"[3]

श्रीलंका में सिंहली, कुछ तमिल गुटों एवं श्रीमती भंडारनायेके की श्रीलंका फ्रीडम पार्टी ने इस समझाते का विरोध किया । श्रीमती भंडारनायके ने कहा कि "राष्ट्रपति जयवर्धने ने समझौते के नाम पर श्रीलंका की जनता के साथ विश्वासघात किया है ।" उन्होंने कहा "कि मुझे समझ में नहीं आता कि भारत ने इतनी सैनिक सामग्री तथा हजारों सैनिक हमारे यहाँ क्यों भेजे है ?

---

1. आई० डी० एस० ए० न्यूज रिव्यू सितम्बर 1987 पृष्ठ - 1333
2. द हिन्दू 6 अगस्त 1987
3. आई० डी० एस० ए० न्यूज रिव्यू अक्टूबर 1987 पृष्ठ - 1444

हम पर कौन आक्रमण करने आ रहा है ? हम भारत के संरक्षित हो गये है ।"[1] श्रीलंका के रक्षामन्त्री अतुलुथमुदाली ने काफी दिनों के मौन के बाद एक वक्तव्य में कहा कि "यह समझौता एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है, लेकिन इसकी सफलता तमिल आतंकवादियों के हथियारों के सम्पूर्ण पर निर्भर करती है ।"[2]

श्रीलंका में इस शान्ति समझौते के विरोध में घोर प्रदर्शन भी हुआ । श्रीलंका के नौसैनिक की राइफल से राजीव गाँधी पर आक्रमण एवं सिंहली उग्रवादी सुगठन जे0 वी0 पी0 द्वारा रष्ट्रपति जयवर्धने पर आक्रमण से इस समझौते रूपी गुलाब की पंखुरियाँ बिखर गयी । विरोध व हिंसा में श्रीलंका के वे तमिल संगठन भी शामिल थे, जिन्हें समझाकर समझौता मनवाने की जिम्मेदारी भारत ने ले ली थी । श्रीलंका के तमिलों से सहानुभूति रखने वाले भारत के तमिलनाडु के तमिल संगठनों ने भी समझौते की प्रतियाँ जलाकर राख राजीव गाँधी को भेजने की घोषणा की ।

तमिल ईलम के मुक्ति – चीतों ने समझौते की पटकथा को ही बदल दिया । राजीव गाँधी एवं जयवर्धने ने तथ किया था कि तमिलों को हथियार उनकी मर्जी से डालने होगें, लेकिन तमिलों ने तय किया कि वे हथियार तो डालेगें लेकिन अपनी मर्जी से अपने नेता वी0 प्रभाकरन के आदेश से । तमिल उग्रवादियों ने देर से ही सही हथियार डालने प्रारम्भ कर दिया, लेकिन लिट्टे ने धोखा कर दिया । लिट्टे के नेता वी0 प्रभाकरन ने समझौते का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया द हिन्दू के एक प्रतिनिधि को वी0 प्रभाकरन ने एक साक्षात्मक में इस समझौते पर असंतोष व्यक्त करते हुये कहा "इस समझौते में तमिलजनों के हितों का ध्यान नहीं रखा गया ।" उन्होने कहा कि यह समझौता जल्दवाजी में किया गया समझौता है जिसे दोनों देशों के सरकार ने अपने-अपने हित में किया है । वस्तुतः स्थाई एवं अन्तिम हल प्रथक तमिल ईलम है ।[3] शान्ति सेना को भी श्रीलंका में काफी विरोध का सामना करना पड़ा ।

---

1. टेलीग्राफ, 7 अगस्त 1987
2. आइ0 डी0 एस0 ए0, सितम्बर 1987 पृष्ठ – 1345
3. आइ0 डी0 एस0 ए0, सितम्बर 1987 पृष्ठ – 1344

वास्तव में भारत – श्रीलंका समझौता 1987 में भारत की भूमिका काफी जोखिम भरी थी । समझौते के अनुसार श्रीलंका सरकार सैनिक सहायात की माँग करेगी तो हमें देनी होगी । भारत सरकार श्रीलंका से अपने नागरिकों की वापसी का कार्य तेजी से निपटायेगी तथा तमिलनाडु में आये तमिल शरणार्थी वापस भेजे जायेगें । भारत सरकार इस जिम्मेदारी पूर्ण कार्य को तभी कर सकती थी जब श्रीलंका सरकार सक्रिय रहती तथा तमिल छापामार संगठन भारत का कहना मानते, यदि तमिल छापामार भारत के कहने में नहीं थे तो उनकी ओर से भारत ने कोई जिम्मेदारी कैसे ले ली । तमिल ईलम की माँग छापामारों की थी तथा अब भी है, जिसका भारत ने सदैव विरोध किया, तो भारत ने समझौते में अपने हाथ कैसे बाँध लिये थे आज स्थिति यह है कि सुलह कराने वाला मध्यस्थ मुह के बल चित्त है, उसकी प्रतिष्ठा को अनेक घाव हैं और श्रीलंका के सिंहली सैनिक एवं तमिल लड़ाकू हिंसात्मक गतिविधियों में संलग्न हैं ।

जुलाई 1987 के शान्ति समझौते पर अनेक प्रश्न चिंह लगने के बाद भी भारत के प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी ने इस समझौते की सार्थकता को 9 नवम्बर 1987 को संसद में स्पष्ट करते हुये कहा था "इस समझौते को पूर्ण कार्यान्विन से सभी को लाभ पहुँचेगा । तमिल लोगों की आंकाक्षाये पूर्ण होगी तथा श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता को बनाये रखा जा सकेगा । इस क्षेत्र में फिर से शान्ति एवं व्यवस्था कायम की जा सकेगी, स्वयं हमारी सुरक्षा की भी कुछ आवश्यकतायें पूर्ण हो सकेगी ।"[1]

30 जून 1988 को जयवर्धने ने समझौते के अनुसार यह घोषणा की कि पूर्वी एवं उत्तरी परिषदों का अस्थाई विलय हो जायेगा और दोनों के लिये एक प्रान्तीय परिषद होगी । नवम्बर 1988 में भारत के प्रयास एवं दबाव के परिणामस्वरूप उत्तरी – पूर्वी प्रान्तीय परिषद के चुनाव सम्पन्न हुये, लेकिन तमिल उग्रवादी संगठन लिट्टे एवं सिंहल उग्रवादी संगठन जे0 वी0 पी0 ने इसका पूर्ण विरोध किया । लिट्टे एवं जे0 वी0 पी0 के बहिष्कार के बाद भी इस चुनाव में पचास प्रतिशत के लगभग मतदान हुआ तथा ईलम पीपुल्स रिवोल्यूसनरी फ्रंट के नेता

---

1. 9 नवम्बर 1987 को प्रधानमन्त्री का संसद में दिया गया वक्तव्य ।

ए0 वरदराज पेरूमल उत्तरी – पूर्वी प्रान्त के मुख्य मन्त्री निर्वाचित हुये । प्रान्तीय परिषद के ये चुनाव भारत – श्रीलंका के समझौते के मुख्य आधार थे ।

इस चुनाव के साथ जहाँ शान्ति एवं सदभाव की उम्मीदे जांगी थी, वहीं आशंकाओं के बादल भी मडराने लगे थे । लिट्टे तो जुलाई 1987 से ही भारत – श्रीलंका समझौते का विरोध करने में लगा था, लेकिन इन चुनाव के समया उसने जे0 वी0 पी0 से गठजोड़ करके नयी समस्या को जन्म दे दिया था । इसी कारण विभिन्न तमिल गुटों में, शान्ति सेना एवं लिट्टे के बीच संघर्ष जारी रहा ।

दिसम्बर 1988 में श्रीलंका में राष्ट्रपति पद के लिये निर्वाचन हुआ, जिसमे श्री प्रेमदास श्रीलंका के नये राष्ट्रपति बने । प्रेमदास ने अपने प्रारम्भिक भाषण को सिंहली के साथ–साथ तमिल में भी पढ़ा तथा अपने को जनता का, (सिंहली एवं तमिल) दोनों का राष्ट्रपति कहा । प्रेमदास यद्यपि स्पष्टरूप से भारत विरोधी रूख नहीं अपना रहे थे, लेकिन उन्होंन जल्दी ही स्पष्ट कर दिया कि वे शान्ति सेना के श्रीलंका में उपस्थिति के हिमायती नहीं हैं । प्रेमदास को भारत विरोधी प्रचार का लाभ अपनी संसद के चुनाव में मिला ।

फरवरी 1989 में श्रीलंका में संसद के चुनाव सम्पन्न हुये तथा प्रेमदास की यूनाइटेड नेशनल पार्टी की सरकार विधिवत गठित हुयी । जातीय उन्माद, अक्रामक तेवर एवं नफरत की माँग पर नियंत्रण पाने की दृष्टि से श्रीलंका में चुनाव एक महत्वपूर्ण प्रयास थे । इस चुनाव में वामपंथियों की पराजय हुयी तथा उत्तरी – पूर्वी क्षेत्र मे लिट्टे द्वारा चुनाव बहिष्कार के नारे को ठुकरा दिया गया था, लेकिन फिर भी श्रीलंका में रक्तपात एवं हिंसा निरन्तर जारी रही ।

14 मई 1988 को भारत – श्रीलंका समझौता 1987 की भावना के अनुरूप श्रीलंका सरकार ने वहाँ के सशस्त्र बलों को बहुजातीय स्वरूप प्रदान करने के लिये, पहली बार तमिल बाहुल्यक्षेत्र के युवकों से, इनमें भर्ती करने के लिये प्रार्थना पत्र आमंत्रित किये ।[1]

---

1. दैनिक जागरण 15 मई 1989

1987 के समझौते को लागू करने का प्रयास दोनों देशों द्वारा किया गया, लेकिन फिर भी श्रीलंका में रक्तपात एवं हिंसा बराबर जारी रही । शान्ति सेना की वापसी की मांग ने लिट्टे एवं श्रीलंका सरकार को समीप ला दिया था । लिट्टे ने शान्ति सेना पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया था । सरकार एवं लिट्टे दोनों ही शान्ति सेना का विरोध कर रहे थे । पहली जून 1989 को श्रीलंका के राष्ट्रपति प्रेमदास ने बद्दूरमला के बौद्ध मन्दिर में बोलते हुये यह घोषित किया कि "भारत 29 जुलाई 1989 तक अपनी सेना हटा ले" उन्होंने कहा "कि बौद्ध धर्म हमें सिखाता है कि सेना का सहारा लेकर शान्ति स्थापित नहीं हो सकती ।"[1]

श्रीलंका के राष्ट्रपति प्रेमदास की इस घोषणा को लिट्टे के अतिरिक्त सभी तमिल संगठनों ने विरोद्ध किया । भारत ने भी स्पष्ट कर दिया कि भारत – श्रीलंका के समझौते के अन्तर्गत स्थिति समान होने पर ही शान्ति सेना वापस लौटेगी । 29 जुलाई 1989 तक भारत एवं श्रीलंका के बीच आरोपों एवं प्रत्यारोपों के अनेक सम्वाद चलने के बाद भारत इस दिन से शान्ति सेना के प्रतीकात्मक पहल करने एवं उसकी पूर्ण वापसी की प्रक्रिया निश्चित करने के लिये सहमत हो गया ।

सितम्बर 1989 में भारत एवं श्रीलंका ने समझौता वादिता की नीति अपना कर शान्ति सेना की वापसी के संदर्भ में एक समझौता किया । इस समझौते पर भारतीय उच्चायुक्त श्री लखनलाल मेहरोत्रा तथा श्रीलंका के विदेश सचिव वर्नाड तिलकरत्ने ने अपनी-अपनी सरकार की ओर से 18 सितम्बर 1989 को हस्ताक्षर किये । समझौते के अनुसार भारत एक निश्चित समय के भीतर शान्ति सेना को वापस बुलालेगा तथा श्रीलंका सरकार तमिल बाहुल्य पूर्वोत्तर प्रान्त में नागरिक प्रशासन को सुदृढ़ बनायेगी । शान्ति स्थापित करने के लिये श्रीलंका में सभी जातीय समूहों को मिलाकर शान्ति समिति बनाई जायेगी । इस समझौते के अनुसार प्रेमदास शान्ति सेना की वापसी के लिये भारत को एक समय सीमा में राजी करने में सफल हो गये थे । यह समय सीमा 31 दिसम्बर 1989 तय की गयी थी, यद्यपि साझा बयान में यह कहा गया था कि भारत इस

---

1. पब्लिक एशिया जुलाई 1989 पृष्ठ – 6।

इस समय सीमा में शान्ति सेना को वापस करने की कोशिष करेगा ।

भारत ने समझौते की भावना के अनुरूप शान्ति सेना की वापसी का कार्य प्रारम्भ कर दिया था तथा 24 मार्च 1990 को श्रीलंका से शान्ति सेना की पूर्ण वापसी हो चुकी है, लेकिन फिर भी श्रीलंका मे रक्तपात एवं हिंसा यथावत जारी है ।

अत: स्पष्ट है कि भारत एवं श्रीलंका दोनो ही तमिल समस्या के समाधान के लिये प्रारम्भ से प्रयासरत रहे हैं । दोनों देशों के मध्य समस्या समाधान हेतु अनेक समझौते सम्पन्न हो चुके हैं, लेकिन फिर भी समस्या का समाधान सम्भव नहीं हो सका है । भारत सरकार की अस्पष्ट नीति तथा श्रीलंका की भारत के प्रति असुरक्षा की भावना के कारण अनेक प्रयासों के बाद भी समस्या समाधान के कोई लक्षण नहीं नजर आ रहे है, वरन् स्थिति और अधिक बिगड़ती जा रही है ।

प्रयासों के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियाँ

भारत श्रीलंका सम्बन्धों के निर्धारण में तमिल समस्या महत्वपूर्ण स्थान रखती है, इसलिये दोनो ही देश तमिल समस्या के समाधान के लिये प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील रहे है । भारत श्रीलंका सम्बन्धों के इतिहास में तमिल समस्या के समाधान हेतु अब तक अनेक महत्वपूर्ण समझौते सम्पन्न हो चुके है, लेकिन फिर भी दोनों देशों को इस दिशा में पूर्ण सफलता नहीं मिली है, वरन दोनों देशों द्वारा किये गये प्रयासों से इस समस्या की जटिलता में भी बृद्धि हुयी है तथा कुछ अन्य नयी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो गयी है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत एवं श्रीलंका द्वारा तमिल समस्या के समाधान हेतु सर्वप्रथम 1954 में महत्वपूण् प्रयास किया गया, जिसकी परिणति नेहरू – कोटलेवाला समझौता 1954 के रूप में हुयी । इय समझौते में दोनों ही देशों ने तमिलों को नागरिकता प्रदान करने के सम्बन्ध में कुछ निर्णय लेने के साथ ही इस बात पर सहमति प्रकट की "कि ऐसे प्रत्येक भारतवासी को जिसका पंजीकरण नहीं होगा गैर कानूनी प्रवासी माना जायेगा तथा उसे तुरन्त बापस लौटना होगा ।"

श्रीलंका सरकार का प्रारम्भ से ही यह उद्देश्य रहा है कि जहाँ तक सम्भव हो सके किसी न किसी रूप में भारतीय प्रवासियों को देश छोड़ने के लिये वाध्य किया जाये । 1954 के समझौते के बाद प्रधानमन्त्री कोटलेवाला ने कहा कि "इस समझौते को आधार बनाकर हम एक–एक भारतीय प्रवासी को श्रीलंका से बाहर निकालने में समर्थ हो सकेगे ।[1] मार्च 1954 में श्रीलंका सरकार ने भारतीय प्रवासियों के निवास आज्ञापत्रों को नवीनीकरण करने का कार्य स्थगित कर दिया, जिससे भारतीय श्रमिक देश रहित एवं अवैध निवासी बन गया, प्रतिक्रिया स्वरूप भारत ने भी भारत एवं श्रीलंका के बीच स्वतन्त्र आगमन पर नियन्त्राण लगा कर विजा (पार – पत्र) की व्यवस्था कर दी ।[2]

---

1. भारत एवं विश्वराजनीति, डा० एम० पी० राय पृष्ठ – 222
2. वही ।

अतः 1955 के समझौते के कारण तमिल समस्या का समाधान होने के स्थान पर जटिलता में वृद्धि हुयी थी ।

भारत एवं श्रीलंका द्वारा 1964 में तमिल समस्या को समाधान करने के लिये ऐतिहासिक प्रयास किया गया । दोनों ही देशों ने परस्पर लेनदेन अथवा, लेने के साथ देनें के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुये ये समझौता किया। यह समझौता तमिल समस्या के समाधान के लिये किये गये प्रयासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास था लेकिन फिर भी इस समझौते के बाद भी तमिल समस्या का समाधान नहीं हो सका । समझौते के कुछ समय बाद ही श्रीमती भंडारनायेके ने पृथक निर्वाचन रजिस्टर का विषय उठाकर समझौते को अन्धकार में डाल दिया था तथा श्री सेनानायके ने समझौते की परिस्थिति में कुछ परिवर्तन किये, लेकिन फिर भी दोनों देश की सरकार समय-समय पर 1964 के समझौते को पूर्ण करने के लिये अपनी सहमति प्रकट करती रही । 1973 में दोनों देशों ने इस समझौते की अवधि को 1979 से बढ़ाकर 1982 कर दी तथा 1,50,000 व्यक्तियों की नागरिकता के सम्बन्ध में निर्णय लिया । 1982 तक भी 1964 के समझौते के अनुसार भारत एवं श्रीलंका तमिलों को नागरिकता प्रदान करने में असमर्थ रहे । श्रीलंका एक ओर अनेक प्रतिबन्धों को लगाकर कम से कम व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान कर रहा था, दूसरी ओर प्रवासी भारतीय एक सीमा से अधिक भारत नहीं आना चाहते थे, इसलिये समस्या के समाधान में सफलता नहीं मिल रही थी । श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने एक वक्तव्य में कहा "ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है, जिसके कारण सिरामाओं शास्त्री समझौते को नया रूप दिया जाये । उन्होंने कहा कि भारत उन व्यक्तियों के भारत प्रत्यावर्तन के लिये राजी नहीं होगा जो भारत नहीं आना चाहते ।[1]

श्रीलंका में तमिलों एवं सिंहलियों के बीच असंतोष स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही से पनपता रहा है, लेकिन 1971 से तमिलों द्वारा उग्रवाद एवं अलगावणद की घोषणा के बाद परिस्थितियाँ निरन्तर विगड़ती गयी है । 1971 में तमिलों ने स्पष्ट रूप से प्रथक राज्य की माँग को रखा । सिंहलियों की उग्रवादी गतिविधियों एवं श्रीलंका सरकार की तमिलों के प्रति दमानात्मक

---

1. एशियन रिकार्डर, 24 - 31 दिसम्बर 1981 पृष्ठ - 16378

नीति के परिणामस्वरूप श्रीलंका में 1971, 1973, 1977, 1979 तथा 1981 में भीषण दंगें हुये । इन भीषण दंगों के कारण श्रीलंका में तमिलों द्वारा की गयी आतंकवादी गतिविधियाँ बढ़ रही थी । तमिल युवकों का अपने उदारवादी नेताओं से विश्वास समाप्त होने लगा था । उन्हें यह विश्वास होने लगा था कि विना उग्रवाद का सहारा लिये न्याय पाना कठिन है, परिणामस्वरूप श्रीलंका में तमिल टाइगर ईलम तथा पीपुल्स लिवरेशन आर्गनाइजेशन फाट तमिल ईलम जैसे अनेक आंतंकवादी गुटों का प्रादुर्भाव हो गया । इन तमिल आंतंकवादी गुटों ने सरकार एवं सिंहली राजनीति के विरोध में मुहिम छेड़ दी, जिसक परिणाम स्वरूप श्रीलंका में आज तक सभी जातीय समुदाय हिंसात्मक गतिविधियों में लिप्त है तथा समस्या नित-प्रतिदिन विकृत रूप ले रही है ।

श्रीलंका में जब से तमिल प्रथक राज्य की मांग कर रहे है तब से भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध निरन्तर खराब होते जा रहे है । इससे पहले भारत एवं श्रीलंका के मध्य भारतीय व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के अतिरिक्त और कोई समस्या नहीं थी । भारत सदैव श्रीलंका के आन्तरिक विषयों से अलग रहा तथा कभी भी सीधा हस्तक्षेप नहीं किया । 1983 के दंगों में भारतने पहली बार तमिलों एवं सिंहलियों के झगड़ों में हस्तक्षेप किया भारतीय मूल के व्यक्ति तथा भारतीय पार-पत्र धारक जुलाई 1983 में दंगों से विशेष रूप से प्रभावित हुये । इन दंगों के सन्दर्भ में प्रधानमंत्री ने अपनी सलाह दी थी तथा अपने विदेश मंत्री को स्थिति का अवलोकन करने के लिये भेजा ।[1] भारतीय विदेश मंत्री को कोलम्बों भेजने का प्रस्ताव यद्यपि जयवर्धने ने सहर्ष स्वीकार कर लिया था, लेकिन विदेशमन्त्री के वापस आने के बाद जयवर्धने ने कहा "कि क्या भारत हर उस देश में अपने विदेशमन्त्री भेजेगा या भेजता है, जहाँ भारतीय मूल के निवासी किसी संकट के शिकार होते है ।"[2] श्रीलंका के राष्ट्रपति का वक्तव्य स्पष्ट रूप से भारत विरोधी था, जो भारत सरकार के समस्या समाधान के सन्दर्भ में किये गये प्रयास का परिणाम था ।

---

1. रविकान्त दुवे "इण्डिया एवं श्रीलंका" पृष्ठ - 98
2. दिनमान अगस्त 1983

श्रीलंका में होने वाले तमिल विरोधी भीषण दंगों पर भारत द्वारा सदैव चिन्ता व्यक्त की जाती रही, जिस पर श्रीलंका ने सदैव यह प्रतिक्रिया व्यक्त की कि भारत उग्रवादियों का सहारा लेकर श्रीलंका में हस्ताक्षेप करना चाहता है । इसके साथ ही श्रीलंका ने भारत पर सदैव यह आरोप लगाया कि तमिल उग्रवादियों को भारत में प्रशिक्षण मिलता है । श्रीलंका के प्रधानमंत्री प्रेमदास ने कहा "कि तमिल आतंकवादियों को दक्षिण भारत में प्रशिक्षण दिया जा रहा है । श्रीलंका इसे अब लम्बे समय तक नहीं सह सकता है । भारत श्रीलंका को और अधिक परेशान नहीं कर सकता है ।"[1]

भारत ने जब से सिंहली एवं तमिलों के झगड़ों एव्र तमिलों पर हो रहे अत्याचारों के सन्दर्भ में समस्या समाधान की दृष्टि से मध्यस्थ की भूमिका का निर्वाह करना प्रारम्भ किया है, तभी से श्रीलंका भारत पर आन्तरिक विषयों पर हस्तक्षेप का आरोप लगा रहा है । श्रीलंका का विचार रहा है कि तमिल समस्या श्रीलंका का आन्तरिक विषय है इस लिये किसी अन्य देश को इस सन्दर्भ में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये, जबकि भारत सरकार यह मानती रही है कि तमिल समस्या श्रीलंका के समान भारत की भी समस्या है, इसलिये भारत इस समस्या के समाधान में अन्य देशों के समान तटस्थ नहीं रह सकती । इसी कारण भारत द्वारा कियेगये प्रयासों के परिणामस्वरूप दोनों देशों के मध्य कटुता अधिक बढ़ी है ।

मई 1987 में श्रीलंका की सेना ने जाफना पर आक्रमण कर दिया । जाफना पर फौजी कार्यवाही ने भारत को बड़ी उलझन में डाल दिया था कि या तो भारत शक्ति के आधार पर श्रीलंका की फौजों को तमिलों की हत्या करने से रोके अथवा विश्व में श्रीलंका के विरूद्ध जनमत तैयार करें । भारत के प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी ने श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने एक सन्देश भेज कर जाफना में सैनिक कार्यवाही को रोकने का अनुरोध किया, लेकिन जयवर्धने ने इस अनुरोध का ठुकराकर समुद्र पर और अधिक चौकसी बढ़ा दी ।

---

1. द हिन्दू 2 मार्च 1983

भारत के तमिलनाडु क्षेत्र के जनमानस की आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु एवं अन्य राजनैतिक दलों के दवाव के परिणामस्वरूप भारत सरकार ने राहत सामग्री से भरी नौकाये जाफना भेजना चाहा., जिन्हें श्रीलंका की सेना ने इस्रायल से मिली गनबोटों की सहायता से रोक लिया जिसके परिणामस्वरूप भारतीय नौकाओं को रामेश्वरम से वापस आना पड़ा । यह श्री राजीव गाँधी की नौका राजनीति की जवर्जस्त हार थी । श्रीलंका ने एक भी गोली चलाये विना न केवल भारतीय नौकाओं को वापस लौटने के लिये मजबूर कर दिया, वरन जाफना पर आक्रमण के सन्दर्भ में और देशों को मौका दे दिया था ।

भारत सरकार ने इसके बाद पुनः सैनिक संरक्षण में विमानों की सहायता राहत सामग्री श्रीलंका भेजी, जिससे श्रीलंका सरकार सकते में आ गयी तथा एक बार फिर दोनों देशों के सन्दर्भ में काफी तनाव उत्पन्न हो गया था । अन्ततः भारत एवं श्रीलंका के बीच राहत सामग्री भेजने के सन्दर्भ में एक समझौता हो गया, जिससे विगड़ी हुयी स्थिति पुनः सभंल गयी । अतः राहत सामग्री भेजने के सन्दर्भ में भी भारत का अभियान पूर्णतः नाटकीय हो गया था तथा स्थिति काफी विगड़ गयी थी, जिसके परिणामस्वरूप एक नयी समस्या न ही जन्म ले लिया था ।

श्रीलंका में हिंसात्मक कार्यवाहियाँ निरन्तर जारी रही, लेकिन फिर भी भारत सरकार सदैव इस कोशिष में रही थी कि तमिल उग्रवादियों एवं श्रीलंका सरकार के बीच कोई समझौता हो जाये, जिससे तमिल समस्या का राजनैतिक समाधान हो सके । श्रीलंका में भारत सरकार के प्रयत्नों पर सदैव आपत्ति प्रकट की गयी तथा भारत पर आन्तिरिक विषयों पर हस्तक्षेप का आरोप लगया । भारत सरकार के प्रयासों के सन्दर्भ में श्रीलंका के प्रधानमंत्री श्री प्रेमदास ने एक वक्तव्य में कहा कि "श्रीलंकावासियों को यह संदेह है कि भारत धीरे-धीरे श्रीलंका को विभाजन की ओर ले जा रहा है ।"[1] अतः समस्या समाधान के सन्दर्भ में किये गये प्रयासों से समस्या की जटिलता में और अधिक बृद्धि होती रही ।

---

1. इण्डियन एक्प्रेस 23 जुलाई 1983

29 जुलाई 1987 को श्रीलंका के प्रधानमंत्री सहित कुछ मंत्रियों एवं सिंहली उग्रपंथियों के विरोध तथा लिट्टे की गम्भर आपत्तियों के बाद श्रीलंका की चार वर्ष पुरानी जातीय समस्या का समाधान करने की दृष्टि से एक प्रक्रिया के अनुसार भारत एवं श्रीलंका के बीच शान्ति समझौता सम्पन्न हुआ । इस समझौते में भारत की भूमिका काफी जोखिम भरी थी । समझौते के अनुसार श्रीलंका सरकार सैनिक सहायता की माँग करेगी तो हमें देनी पड़ेगी । भारत सरकार श्रीलंका से अपने नागरिकों की वापसी का कार्य तेजी से निपटायेगी तथा तमिल नाडु में आये तमिल शरणार्थी वापस भेजेगी । भारत इस कार्य को तभी कर सकता था जब श्रीलंका सरकार सक्रिय रहती तथा तमिल छापामार संगठन भारत का कहना मानते, लेकिन ऐसा नहीं हुआ । तमिल उग्रवादी संगठन ने समझौते का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया, जिससे समस्या सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझती गयी।

जुलाई 1987 के समझौते के अनुसार भारतीय शान्ति सेना के अनेक जवान श्रीलंका गये तथा उन्होंने श्रीलंका के एकता एव अखण्डता के स्थायित्व के लियी अपनी जी जान लगा दी तथा भारत सरकार ने शान्ति सेना पर करोड़ों रुपये खर्च किये, लेकिन श्रीलंका में शान्ति सेना की उपस्थिति में भारत श्रीलंका सम्बन्धों में सर्वाधिक जटिल समस्या को उत्पन्न कर दिया ।

श्रीलंका में शान्ति सेना की उपस्थितिका प्रारम्भ से ही सिंहली समुदाय द्वारा विरोध किया गया था, धीरे-धीरे मुक्त चीतों का भी विश्वास उठ गया, यहाँ तक कि स्थानीय तमिल भी शान्ति सेना को नफरत की दृष्टि से देखने लगे । उनके मन में एक बात बैठा दी गयी कि शान्ति सेना भौगोलिक, राजनैतिक रणनीति का एक मोहरा है । मुक्ति चीतों ने शान्ति सेना के विरोध में मुहिम छेड़ दी । मुक्त चीतों के अनुसार "यदि शान्ति सेना यह सोचती है कि हमारी सप्लाई लाईन (हथियार) काटी जा चुकी है तो वह मुगालते में है । हम आखरी सैनिक व अन्तिम हल तक लड़ेंगे ।"[1] शान्ति सेना के जिन उद्देश्यों के लिये श्रीलंका गयी उसे उन्हीं उद्देश्यों के विरूद्ध श्रीलंका में कार्य करना पड़ा ।

1. प्रतियोगिता दर्पण जनवरी 1988

शान्ति सेना की उपस्थिति एवं ई० पी० आर० एल० एफ० की चुनावी जीत से लिट्टे के क्षेत्र की तमिल जनता पर अपनी पकड़ कमजोर होती महसूस हो रही थी । जे० वी० पी० की तो इन दोनों से पुरानी दुश्मनी थी हल, ऐसे में लिट्टे एवं जे० वी० पी० ने आपस में गठबन्धन कर लिया तथा शान्ति सेना का विरोध करना शुरू कर दिया । इस समय एक तरफ लिट्टे लाशों का ढ़ेर लगा रहा था तो दूसरी तरफ जे० वी० पी० । जे० वी० पी० का निशाना सरकारी लोग, सरकारी सम्पति तथा उनके विरोधी लोग थे । लिट्टे ने अपने विरोधी तमिल गुटों को तथा शान्ति सैनिकों को अपनी हिंसा का निशाना बनाया । लिट्टे एवं जे० वी० पी० की इस प्रकार की गतिविधियों से समस्या की जटिलता में बृद्धि हुयी ।

प्रेमदास ने अनुभव किया कि वे शान्ति सेना का विरोध करते हुये भी एक साथ लिट्टे एवं जे० वी० पी० का सामना नहीं कर सकते, इसलिये उन्हें उत्तरी - पूर्वी प्रान्त में शान्ति सेना की आवश्यकता है । कुछ समय वे शान्तिरहे लेकिन अन्दर ही अन्दर शान्ति सेना की वापसी का मार्ग खोजते रहे । मई 1989 में मुक्तिचीतों के साथ प्रेमदास ने सीधे बात चीत प्रारम्भ कर दी तथा भारत को शान्ति सेना हटाने के सन्दर्भ में संकेत दे दिया । इसके बाद श्रीलंका सरकार एवं लिट्टे के बीच गुपचुप वार्ता होने लगी तथा ई० पी० आर० एल० एफ० सरकार को हटाने की योजना बनने लगी, जिससे समस्या ने एक नया रूप ले लिया ।

पहली जून 1988 को श्रीलंका के राष्ट्रपति ने अचानम यह घोषणा कर दी "भारत 29 जुलाई 1989 तक अपनी सेना श्रीलंका से हटा ले । बौद्ध धर्म हमे सिखाता है कि सेना का सहारा लेकर शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती है ।"[1] प्रेमदास के इस वक्तव्य से उनके मन्त्रिमण्डल के सदस्य भी आश्चर्यचकित रह गये । श्रीलंका में अपने राष्ट्रपति की इस घोषणा का लिट्टे के अतिरिक्त सभी तमिल गुटों ने विरोध किया । भारत सरकार ने भी श्रीलंका की एक तरफा ढंग से शान्ति सेना की वापसी की तिथि को ठुकरा दिया तथा यह घोषणा की कि शान्ति सेना की वापसी के साथ भारत - श्रीलंका समझौते की सभी शर्तों का पालन होना चाहिये ।

---

1. पब्लिक एशिया जून 1989

श्रीलंका के राष्ट्रपति शान्ति सेना की वापसी के लिये अडिग रहे, उन्होंने शान्ति सेना की वापसी के सम्बन्ध में अपने निम्न तर्क प्रस्तुत किये -

(1) शान्ति सेना श्रीलंका के राष्ट्रपति के निवेदन से श्रीलंका में आयी थी इसलिये इसके सभी सेनाध्यक्ष राष्ट्रपति की अधीनता में हैं ।

(2) भारत - श्रीलंका समझौता दो देशों के मध्य हुआ है यहाँ कोई तीसरी शक्ति बीच में नहीं है ।

(3) वर्तमान समय में शान्ति सेना की श्रीलंका में उपस्थिति का कोई औचित्य नहीं है ।

(4) भारत अपने एक भाग को श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता के विरोध में प्रयोग कर रहा है जो समझौते के विरोध में है ।[1]

श्रीलंका में इस समय शान्ति सेना का काफी विरोध हो रहा था । लिट्टे उग्रवादियों ने कोलम्बों में नरमपथी लिवरेशान फ्रन्ट के नेता अमृथलिंगम की हत्या कर दी, क्योंकि वे शान्ति सेना की वापसी का मार्ग बन्द कर देना चाहते थे । शान्ति सेना की वापसी के आधार पर श्रीलंका ने इस्लामाबाद में होने वाले दक्षेस के विदेश सचिवों के सम्मेलन का भी वहिष्कार किया था । श्रीलंका के विदेश मन्त्री ने पाकिस्तान के विदेश मन्त्री को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि "वे दक्षेस के विदेश सचिव की बैठक में सम्मिलित होने के लिये सक्षम नहीं हैं, क्योकि भारत एवं श्रीलंका के मध्स शान्ति सेना की उपस्थिति के सन्दर्भ में काफी मतभेद उत्पन्न हो गया है ।"[2]

अतः शान्ति सेना की वापसी के प्रश्न पर भारत एवं श्रीलंका के सम्बन्धो में काफी गतिरोध उत्पन्न हो गया था तथा यह समस्या काफी उलझ गयी थी , क्योंकि जो हजारों सैनिक श्रीलंका में हताहत हुये थे उनका बलिदान विल्कुल व्यर्थ चला जाये, यह बात भी किसी को समझ नही आ रही थी । शान्ति सेना श्रीलंका की इच्छा के विना वहाँ और अधिक वनी रहे, इसका भी कोई औचित्य नहीं लग रहा था । अनेक आरोपों एवं प्रत्यारोपों के बाद समस्या को सुधारने की दृष्टि से

1. स्टेट्समैन 14 जुलाई 1989

2. द हिन्दू 28 जून 1989

दोनों देशों ने समझौतावादी तर्क नीति अपनाकर 18 सितम्बर 1989 को शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में ऐ समझौता किया, जिसके अनुसार भारतीय शान्ति सेना 24 मार्च 1990 को पूर्णरूा से भारत वापस आ चुकी है तथा एक बार फिर स्थिति बिगड़ते–बिगड़ते सभल गयी ।

अतः स्पष्ट है कि तमिल समस्या के समाधान के लिये भारत एवं श्रीलंका द्वारा जो भी प्रयास किये गये हैं उनके द्वारा कभी–कभी समस्या का समाधान होने के स्थान पर समस्या की जटिलता में ही बृद्धि हुई है, इसके लिये दोनों ही पक्ष दोषी हैं । जहाँ एक तरफ श्रीलंका ने समझौतों को लागू करने में ईमानदारीपूर्ण नीति का अनुसरण नहीं किया है वहीं भारत ने भी कभी–कभी आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप किया है । 1983 से पूर्व भारत एवं श्रीलंका के मध्य नागरिकता प्रदान करने के अतिरिक्त और कोई समस्या नहीं थी, क्योंकि इस समय तक श्रीलंका के सम्बन्ध में भारत की नीति तटस्थता की थी । 1983 से ही तमिलों एवं सिंहलियों के बीच होने वाले दंगों एवं सेना द्वार तमिलों पर किये गये अत्याचारों ने भारत को तमिलों की मध्यस्थता के लिये विवश कर दिया, परिणामस्वरूप श्रीलंका ने भारत पर आन्तरिक विषयों पर हस्तक्षेप का आरोप लगाना प्रारम्भ कर दिया । 1987 के समझौते के अनुसार भारत ने अपनी स्थिति को मध्यस्थ के स्थान पर जिम्मेदार के रूप में परिणित कर लिया तथा समझौते में अपने को पूर्णतः बाँध लिया । समझौते के अनुसार श्रीलंका में भारतीय शान्ति सेना की उपस्थिति ने समस्या को एक और नया मोड दे दिया था अतः दोनों देशों द्वारा किये गया प्रयासों से समस्या ने अनेक रूप लिये तथा समस्या की जटिलता मे वृद्धि की है ।

वर्तमान स्थिति

वर्तमान समय में भारत में राष्ट्रीय मोर्चा की नयी सरकार का गठन हो चुका है तथा श्रीलंका से भारतीय शान्ति सेना की सम्पूर्ण वापसी हो चुकी है, लेकिन फिर भी श्रीलंका के उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में हिंसात्मक गतिविधियाँ जारी है । तमिल उग्रवादी संगठन लिट्टे एवं श्रीलंका सरकार का अवसरवादी गठबन्धन टूट चुका है । लिट्टे ने प्रथक तमिल ईलम कीमाँगें का स्वर तीव्र करके हिंसात्मक गतिविधियाँ जारी कर दी हैं तथा श्रीलंका सरकार ने लिट्टे की हिंसात्मक कार्यवाही के प्रति दमनात्मक नीति अपनाते हुये तमिल वाहुल्य पूर्वोत्तर प्रान्त में सैनिक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी है ।

भारत में नयी सरकार के गठन के उपरान्त श्रीलंका सरकार एवं तमिल उग्रवादी संगठन लिट्टे दोनों ने ही भारत सरकार से सम्बन्ध सुधार के प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे । श्रीलंका के अधिकांश उच्च अधिकारियों का मत है कि भारत की वर्तमान सरकार के साथ उनके अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो सकेगें । श्रीलंका के विदेशमन्त्री ने एक वक्तव्य में कहा कि उनका देश भारत के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का आकांक्षी है । लिट्टे के प्रमुख वी० प्रभाकरन ने भारत के प्रधानमन्त्री श्री वी० पी० सिंह को बधायी पत्र भेजा तथा साथ में भारत के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धों को स्थापित करने की आकांक्षा भी व्यक्त की । लिट्टे ने नये प्रधानमन्त्री से राजनीतिक अपराधियों को छोड़ने का अनुरोध किया था । उन्होंने भारत सरकार को एक पत्र में लिखा कि "हम आपका ध्यान तमिल राजनीतिक बन्दियों एवं लिट्टे के व्यक्तियों की ओर आकर्षित करना चाहते है जो भारतीय सेना के शिवरों में बन्दी हैं तथा कष्ट सह रहे है ।"[1]

दिसम्बर 1989 में श्रीलंका के विदेशमन्त्री रंजनविजयरत्ने भारत यात्रा पर आये थे तथा उन्होंने भारत सरकार से 4 फरवरी 1990 तक शान्ति सेना की पूर्णरूप से वापसी का अनुरोध किया था तथा भारत सरकार पर यह आरोप लगाया था कि शान्ति सेना

---

1. आई० डी० एस० ए० साउथ एशिया जनवरी 1990, पृष्ठ - 83

ई० पी० आर० एल० एफ० सरकार को अनेक प्रकार के हथियार देकर सहयोग कर रही है ।[1]

भारत के विदेशमन्त्री श्री आई० के० गुजराल ने इस बात पर खेद व्यक्त किया तथा श्री विजयरत्ने को आश्वासन दिया कि वे इस विषय का अबलोकन करेंगें । इसके साथ ही प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने श्रीलंका के मन्त्री से कहा था कि "उनकी सरकार शान्ति सेना की शीघ्र वापसी के सन्दर्भ में निर्णय कुछ विषयों पर अवलोकन करने के बाद ही लेगी, विशेषत: उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में सभी की सुरक्षा की दृष्टि में रखते हुये ।[2]

श्रीलंका से भारतीय शान्ति सेना की वापसी पूर्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी द्वारा शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में किये गये समझौते के अनुसार हो रही थी । भारतीय शान्ति सेना जिन क्षेत्रों को खाली कर रही थी, उन क्षेत्रों पर लिट्टे अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहा था । उत्तरी-पूर्वी प्रान्त के मुख्य मन्त्री श्री पेरूमल शान्ति सेना की वापसी के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि शान्ति सेना की वापसी के बाद उन्हें अपनी सरकार के अस्तित्त्व के सन्दर्भ में खतरा नजर आ रहा था । श्री पेरूमल ने एक वक्तव्य में कहा कि "यदि नयी दिल्ली उनकी सरकार को अधिकार दिलाने में असमर्थ है तो वे भी प्रथक राज्य की माँग का समर्थन करेंगे ।" उन्होंने कहा कि "उन्होंने तथा उनके साथियों ने लोकतंत्रिक प्रणाली का अनुसरण इस आधार पर किया था कि तमिल अल्पसंख्यकों को स्वयत्तता प्रदान की जायेगी । यदि भारत सरकार उनके अधिकार दिलाने में असमर्थ है तो उसे उनकी पुरानी प्रथक तमिल ईलम की माँग का समर्थन करना चाहिये ।"[3]

तमिल उग्रवादी संगठन लिट्टे एवं श्रीलंका सरकार प्रारम्भ से ही उत्तरी-पूर्वी प्रान्त की सरकार के पक्ष में नहीं थे । शान्ति सेना की वापसी के बाद वे प्रान्तीय परिषद को भंग करके पुन: चुनाव कराने की योजना बना रहे थे । मुक्ति चीतों ने लोकतान्त्रिक प्रणाली का अनुसरण

---

1. आई० डी० एस० ए० साउथ एशिया जनवरी 1990, पृष्ठ – 83
2. नेशनल हेरल्ड दिसम्बर 9, 1989
3. राइजिंग नेपाल 10 जनवरी 1990

करने के वक्तव्य के साथ अपनी राजनीतिक शाखा पीपुल फ्रन्ट ऑफ लिपरेशन टाइगर्स का गठन किया । शान्ति सेना इस समय जिन क्षेत्रों को खाली कर रही थी उन क्षेत्रों में हिंसात्मक गतिविधियाँ जारी थी । श्रीलंका के विपक्षी दल के सदस्य एवं विभिन्न तमिल गुट सरकार से इस क्षेत्र में पूर्ण रूप से शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना की माँग कर रहे थे ।

फरवरी 1990 के द्वितीय सप्ताह में भारत के तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एम० करूणानिधि में श्रीलंका के पूर्वोत्तर प्रान्त ने शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना हेतु लिट्टे सहित श्रीलंका के अन्य तमिल गुटों के साथ विचार-विमर्श करना प्रारम्भ कर दिया था । लिट्टे पूर्वोत्तर प्रान्त की परिषद को भग करने के पक्ष में था, जबकि ई० पी० आर० एल० एफ० के सदस्य अपनी परिषद को भंग नहीं करना चाहते थे । ई० पी० आर० एल० एफ० के सदस्य के० साधन ने मुख्यमन्त्री करूणानिधि से कहा कि "हमारे विचार में प्रान्तीय परिषद को भंग करना मुख्य विषय नहीं है, वरन् मुख्य विषय है अधिकारों की प्राप्ति"[1] उत्तरी पूर्वी प्रान्त के मुख्यमन्त्री श्री पेरूमल ने प्रान्तीय परिषद को भंग करने का विरोध करते हुये कहा कि इससे श्रीलंका सरकार सत्तर के हस्तान्तरण में और अधिक देर लगायेगी । उन्होंने श्रीलंका सरकार पर आरोप लगाते हुये कहा था कि "श्रीलंका सरकार ने हमारी स्थिति को कमजोर करने के लिये लिट्टे को अपनी तरफ कर लिया है यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होगा यदि करूणानिधि उनकी बात समझने में असफल रहे ।"[2] इसके साथ ही श्री पेरूमल प्रान्तीय परिषद को भंग करने के स्थान पर अपनी कुछ मागें रखी थी, जिन्हे श्रीलंका सरकार ने अस्वीकार कर दिया था । करूणानिधि द्वारा किये गये प्रयासों का भी कोई परिणाम नहीं निकला था ।

2 मार्च 1990 को पूर्वोत्तर प्रान्तके मुख्यमन्त्री श्री पेरूमल ने अचानक अपनी परिषद को लोकतान्त्रिक ईलम गणराज्य की नेशनल ऐसेम्बली घोषित कर दिया था । श्री पेरूमल की इस घोषणा से अधिकांश सिंहली एवं तमिल राजनीतिज्ञ चकित रह गये थे तथा किसी ने भी इसका

1. हिन्दू 20 फरवरी 1990
2. द टाइम्स ऑफ इण्डिया 20 फरवरी 1990

समर्थन नहीं किया था । भारत ने भी स्पष्ट कर दिया था कि श्रीलंका में तमिलों के एक समूह द्वारा ईलम (स्वतन्त्र राष्ट्र) की घोषणा का समर्थन वह नहीं करेगा क्योंकि भारत ने सदैव श्रीलंका की एकता तथा सार्वभौमिकता का समर्थन किया है ।[1]

श्री पेरूमल ने स्वतन्त्र राज्य की घोषणा करने के उपरान्त मुक्ति चीतों का आवाहन किया कि वे भी इसमें सम्मिलित हो, क्योकि दोनों का उद्देश्य स्वतन्त्र तमिल राष्ट्र बनाना है । उन्होंने एक वक्तव्यमें कहा कि "उन्होंने स्वतन्त्र तमिल राज्य की घोषणा इसलिये की क्योंकि भारत अखण्ड श्रीलंका के अन्तर्गत तमिल अल्पसख्यकों की समस्या समाधान करनें में असमर्थ रहा है ।"[2] श्री पेरूमल की घोषणा को किसी ने भी गम्भीरता से नहीं लिया, क्योंकि सभी यह जानते थे कि भारतीय शान्ति सेना के संरक्षण एवं प्रोत्साहन में चुनाव से बनी पेरूमल की सरकार में न तो ईलम बनाने की इच्छा है और न ही ताकत । वे मुक्ति चीतों से अपनी जान बचाने के लिये उन्हीं के उद्देश्य की घोषण कर रहे थे, जबकि मुक्ति चीतों को ईलम बनाने के लिये पेरूमल जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं थी ।

मार्च 1990 के द्वितीय सप्ताह में पूर्वानुमान के अनुसार श्री पेरूमल श्रीलंका से पलायन कर गये थे । श्रीलंका के उत्तरी पूर्वी प्रान्त की राजधानी त्रिकोमाली पर भारतीय शान्ति सेना के हटते ही मुक्ति चीतों ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था तथा भारत 31 मार्च 1990 से पूर्व ही अपनी शान्ति सेना श्रीलंका से हटाने के निश्चय पर अडिग था । इसीकारण तमिलों में आतंक फैला हुआ था । हजारों की संख्या में तमिल शरणार्थी भारतीय शान्ति सेना की वापसी के पूर्व ही भारत आ रहे थे । शान्ति सेना की वापसी तमिलों में असुरक्षा उत्पन्न कर रही थी, इसीकारण श्री पेरूमल एवं उनके साथियों ने भी श्रीलंका छोड़ दी थी । समाचार पत्रों ने श्री पेरूमल के श्रीलंका छोड़ने के सन्दर्भ में उनका यह वक्तव्य प्रकाशित किया था "शान्ति सेना के लौटने के बाद यहाँ रूकना कोई विकल्प नहीं है । मै भोजन नहीं हूँ । मैं नहीं चाहता कि मेरी हत्या की

---

1. जनसत्ता 2 मार्च 1990
2. इण्डियन एक्सप्रेस 5 मार्च 1990

जाये, लेकिन मेरे जाने से तमिल समस्या सुलझाने में कठिनायी आयेगी ।" उन्होंने कहा कि "हमारा आगे का संघर्ष गुप्त है, यदि मै कुछ समय के लिये देश से बाहर रहता हूँ तो भी ईलम का संघर्ष जारी रहेगा ।[1] श्री पेरूमल के श्रीलंका छोड़ने से उत्तरी-पूर्वी प्रान्त के प्रशासन में पूर्ण रूप से शून्यता सी आ गयी तथा इसका प्रशासन अप्रत्यक्ष रूप से मुक्ति चीतों द्वारा सभाँल लिया गया था ।

24 मार्च 1990 को शान्ति सेना की पूर्ण रूप से श्रीलंका से वापसी सम्पन्न हो गयी थी । शान्ति सेना ने श्रीलंका में 31 माह 24 दिन गुजारे । इतने समये में 1157 शान्ति सैनेकी शहीद हुये तथा 2984 घायल हुये । इसके अतिरिक्त लगभग एक अरब रूपये इन सैनिकों पर भारत ने खर्च किये । लिट्टे ने शान्ति सेना द्वारा खाली किये गये क्षेत्रों पर अपना अधिपत्य स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था । लिट्टे ने शान्ति सेना की वापसी के बाद भी हथियार डालने से मना कर दिया था, क्योकि उसका मत था कि उत्तरी-पूर्वी प्रान्त की सुरक्षा का भार उसके कन्धों पर है इसलिये हथियार रखने जरूरी है । शान्ति सेना की वापसी से तमिलों में आतंक सा छा गया था । अनेक तमिल शरणार्थी भारत आ रहे थे, इन शरणार्थियों में ई० पी० आर० एल० एफ के सदस्य सर्वाधिक थे । भारत सरकार को इन शरणार्थियों के आगमन के कारण अनेक समस्याओं की सामना करना पड़ रहा था ।

शान्ति सेना की वापसी के बाद कुछ समय के लिये श्रीलंका में स्थिति सामान्य रही । लिट्टे ने समस्या समाधान के सन्दर्भ में विचार विमर्श करने के लिये अपनी सहमति प्रकट की थी तथा उसने अपना राजनीतिक संगठन पीपल फ्रंट ऑफ लिवरेशन टाइगर्स गठित करके चुनाव लड़ने की भी घोषणा कर दी थी । लिट्टे के नेता श्री बलसिंहम ने एक वक्तव्य में कहा था "कि श्रीलंका मुक्ति चीतों के साथ दूसरा युद्ध करने का जोखिम नहीं उठा सकता। मानवाधिकार सम्बन्धी अपना रिकार्ड यह और अधिक दागदार नहीं बनायेगा । श्रीलंका की सेना हमें नहीं रोक सकती, इसलिये सबसे अच्छा यह है कि नये तरीके के साथ हमसे सम्बन्ध स्थापित किये जाये ।"[2]

---

1. जनसत्ता 12 मार्च 1990
2. नवभारत टाइम्स 30 जून 1990

लिट्टे की इस प्रकार की गतिविधियों एवं विचारों से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह अब समस्या के शान्तिप्रिय समाधान का आँकाक्षी है लेकिन वास्तव में यह उसका मात्र आडम्बर था । इस प्रकार के विचारों की आड़ में वह अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने में लगा हुआ था ।

शान्ति सेना की वापसी के बाद कुछ समय के लिये ऐसा प्रतीत हुआ कि अब भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में कुछ सुधार होगा, लेकिन इसी बीच श्रीलंका सरकार ने पुरानी नागरिका की समस्या को उठाकर दोनों देशों के बीच कुछ तनाब उत्पन्न करने का प्रयास किया । श्रीलंका के बगान उद्योगमन्त्री श्री रजन विजयरत्ने ने एक वक्तव्य में कहा कि "भारत सरकार को उन सभी एक लाख से अधिक तमिल बागान श्रमिकों को भारत प्रत्यावर्तित कर लेना चाहिये, जिन्होने लगभग तीन दशक पूर्व भारतीय नागरिकता की प्राप्ति हेतु आवेदन किया था ।"[1] इसके विपरीत श्रीलंका के ग्राम्य उद्योग विकास मन्त्री तथा भारतीय बगान श्रमिकों के संगठन "सीलोन मजदूर कांग्रेस" नेता श्री एस0 थोन्डामन ने श्रीलंका की सरकार को एक सुझाब दिया कि "श्रीलंका समझौते के अनुसार भारत प्रत्यावर्तित होने वाले भारतीय मूल के तमिल श्रमिकों को तब तक श्रीलंका के निवासी के रूप में रहने की अनुमति को तब तक श्रीलंका के निवासी के रूप में रहने की अनुमति होनी चाहिये, जबतक जातीय समस्या के भय के कारण 1983 से भारत आये हुये तमिल शरणार्थियों को श्रीलंका सरकार वापस न ले ले ।"[2]

भारत सरकार ने मई 1990 मे प्रथम सप्ताह में दोनों देशों के नागरिकों के प्रत्यावर्तन के सन्दर्भ में विचार विमर्श करने के इच्छा की । जुलाई 1987 के भारत-श्रीलंका शान्ति समझौते के अन्तर्गत ही दोनों देशों द्वारा यह निश्चित किया गया था कि श्रीलंका में भारतीय मूल के व्यक्तियों की तथा भारत में श्रीलंका के शरणार्थियों की संख्या लगभग सामान्य है, इसलिये दोनों देश प्रत्यावर्तन का कार्य समान रूप से करेगें, लेकिन भारत सरकार के एक प्रवक्ता ने कहा कि "परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण भारत इस सन्दर्भ में पुनः विचार विमर्श करना चाहता है।"

श्रीलंका में वर्तमान समय में लगभग 86,000 व्यक्ति ऐसे है, जिन्होंने शास्त्री सिरामाओ समझौते के अन्तर्गत भारतीय नागरिकता की प्राप्ति हेतु आवेदन किया था । लम्बे समय

1. इण्डियन एक्सप्रेस 2 मई 1990
2. वही ।

अन्तराल के कारण इनमें से बहुत से व्यक्ति अब भारत नहीं आना चाहते हैं । शास्त्री-सिरामाओं समझौते में पन्द्रह वर्षों का समय प्रत्यावर्तन के लिये निर्धारित किया गया था, लेकिन इस अवधि के अन्दर प्रत्यावर्तन सम्भव नहीं हो सका तथा अब परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन होने के कारण वे व्यक्ति भारत नहीं आना चाहते जिन्होंने भारतीय नागरिकता की प्राप्ति हेतु लगभग तीन दशक पूर्व आवेदन किया था ।

श्रीलंका के बगान उद्योग मन्त्री श्री रंजन विजयरत्ने ने श्रीलंका से आने वाले तमिल शरणार्थियों की वापसी के सम्बन्ध में तर्क देते हुये कहा था "हम श्रीलंका के तमिल शरणार्थियों को भारत कभी नहीं भेजते । भारत उन्हें स्वेच्छा से स्वीकार करता है, इसलिये यह भारत सरकार का कर्तव्य है कि वह श्रीलंका के तमिल शणार्थियों को वापस श्रीलंका भेजे ।"[1] श्रीलंका सरकार का मत है कि 1964 के शास्त्री सिरामाओं समझौते के अनुरूप श्रीलंका से लगभग 1,00,000 भारतीय मूल के तमिल व्यक्तियों की वापसी के सन्दर्भ में भारत द्वारा असमर्थता प्रकट करना 1987 के शान्ति समझौते की भावनाओं के अनुरूप नहीं है । श्रीलंका के बागान उद्योग मन्त्री श्री विजयनत्ने ने भारत पर आरोप लगाते हुये कहा "कि भारत ने 1987 के समझौते को पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जबकि श्रीलंका ने समझौते की भावनाओं का आदर करते हुये इसकी सभी धाराओं को पूर्ण करने का प्रयास किया है ।" भारत श्रीलंका के तमिल शरणार्थियों की वापसी के सन्दर्भ में श्री विजयरत्ने का मत था कि भारत सरकार को श्रीलंका के तमिल शरणार्थियों को इस विश्वास के आधार पर वापस भेजना चाहिये कि इस द्वीप में पुनः शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित हो गयी है ।

श्रीलंका में भारतीय उपउच्चायुक्त श्री पी० राब ने श्रीलंका से प्रत्यावर्तित होने वाले भारतीय मूल के व्यक्यितों के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुये कहा था कि भारती मूल के एक लाख व्यक्तियों के भारत प्रत्याबर्तन के साथ ही भारत से श्रीलंका के तमिल शरणार्थियों की वापसी होनी चाहिये । 1987 में हुये शान्ति समझौते में भी इस तथ्य को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया गया था ।

1. हिन्दुस्तान टाइम्स 4 मई 1990
2. वही ।

शास्त्री – सिरामाओं समझौते के अन्तर्गत भारत (छ:) 6 लाख भारतीय मूल के व्यक्तियों को नगरिकता प्रदान करने के लिये सहमत हुआ था तथा श्रीलंका ने 3 लाख 74 हजार व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने की स्वीकृति दी थी । छ: लाख व्यक्तियों में से केवल 5.06लाख व्यक्तियों ने भारतीय नागरिकता की प्राप्ति हेतु आवेदन किया था । 1986 में श्रीलंका सरकार ने बचे हुये 94,000 व्यक्तियों को नागरिकला प्रदान करने की स्वीकृति दी थी, जिसके परिणामस्वरूप भारत श्रीलंका को 4.69 लाख व्यक्तियों को नागरिंगता प्रदान करनी थी । भारत की नागरिकता प्राप्ति हेतु जिन 5.06 लाख व्यक्तियों ने आवेदन किया था उनमें से 4 लाख व्यक्तियों को भारत की नागरिकता प्रदान की गयी तथा एक लाख व्यक्तियों के आवेदन पत्र अनेक त्रुटियों के कारण निरस्त कर दिये गये थे । भारत ने जिन 4 लाख व्यक्तियों को भारत की नागरिकता प्रदान की थी, उनमें से 3.16 लाख व्यक्ति भारत वापस आ चुके थे । 1984 से श्रीलंका के उत्तरी–पूर्वी प्रान्त में होने वाली आतंकबादी गतिविधियों के कारण बचे हुये 84,000 व्यक्तियों का भारत प्रत्यावर्तन रूका रहा । 84,000 व्यक्तियों की संख्या स्वाभाबिक रूप से बढ़ कर अब एक लाख हो गयी है ।[1]

श्रीलंका सरकार अब 26 वर्ष बाद भारत को उस विस्मृत समझौते को लागू करने के लिये दवाब डाल रही है तथा श्रीलंका ने भारत को धमकी दी है कि वह भारत के उड़ीसा प्रान्त में बसे 90,000 तमिलों को श्रीलंका में वापस नहीं लेगा, जबकि भारतीय प्रधानमन्त्री श्री वी0 पी0 सिंह का कहना है कि श्रीलंका को अपने शरणार्थी वापस लेने होगे । 90,000 व्यक्तियों का भविष्य अधर में लटका है, उन्हें न श्रीलंका लेना चाहता है और न ही भारत ।

श्रीलंका के तमिल उग्रवादी संगठन लिट्टे द्वारा भी श्रीलंका सरकार के उस वक्तव्य की कड़ी आलोचना की गयी थी, जिसमें उसमें भारत सरकार पर एक लाख तमिल श्रमिकों को भारत प्रत्यावर्तन के लिये दबाब डाला था । लिट्टे ने श्रीलंका सरकार से इस कथन पर पूर्नविचार करने के अनुरोध करने के साथ कहा था कि "सभी भारतीय मूल के बगान श्रमिक इस द्वीप के नागरिक है, इसलिये उन्हें शीघ्र ही श्रीलंका की नागरिकता प्रदान की जानी चाहिये ।"[2] अत: नागरिकता प्रदान

1. इण्डियन एक्सप्रेस 9 मई 1990
2. हिन्दुस्तान टाइम्स 11 मई 1990

करने के सन्दर्भ में ऐकबार फिर भारत एवं श्रीलंका के बीच मतभेद उत्पन्न हो गये थे ।

भारतीय शान्ति सेना की वापसी के बाद ऐसा लगता था कि श्रीलंका में शान्ति स्थापित हो जायेगी तथा भारत-श्रीलंका सम्बन्ध प्रगति की ओर अग्रसर हो सकेगें, लेकिन इस विवाद के उत्पन्न होने के बाद भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में पुनः अस्थिरता के बादल मड़राने लगे हैं । 1964 का शास्त्री-सिरामाओं समझौता अपना महत्त्व खो चुका है । 26 वर्षा का समय कम नहीं होता, इतनी लम्बी समय सीमा में बहुत से तथ्य एवं समझौते महत्त्व खो देते हैं । समय एवं परिस्थितियाँ आज भारत के समझौता मानने के पक्ष में नहीं है । परिणामस्वरूप एक बार पुनः नागरिकता की समस्या में भारत - श्रीलंका सम्बन्धों को प्रभावित किया है ।

शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में राष्ट्रपति रणसिंधे प्रेमदास की सरकार एवं लिट्टे नेताओं के बीच जो एकता स्थापित हुयी थी तथा दोनों के बीच जो समझौता वार्तायें चली थी, उनमें शान्ति सेना की वापसी के बाद दरार उत्पन्न होने लगी थी । लिट्टे ने प्रेमदास सरकार द्वारा बुलायी गयी सर्वदलीय बैठक का बहिस्कार कर दिया तथा सशस्त्र संघर्ष की तैयारी में जुट गया था, जिसकी परिणति 11 जून 1990 को लिट्टे द्वारा श्रीलंका की पूलिस पर आक्रमण के साथ हुयी ।

11 जून 1990 से श्रीलंका में हिंसा का एक नया दौर प्रारम्भ हो गया है तथा लिट्टे एवं राष्ट्रपति रणसिंधे के बीच 13 महिने से चल रही समझौता वार्ता समाप्त हो गयी है । लिट्टे ने पुलिस चौकियों पर हमला करके अनेक सिपाहियों का अपहरण कर लिया तथा इनमें से अधिकांश व्यक्तियों को लाइन में खड़ा करके गोली से उड़ा दिया ।[1] श्रीलंका की सेना भी पूरी शक्ति के साथ लिट्टे के विरुद्ध लड़ रही है, कई बार संघर्ष विराम होने के बाद टूट चुका है । अबतक अनके व्यक्तियों की जाने जा चुकी हैं, भीषण युद्ध जारी है । श्रीलंका की सरकार ने भी अपनी सेना की कमान पुराने कूर सेनानायकों के हाथ में सौप दी है । सरकार का कहना है कि जब उसने जे0 वी0 पी0 को पूरी वेरहमी से कुचल दिया है तो अब तमिल अलगाववादियों के निमर्भ संहार में उसे कोई नैतिक संकोच नहीं हो सकता ।

---

1. नवभारत टाइम्स 30 जून 1990
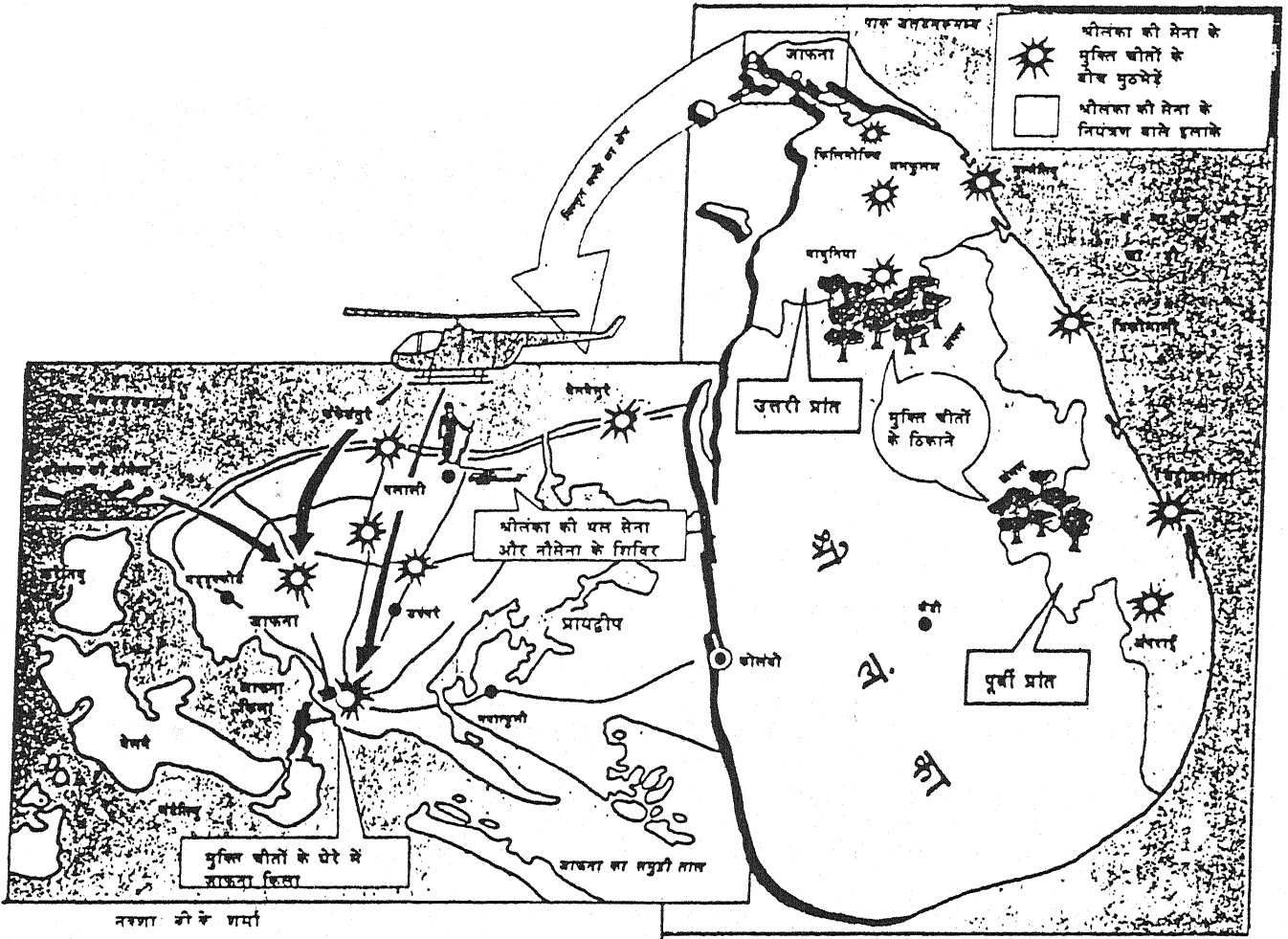
वर्तमान समय में श्रीलंका के उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में चल रहे युद्ध की स्थिति

(साभार इण्डिया टुडे जुलाई 1990)

जातीय संघर्ष के इस बीभत्स दौर में साधारण तमिल नागरिक ही बेमौत मर रहे है। श्रीलंका के पूर्वी एवं उत्तरी प्रान्त में लिट्टे और सरकारी सेना के बीच घमासान युद्ध चल रहा है । पूर्वी प्रान्त में सेना का पलड़ा काफी भारी है, लेकिन उत्तर में लिट्टे की पकड़ बरकरार है । जाफना किले की लिट्टे ने घेराबन्दी कर रखी है पूर्वी भागों में भी शहरों में सेना का वर्चस्व है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी लिट्टे अपना प्रभुत्वबनाये हुये हैं । लिट्टे के प्रमुख पी0 प्रभाकरन में एक वक्तव्य में कहा कि "मुझे पक्का विश्वास है कि केवल एक प्रथक तमिल ईलम राज्य की स्थापना से ही समस्या का हल निकल सकता है । संदेश के एक बिन्दु के बिना मैं प्रथक तमिल ईलम को प्राप्त करने के उद्देश्य से लगातार संघर्ष जारी रखूगा । संघार्ष का स्वरूप बदल सकता है । मैंगर हमारे संघर्ष का उद्देश्य नहीं बदल जा रह है।"[1]

अब यह स्पष्ट हो चुका है कि कोलम्बों एवं लिट्टे की दोस्ती महज एक ढोंग थी और दोनों ही अन्दर-अन्दर युद्ध की तैयारी कर रहे थे । लिट्टे का यह गणित था कि शान्ति सेना को हरा पाना तो नामुमकिन है, इसलिये पहले इससे छुटकारा पा लिया जाये और फिर वह अन्य तमिल उग्रवादी संगठनों को ठिकाने लगाकर तमिलों का एकमात्र प्रवक्ता बन जायेगा । जिस दिन से शान्ति सेना हटी है उसी दिन से मुक्ति चीते सक्रिय हो गये थे । बालू की बोरियों से बने बंकरों की जगह पक्के बंकर बनाये गये, महत्वपूर्ण स्थानों पर सुरंगे विछा दी गयी तथा 10 से 15 वर्ष के लड़कों की भर्ती का अभियान छेड़ दिया गया और भारी मात्रा में सूखी रसद तथा गोला बारूद जमा कर लिया गया था ।[2] अत: श्रीलंका का वर्तमान युद्ध पूर्णत: पूर्व नियोजित है, इसलिये दोनों ने आर-पार की लड़ाई लड़ने की ठान रखी है ।

1987 के समझौते के आधार पर चुनी हुयी उत्तरी-पूर्वी प्रान्तीय परिषद को प्रेमदास सरकार ने भंग कर दिया है तथा जनता के समक्ष यह तथ्य रखा है कि उनकी सरकार ने लिट्टे की माँग के अनुसार परिषद को भंग कर दिया है अब लिट्टे युद्ध बन्द करके नये चुनाव कराने

---

1. दिनमान टाइम्स 12 - 18 अगस्त 1990
2. इण्डिया टूडे 15 जुलाई 1990

का अवसर प्रदान करे, लेकिन लिट्टे की यह इच्छा नहीं है । वह तो आत्मघाती युद्ध आखरी क्षण तक लड़ने के लिये कमर कस चुका है, अर्थात् परिषाद का पुन: चुनाव होने की दूर तक सम्भावना नहीं है । अभी तो चुनाव अनिश्चित काल के लिये स्थगित किये गये है, लेकिन कुछ दिनों बाद परिषाद का विचार ही त्याग दिया जायेगा ।

प्रेमदास ने श्रीलंका में हिंसा की राजनीति को चलाते हुये अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार अभियान छेड़ दिया है । उन्होंने प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह एवं इन्द्रकुमार गुजराल को यह विश्वास दिलया है कि उनकी लड़ाई लिट्टे के विरुद्ध है न कि तमिलों के विरोध में । प्रेमदास ने इसके साथ ही यह घोषणा कर दी है कि लिट्टे से कोई भी वार्ता अब अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की उपस्थिति में ही होगी । यही प्रेमदास छ: माह पूर्व कह रहे थे कि तमिल समस्या श्रीलंका की आंतिरिक समस्या है और इसमें किसी तीसरे पक्ष को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । वास्तव में प्रेमदास का लक्ष्य उस समय भारत को अपने रास्ते से हटाना था और आज भी वहीं है ।

वर्तमान समय में श्रीलंका में घटनाक्रम एक पूरा चक्कर काट कर वही वापस आ पहुँचा है, जहाँ तीन वर्ष पूर्व था । अर्थात् श्रीलंका की सेना एवं लिट्टे आमने सामने हैं तथा दोनों ही एक दूसरे के खून के प्यासे हैं । ऐसी स्थिति में ही भारत ने श्रीलंका में हस्तक्षेप किया था, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय शान्ति सेना वहाँ गयी थी तथा अपने दो हजार जवानों एवं लगभग एक अरब रू0 की बलि श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता के लिये चढ़ा दी थी । भारत आज श्रीलंका में उन्हीं दृश्यों की पुनरावृत्ति देख रहा है, जिनसे परेशान होकर भारत ने श्रीलंका के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप किया था ।

भारत वर्तमान समय में अपने को पुन: किंकर्तव्यमूढ़ पा रहा है अगर श्रीलंका की सेना मुक्ति चीतों पर दबाब बढ़ाने में सफल हो जाती है, तो वे वहाँ से भाग कर भारत के तमिल वाहुल्य क्षेत्र में उत्पात मचायेगे और श्रीलंका में निर्दोष तमिलों का जीवन श्रीलंका की सेना और कठिन कर देगी और यदि कहीं श्रीलंका के पूर्वोत्तर प्रान्त में ईलम का सपना सरकार हो गया,

तो इस बात की क्या प्रमाण है कि उन्हीं क्षेत्रों में एक वृहत्तर ईलम का नारा बुलन्द नहीं हो जायेगा उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में जो हिंसा का विस्फोट हुआ है वह वास्तव में ईलम के दुस्वप्न का विस्फोट है ।

अतः वर्तमान समय में श्रीलंका हिंसा की त्रासदी से शिकस्त है श्रीलंका की सेना एवं लिट्टे युद्ध के मैदान में आमने-सामने है, दोनों ही एक-दूसरे के प्रति विध्वंसक तरीको को अपना रहे है तथा समस्या समाधान के दूर-दूर तक कोई संकेत नहीं मिल रहे हैं ।

****

चतुर्थ अध्याय

भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में अन्य प्रमुख समस्यायें

भारत एवं श्रीलंका सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है कि एक देश का घटनाक्रम दूसरे देश को प्रभावित किये विना नहीं रहता । भारत एवं श्रीलंका के मध्य सामाजिक धार्मिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक समीपता जहाँ एक ओर दोनों देशों के मध्य मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक रहती है, वहीं यह समीपता समय-समय पर कई समस्याओं का कारण भी रही है । भारत श्रीलंका सम्बन्धों के निर्धारण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या श्रीलंका में बसे भारतीय तमिल प्रवासियों से सम्बन्धित है, लेकिन इसके साथ ही भौगोलिक, सामरिक एवं आर्थिक समस्याओं ने समय-समय पर भारत – श्रीलंका सम्बन्धों को प्रभावित किया है । इन समस्याओं का समाधान करने के लिये भारत एवं श्रीलंका द्वारा समय-समय पर प्रयास भी किये गये, जिनके परिणामस्वरूप कुछ समस्याओं का समाधान भी कुछ सीमा तक सम्भव हुआ, लेकिन अभी भी भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध समस्या रहित नहीं है, इन सम्बन्धों में कुछ समस्याये अभी भी अपना अस्तित्व बनाये हुये है ।

भौगोलिक समस्या (कच्छतिबु की समस्या)

श्रीलंका भारत के दक्षिण में स्थिति एक छोटे से आकार का द्वीप है, जो हिन्दमहासागर में भारत की भौगोलिक सीमाओं के अति समीप स्थित है तथा भारत से 22 कि0मी0 के छोटे से समुदी मार्ग पाक जल संयोजक द्वारा विभाजित है । भौगोलिक समीपता के कारण ही भारत एवं श्रीलंका आर्थिक सामरिक, सांस्कृतिक एवं प्रजातीय आधार पर एक दूसरे से प्रभावपूर्ण ढ़ंग से सम्बन्धित है । भारत एवं श्रीलंका के मध्य भौगोलिक समीपता दोनों देशों के मध्य प्रभावपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के साथ ही विवाद का कारण भी रहीं है । भारत एवं श्रीलंका के समुद्री तटों के समीप स्थित कच्छतिबु द्वीप मुख्य रूप से भौगोलिक विवाद का कारण रहा है ।

कच्छतिबु द्वीप भारत एवं श्रीलंका के समुद्री तटों के बीच पाक जल संयोंजक में स्थित है । इसका क्षेत्रफल एक वर्गमील है । यह भारत से 22 कि0 मी0 तथा श्रीलंका से 18 कि0 मी0 दूर स्थित है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व 1921 में इस द्वीप के सम्बन्ध में सर्वप्रथम विवाद हुआ था तथा तत्कालीन भारत सरकार ने मूंक भाव से इस द्वीप पर सीलोन का अधिपत्य स्वीकार कर लिया था । 25 अक्टूबर 1921 को कोलम्बों में भारत एवं सीलोन सरकार का एक सम्मेलन सम्पन्न हुआ, जिसमें दोनों देशों के मध्य पाकजल संयोजक एवं मन्नार की खाड़ी में सीमा रेखा निश्चित होनी थी । इस समझौते के अनुसार कच्छतिबु सीलोन को दे दिया गया, लेकिन मद्रास सरकार ने एक वक्तव्य में यह जोड़ दिया कि यह समझौता विना किसी राष्ट्रसम्बन्धी दावे के सम्पन्न हुआ है । भारत सरकार द्वारा इस द्वीप पर अधिपत्य का दावा किया जा सकता है । द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सीलोन के तत्कालीन गर्वनर जनरल के आदेशानुसार कच्छतिबु द्वीप का प्रयोग समुद्री बमबारी की प्रक्रिया के अभ्यास के लिये किया गया था ।[1]

---

1. कोडीकारा "इण्डिया एण्ड सीलोन" पृष्ठ – 59
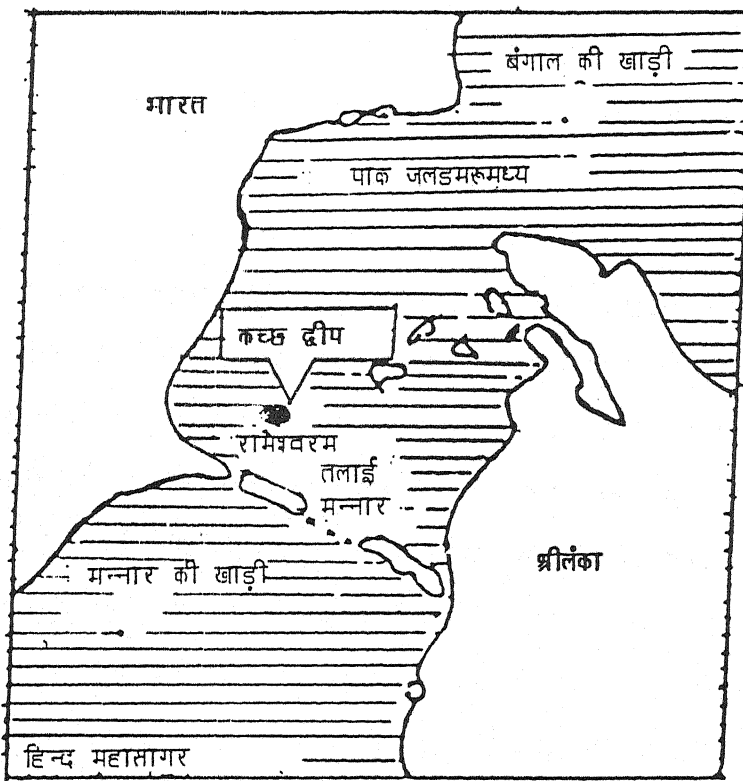
भारत एवं श्रीलंका के समुद्री तटों के बीच स्थित कच्छतिवु द्वीप

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1949 में भारत सरकार द्वारा समुद्री बमबारी एवं गोलीबारी के अभ्यास के लिये कच्छतिबु के उपयोग के सम्बन्ध में श्रीलंका सरकार को सूचित किया, इस पर श्रीलंका सरकार ने कहा कि "कच्छतिबु द्वीप सीलोन की सम्प्रभुता के अधीन है यदि भारत सरकार इसका प्रयोग करना चाहती है तो उसे सीलोन से इसके प्रयोग के लिये अनुमति लेनी चाहिये।[1] भारत सरकार ने इस पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तथा यह विषय कुछ समय के लिये टल गया ।

1955 में श्रीलंका की सरकार ने इस द्वीप पर बमबारी के अभ्यास के उपयोग के लिये प्रश्न उठाया तथा भारत सरकार से सामान्य सुरक्षा हेतु सहयोग मांगा, लेकिन भारत सरकार ने इसका कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया । 1956 के प्रारम्भ में भारत एवं श्रीलंका के मध्य कच्छतिबु के सम्बन्ध में सर्वप्रथम विवाद उत्पन्न हुआ । मार्च 1956 में श्रीलंका की सरकार ने भारत सरकार को यह सूचित किया कि कच्छतिबु द्वीप श्रीलंका द्वारा गोलीबारी एवं बमबारी के अभ्यास के लिये उपयोग किया जायेगा, इसलिये इस क्षेत्र को हवाई मार्ग के रूप में उपयोग करने वालों को चेतावनी दी जाती हे ।[2] श्रीलंका के समाचार पत्रों ने उसी समय इस तथ्य को भी प्रकाशित किया कि इस द्वीप को पहली अप्रैल 1956 से हवाई अभ्यास के लिये भी उपयोग किया जायेगा । भारत सरकार को जब यह ज्ञात हुआ तो इस द्वीप पर अपने अधिार की पुष्टि की । भारतीय तर्क के अनुसार इस द्वीप पर रामनद के राजा की जमींदारी थी, जिसे जमीदारी उन्मूलन अधिनियत के अन्तर्गत मद्रास सरकार द्वारा ले लिया गया था ।[3] इसलिये इस द्वीप पर भारत सरकार का अधिकार है । श्रीलंका ने भी कच्छतिबु पर अपने ऐतिहासिक अधिपत्य की पुष्टि की । दोनों ही देश इस द्वीप पर अपने अधिकार की पुष्टि करने लगे, जिसमें दोनों के मध्य विवाद उत्पन्न हो गया तथा भारत श्रीलंका सम्बन्धों में गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गयी । भारत के उच्चायुक्त ने श्रीलंका की सरकार से अनुरोध किया कि जब तक अधिकार सम्बन्धी विवाद का कोई निर्णय न हो जाये

---

1. कोडीकार "इण्डिया एण्ड सीलोन" पृष्ठ – 59
2. लोक सभा डिबेट 14 अप्रैल 1956, पार्ट 1, वाल्यूम 2, कोल 2220–22
3. कोडीकार "फॉरेन पॉलिसी ऑफ श्रीलंक" पृष्ठ – 3।

तब तक श्रीलंका इस अभ्यास सम्बन्धी कार्य को स्थगित कर दे ।[1] इस पर श्रीलंका की सरकार का मत था कि कच्छतिबु तो सीलोन के सम्प्रभुता के अधीन ही है, लेकिन अभी प्रस्तावित अभ्यास कार्य के लिये कोई निर्णय नहीं दिया गया है ।

भारत सरकार यद्यपि पूर्ण रूप से कच्छतिबु को अपनी सम्प्रभुता के अधीन मानती थी, लेकिन फिर भी इस द्वीप के कारण श्रीलंका के साथ किसी प्रकार का संघर्ष नहीं करना चाहती थी, क्योंकि इस द्वीप का भारत के लिये कुछ विशेष महत्त्व नहीं था । नेहरू जी ने एक वक्तव्य में इस द्वीप के सम्बन्ध में कहा था "भारत एवं सीलोन के मध्य इस द्वीप के कारण किसी प्रकार के संघर्ष का प्रश्न नहीं उठता है । यह विषय कोई राष्ट्रीय सम्मान का नहीं है विशेषतः हमारे निकटम पड़ोसी सीलोन के साथ ।"[2] यह द्वीप भारत एवं श्रीलंका दोनों के लिये ही बहुत उपयोगी नहीं था, इसलिये दोनों ही देशों ने इस द्वीप के सन्दर्भ में कोई विशेष रूचि प्रदर्शित नहीं की तथा इस विषय पर कोई निर्णय नहीं लिया गया, लेकिन समय-समय पर कच्छतिबु के सम्बन्ध में वार्तायें चलती रही ।

1968 में पुनः कच्छतिबु में सम्बन्ध में भारत एवं श्रीलंका के मध्य कुछ विवाद उत्पन्न हुआ । पाकिस्तान के विधिमन्त्री मो0 जाफर कच्छतिबु होते हुये कोलम्बों आये तथा उन्होंने एक वक्तव्य में कहा कि कच्छतिबु द्वीप वास्तविक रूप में सीलोन के ही अधिकार क्षेत्र में आना चाहिये । श्रीलंका की तत्कालिक सरकार ने कच्छतिबु पर अपना अधिपत्य स्थापित करने की प्रभावी ढ़ंग से कोशिश की, जिसका विरोध भारत सरकार द्वारा किया गया ।[3] अतः एक बार फिर कच्छतिबु को लेकर दोनों देशों में कटुता उत्पन्न हो गयी ।

नवम्बर 1968 में ही श्रीलंका के प्रधानमंत्री भारत आये तथा दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने मृदुनीति अपनाकर अपने देश के समुद्री मार्ग एवं मछुआरों की समस्या को सुलझाने

---

1. द हिन्दू 27 मार्च 1956
2. वही ।
3. एशियन रिकार्डर 18 से 23 नवम्बर 1968, पृष्ठ - 8624

में सहमति प्रकट की । श्री सेनानायेके ने यह घोषित किया कि कच्छतिबु के विषय को शान्तिपूर्ण तरीके से सुलझाया जायेगा, उन्होने इस बात पर संकेत किया कि कच्छतिबु का विषय कोई विशेष विषय नहीं है, बल्कि कुछ गलतफहमियों के कारण विवाद उत्पन्न हो गया है । दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने यह तय किया कि इस विषय को सरकारी स्तर पर सुलझाने में कोई आपत्ति नहीं होगी ।[1]

कच्छतिबु के सम्बन्ध में विचार विमर्श दोनों देशों के नेताओ के मध्य चलता रहा, लेकिन काफी समय तक कोई समझौता नहीं हो पाया था, क्योकि दोनों ही देश इस द्वीप पर अपने अधिकारोंकी पुष्टि करते थे । 1974 में श्रीमती भंडारनायेके की भारत यात्रा के समय इस विषय पर काफी विचार विमर्श हुआ । श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके इस द्वीप पर अपने अधिपत्य की पुष्टि करने के लिये नक्शा प्रकाशन विभाग के अधीक्षक को अपने साथ लायीं थी । श्रीमती भंडारनायके की इस यात्रा के दौरान कच्छतिबु की समस्या समाधान की ओर एक सन्तोषजनक प्रगति हुयी ।

जून 1974 में कच्छतिबु द्वीप की समस्या का समाधान दोनों देशों की पारस्परिक सहमति के आधार पर किया गया । इस समझौते के अन्तर्गत कच्छतिबु द्वीप को श्रीलंका की सम्प्रभुता के अधीन स्वीकार किया गया । इस समझौते पर भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 26 जुलाई 1974 को तथा श्रीमती भंडारनायके ने 28 जुलाई 1974 को हस्ताक्षर किये इस समझौते को भारत एवं श्रीलंका के मित्रता रूपी बन्धन के एतिहासिक पथ की संज्ञा दी गया ।[2]

इस समझौते के आधार पर कच्छतिबु के सन्दर्भ में काफी समय से चली आ रही समस्या का समाधान किया गया था । अभी तक भारत सरकार ने न तो इस द्वीप पर श्रीलंका के अधिपत्य को स्वीकार किया था और न ही अपने अधिकार को प्रभावपूर्ण तरीके से कार्यान्वित करने की कोशिष की थी । इस समझौते के अनुसार भारत में कच्छतिबु पर श्रीलंका की सम्प्रभुता को

---

1. दिनमान दिसम्बर 1968
2. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 169

स्वीकार लिया था । इसके माध्यम से पाक जल संयोजक में उत्पन्न होने वाले आंशिक मतभेदों को भारत ने टालने का प्रयास किया था । कच्छतिबु पर श्रीलंका का अधिकार हो जाने के बाद भी पाक की खाड़ी में भारतीय मछुआरों को निर्विवाद रूप से मछली पकड़ने का अधिकार दिया गया था । इस सम्बन्ध में एक मानचित्र तैयार किया गया था, जिसमें उस भाग को स्पष्ट रूप से अंकित किया गया था जहाँ भारतीय मछुआरों को मछली पकड़ने का अधिकार है ।

अतः भारत ने एक बड़े पड़ोसी देश की भूमिका का निर्वाह करते हुये कच्छतिबु को श्रीलंका को दे दिया था तथा आपसी मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया था ।

भारत एवं श्रीलंका की भौगोलिक सीमायें पाक जल संयोजक द्वारा विभाजित होने के कारण दोनों देशों के मध्य कोई विशेष भौगोलिक विवाद नहीं रहा, केवल कच्छतिबु के अधिपत्य के सन्दर्भ में दोनों देशों में कुछ मतभेद हुआ उसमें भी दोनों देशों ने समझौतावादिता की नीति अपनाकर समाधान कर लिया ।

सामरिक समस्या

भारत के दक्षिण में स्थित श्रीलंका एक द्वीपीय देश है, जो हिन्दमहासागर में भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के अति समीप स्थित है, इसलिये सामरिक दृष्टि से यह द्वीप भारत के लिये अति महत्वपूर्ण है । श्रीलंका भारत की अग्रिम सीमा चौकी के समान है । भारत की अधिकांश समुद्री सीमा खुली एवं असुरक्षित है, यहाँ वायु मार्ग द्वारा बमबारी की जा सकती है । श्रीलंका अपने महत्वपूर्ण बन्दरगाह त्रिकोमाली एवं कोलम्बों सहित भारत भूमि के इतने समीप स्थित होने के कारण भारत की प्रतिरक्षा के लिये बहुत महत्वपूर्ण है । पिछले इतिहास से स्पष्ट है कि हिन्दमहासारगर को नियन्त्रण में रखने वाली महाशक्ति भारत को असुरक्षित एवं परेशान कर सकती है । आज विश्व की समस्त महाशक्तियाँ हिन्दमहासागर में अपनी रूचि प्रदर्शित करती तथा हिन्दमहासागर में अपना पूर्ण नियन्त्रण रखने के प्रयास में है । श्रीलंका की विदेशनीति का झुकाव पूर्णतः अमेरिका की ओर है । श्रीलंका ने त्रिकोमाली बन्दरगाह में अमेरिकी नौसैनिकों एवं युद्धपोतों के लिये सुविधायें देनें की अनुमति देकर भारत के लिये महत्वपूर्ण समस्या उत्पन्न कर दी थी । ये समस्त परिस्थतियाँ भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में उत्पन्न सामरिक समस्या पर दृष्टिपात कराती है।

भारत की 6100 कि0 मी0 लम्बी समुद्री सीमा हिन्दमहागर द्वारा निर्धारित होती है । भारत की लम्बी असुरक्षित समुद्री सीमा के कारण ही ब्रितानी सशक्त नौसेना के बल पर भारत पर लगभग दो सौ वर्षों तक शासन किया । भारत पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लेने के बाद ही साम्राज्यवादी शक्तियों ने एशिया के अन्य देशों पर भी अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया था । हिन्दमहासागर भारत को दक्षिणी पूर्वी एशिया, अफ्रीका एवं आस्ट्रेलिया से जोड़ता है । अतः हिन्दमहासागर पर भारतीय सुरक्षा अत्यधिक निर्भर करती है । स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद हिन्दमहासागर को भारतीय प्रमुत्व का यर्थाथ तत्व माना गया ।[1] हिन्दमहासागर में श्रीलंका को केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है तथा अपने महत्वपूर्ण बन्दरगाह त्रिकोमाली एवं कोलम्बो सहित श्रीलंका भारतीय सुरक्षा का महत्वपूर्ण तत्व है । श्रीलंका में किसी विदेशी शक्ति का आमन्त्राण अथवा कोलम्बो एवं

---

1. के0 वी0 विधा "द नवल डिफेन्स ऑफ इण्डियां" पृष्ठ - 101

त्रिकोमालो पर किसी महाशक्ति का अधिपत्य भारत के लिये सामरिक समस्या उत्पन्न कर देगा । आज विश्व की समस्त महाशक्तियाँ त्रिकोमालो में सैन्य सुविधायें प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील है ।

स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद से ही श्रीलंका की विदेशनीति का झुकाव पश्चिमी गुटों की ओर रहा है । प्रारम्भिक दिनों में ही ब्रिटेन ने श्रीलंका की सहमति से नौसैनिक अड्डे, वायुसेना एवं थल सेना के अड्डे श्रीलंका के क्षेत्र में स्थापित कर लिये तथा श्रीलंका सेना ने भी अपने नौसैनिक अड्डे एवं हवाई अड्डे ब्रिटेन को उपयोग करने की अनुमति प्रदान कर दी।[1] ब्रिटेन का सैनिक अड्डा बनाये रखना श्रीलंका ने अपनी सुरक्षा के लिये महत्वपूर्ण समझा लेकिन श्रीलंका के इस प्रकार के कार्य से भारत अपने को सामरिक दृष्टि से सदैव असुरक्षित महसूस करता रहा । 1950 में श्रीलंका ने कोरिया मार्ग के लिये अमेरिका को अपने बन्दरगाह उपयोग करने की सुविधा प्रदान कर दी तथा 1954 में वहाँ के प्रधानमंत्री ने अमेरिका की सेना के जहाजों का फ्रान्स से हनाई जाने के लिये कटुनायके का हवाइ अड्डा प्रयोग करने की सुविधा प्रदान कर दी थी ।[2] भारत ने सदैव श्रीलंका की इन नीतियों का विरोध किया, क्योकि श्रीलंकां की इस प्रकार की गतिविधियाँ भारत के सामरिक हितों के अनुकूल नहीं थी । 1957 में श्रीलंका के प्रधानमंत्री श्री भंडारनायके ने गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करते हुये इन सैनिक अड्डों को अपने देश से हटा दिया था । अतः स्वतन्त्राता प्राप्ति के साथ ही भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में सामरिक समस्या ने अपना स्थान बना लिया था ।

श्रीलंका की पाकिस्तान एवं चीन जैसे शत्रु देशों से मित्रता भी भारतीय सामरिक हितों के अनुकूल नहीं है । भारत – चीन सीमा विवाद 1962 के प्रश्न पर श्रीलंका की नीतियाँ भारतीय भावनाओं के विपरीत थी । श्रीलंका ने निष्पक्ष नीति का अबलम्बन न करके चीन का अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन किया था, यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में श्रीलंका ने मध्यस्थता की नीति अपनायी थी लेकिन वास्तब में श्रीलंका की नीतियाँ चीन के प्रति पक्षपात पूर्ण थी । भारत ने कोलम्बों प्रस्तावों को मान्यता भी प्रदान कर दी थी, लेकिन चीन ने ही इन प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिया था,

---

1. कोडीकारा "फॉरेन पॉलिसी ऑफ श्रीलंका"
2. कोडीकारा "फॉरेन पॉलिसी ऑफ श्रीलंका" पृष्ठ – 89

फिर भी श्रीलंका ने चीन को अक्रामक घोषित नहीं किया था । श्रीलंका की इस प्रकार की नीति भारतीय भावनाओं के अनुकूल नहीं थी ।

1971 के भारत – पाक युद्ध के समय भी श्रीलंका की गतिविधियाँ भारतीय सामरिक हितों के अनुकूल नहीं थी । भारत – पाक युद्ध के समय यद्यपि श्रीमती भंडारनायके ने यह घोषणा की थी कि उनका देश इस युद्ध में भारत एवं पाकिस्तान किसी के साथ नहीं है तथा उनकी सरकार पूर्णरूप से गुटनिरपेक्ष नीति को अनुसरण करेगी ।[1] लेकिन श्रीमती भंडारनायके ने यह स्वीकार किया कि उन्होंने युद्ध के समय पूर्वी पकिस्तान से पश्चिमी पाकिस्तान को जाने वाले वायू–यानों को कोलम्बो से होकर जाने की अनुमति प्रदान की थी इसके साथ ही उन्होंने हवाई जहाजों को अपने बन्दरगाहों में तेल एवं पानी की सुविधा प्रदान की थी । श्रीलंका ने चीन को प्रसन्न करने के लिये बंगलादेश मुक्त संघर्ष में पाकिस्तान के प्रति पक्षपात का रूख अपनाया था । आज की बदली हुयी परिस्थिति में श्रीलंका बंगलादेश के यर्थाथ को स्वीकार करता है, लेकिन बंगलादेश के जन्म के समय श्रीलंका की सहानुभूति उन शक्तियों के साथ थी जो इस शिशु का उसके पालेन में ही गला घोटना चाहती थी । श्रीलंका की इस प्रकार की गतिविधियों ने भारत श्रीलंका सम्बन्धों सामरिक समस्या को स्थान दिया है ।

श्रीलंका भारत से छोटे समुद्री मार्ग पाक जल संयोजक द्वारा भारत से विभाजित हैं, इसलियें श्रीलंका से तमिल शरणार्थी बराबर भारत आते रहते है । समुद्री सीमा के लघु अन्तराल को पार करके शरणार्थियों के स्थान पर विदेशी जासूसों का श्रीलंका से भारत आगमन सम्भव है जिससे भारत की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है, ब्रिटिश गुप्तचर संगठन एम0 आई0 5 तथा इसरायली संगठन मोस्साद द्वारा कैण्डी की पहाड़ियों में प्रशिक्षण इसकी पूर्व भूमिका मानी जा सकती है ।[2] अतः तमिल समस्या के कारण श्रीलंका के जो शरणार्थी भारत आते रहते हैं, उनसे भारत की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है । श्रीलंका में स्थित वायस ऑफ अमेरिका के ट्रान्समीटरों के

---

1. एशियन रिकॉर्डर 1971 पृष्ठ – 10542
2. राजवीर सिंह "राष्ट्रीय रक्षा एवं सुरक्षा" पृष्ठ – 35

माध्यम से दक्षिण में स्थित भारतीय रक्षा संसाधनों में जासूसी का भी खतरा है ।[1]

श्रीलंका द्वारा चीन दक्षिणी कोरिया, इसरायल, ब्रिटेन एवं फ्रान्स से हथियारों की खरीद, सैनिक साज सामान की आपूर्ति इस बात का संकेत करती है कि क्षेत्रफल में छोटा दिखने वाला श्रीलंका अपने साहयकों के साथ भारत के सम्मुख चुनौती प्रस्तुत करने में सक्षम है । श्रीलंका द्वारा इस प्रकार की सैनिक तैयारी भी भारत की प्रतिरक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण है । श्रीलंका की इस प्रकार की नाजुक एवं विस्फोटक गतिविधियों से भारत की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया है ।

भारत एवं श्रीलंका के सामरिक सम्बन्धों में वर्तमान समय में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या त्रिकोमाली बन्दरगाह से सम्बन्धित है । द्वितीय विश्व युद्ध में त्रिकोमाली ब्रिटेन एवं अमेरिका की दक्षिण एशियायी फौजों का सैनिक अड्डा था । संयुक्त राज्य अमेरिका आठवे दशक से हिन्दमहासागर में स्थित डियागोगार्सिया द्वीप को सैनिक अड्डे के रूप में विकसित करने के लिय प्रयत्नशील रहा है । प्रारम्भ में यद्यपि अमेरिका ने डियागोगार्सिया में ब्रिटिश – अमेरिका दूर–संचार केन्द्र की स्थापना की घोषणा की थी, लेकिन बाद में अमेरिका ने डियागोगार्सिया को एक प्रथम श्रेणी के नियन्त्रण संचार अड्डे के रूप में विकसित कर लिया है । श्रीलंका द्वीप के त्रिकोमाली बन्दरगाह की डियागोगार्सिया द्वीप से समीपता के कारण अमेरिका के लिये श्रीलंका सामरिक रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसीकारण अमेरिका श्रीलंका को विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान करके इस द्वीप में सैनिक सुविधाये प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है ।

1980 के दशक के प्रारम्भ में अमेरिका के प्रभुत्व वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनी कॉस्टल कारपोरेशन ने त्रिकोमाली के प्रयोग में नही लाये जा रहे तेल टैंको को लीज पर प्रयोग करने का प्रस्ताव रखा था । इन तेल टैकों के बदले में अमेरिका ने जयवर्धने सरकार को यह प्रस्ताव दिया था कि वह उसका चीन की खाड़ी में 700 एकड़ क्षेत्र में एक विशाल तेल टर्मिनल बनादेगा ।[2]

1. राजवीर सिंह "राष्ट्रीय रक्षा एवं सुरक्षा" पृष्ठ – 35
2. दिनमान टाइम्स 12 से 24 मार्च 1990 पृष्ठ – 10

1982 में यह प्रस्ताव गिर गया क्योंकि यह प्रकाश में आया कि फॉस्टर कार्पोरेशन का अमरीकी प्रशासन के साथ एक आपूर्ति अनुबन्ध है तथा उसने माँग की है कि कुछ भंडारण टैंकों को पूरी तरह अमरीकी नौसेना को प्रयोग के लिये लीज पर दे दिया जाये । जयवर्धने सरकार ने इन तेल टैंको को पुनः चालू करने के लिये पूरे विश्व में निविदायें आमंत्रित की थी, भारत ने इस अनुबन्ध को प्राप्त करने के लिये विशेष रूप से उत्सुकता भी प्रदर्शित की थी लेकिन श्रीलंका ने भारत के इस प्रस्ताव को खरिज कर दिया ।[1] संयुक्त राज्य अमेरिका के अतिरिक्त सोवियत रूस एवं चीन भी त्रिकोमाली में तेल आपूर्ति सुविधा प्राप्त करने में रूचि प्रदर्शित करते है ।

त्रिकोमाली बन्दरगाह के तेल केन्द्रों का सीधा सम्बन्ध भारत के सामरिक एवं कूटिनीतिक हितों से जुड़ा हुआ है, इसलिये भारत की कोई भी सरकार त्रिकोमाली को किसी विदेशी शक्ति के अधिपत्य में नहीं जाने दी सकती है । भारत आवश्यक समझ कर त्रिकोमाली से अपने ऊपर आक्रमण होने से पहले उस पर अपना अधिपत्य स्थापित कर अपनी सुरक्षा के खतरे को नष्ट करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है अपनी सुरक्षा के हितों के कारण ही भारत ने श्रीलंका की त्रिकोमाली से सम्बन्धित नीतियों की सदैव आलोचना की है ।

भारत सरकार की त्रिकोमाली से सम्बन्धित आलोचनाओं पर श्रीलंका ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये श्रीलंका के राष्ट्रपति श्री जयवर्धने ने घोषित किया कि त्रिकोमाली पर उनका पूर्ण अधिकार है, जिसे वह अपनी इच्छानुसार किसी को भी दे सकते है । उनका मत था "हम भारत को भी अपने साथ सम्मिलित कर सकते हैं, लेकिन यदि उन्हें डर है कि अमेरिका की सेना त्रिकोमाली आ रही है तो हम उनकी कोई सहायता नहीं कर सकते । हमें उनकी चिल्लाहट एवं गुर्राहट में कोई रूचि नहीं है । हमें भारत से कोई डर नहीं है । मैं अपने निर्णय स्वयं दूगां तथा किसी से सहायता नहीं मागूंगा । हम अपनी रक्षा स्वयं कर सकते है ।"[2] इस समय श्रीलंका सरकार इस प्रकार की

---

1. दिनमान टाइम्स 12 से 24 मार्च 1990, पृष्ठ – 10
2. द हिन्दू 8 मई 1983 ।

नीतियाँ अपना रही थी, जिनका भारत के सामरिक हितों पर सीधा प्रभाव पड़ सकता था । 1983 के दंगों की रोकथाम के लिये श्रीलंका सरकार ने अमेरिका, ब्रिटेन, पकिस्तान एवं बंगलादेश से सैनिक सहायता माँग कर भारत के प्रति अपनी संदिग्ध्य नीति का पूर्ण रूप से परिचय दिया था । अतः श्रीलंका में महाशक्तियों का आमंत्रण तथा नौसैनिक विश्रामस्थल की त्रिकोमाली में व्यवस्था भारत एवं श्रीलंका के मध्य प्रमुख सामरिक समस्या रही है ।

श्रीलंका में बनने वाले सैनिक अड्डे अमेरिका की चौकी के रूप में सम्पूर्ण दक्षिण एशिया की तनावग्रस्त क्षेत्र के रूप में बदल सकते हैं । श्रीलंका ने अमेरिका एवं इसरायल को आमंत्रित करके यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दमहासागर अब तनावमुक्त क्षेत्र नहीं रह सकता । अमेरिका की उपस्थिति भारत के लिये ही नहीं वरन सम्पूर्ण दक्षिण एशिया के लिये चिन्ता का विषय है भारत चारों ओर से अमेरिकी छावनियों से घिरता रहा है । श्रीलंका यद्यपि हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग पर सदैव भारत का साथ देता है, लेकिन फिर भी यह द्वीप इस क्षेत्र में महाशक्तियों को आमंत्रण दे रहा है ।

जुलाई 1987 के समझौते के बाद भारत के प्रधानमंत्री एवं श्रीलंका के राष्ट्रपति ने पत्र - व्यवहार द्वारा श्रीलंका में विदेशी सैन्य शक्तियों की उपस्थित के सम्बन्ध में निर्णय करने का प्रयत्न किया । इस सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया कि त्रिकोमाली या श्रीलंका के अन्य कोई बन्दरगाह का उपयोग किसी विदेशी शक्ति द्वारा नहीं किया जायेगा तथा त्रिकोमाली के तेल शोधक कारखाने भारत एवं श्रीलंका के संयुक्त निर्देशन में रहेगें इसके साथ ही वायस ऑफ अमेरिका के सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया कि श्रीलंका सरकार द्वारा इसका प्रसारण सामान्य कार्यों के लिये होगा न कि सैनिक सहायता के लिये होगा । जुलाई 1987 के समझौते के अनुसार श्रीलंका में भारतीय शान्ति सेना के हस्तक्षेप से श्रीलंका की नीतियाँ अभी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो पायी हैं, यद्यपि समझौते के कुछ दिनों बाद ही इसरायली सैनिकों की श्रीलंका में उपस्थिति के सम्बन्ध में श्रीलंका ने यह तर्क दिया कि वे समझौते का अंग नहीं है, इसलिये उन्हें श्रीलंका से नहीं हटाया जायेगा।

इसी प्रकार का तर्क श्रीलंका अपने क्षेत्र में अमेरिका या अन्य किसी महाशक्ति के सन्दर्भ में दे सकती है ।

श्रीलंका के राष्ट्रपति द्वारा भारतीय शान्ति सेना की वापसी की माँग पर ईलम पीपुल्स रेवोल्यूशनरी फ्रन्ट के महासचिव ने कहा था "श्रीलंका की सरकार भारत – श्रीलंका समझौते का गला घोटकर तमिलों का सहार करने के लिये यहाँ पर अमेरिका एवं पाकिस्तान की सेनाये बुलाने का कुचक्र रच रही है ।"[1] सितम्बर 1989 में भारत एवं श्रीलंका मध्य शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में एक समझौता हो चुका है, जिसके अनुसार शान्ति सेना वापसी का कार्य सम्पन्न हो गया है। शान्ति सेना की वापसी के बाद ही श्रीलंका में विदेशी शक्तियों की उपस्थित के सन्दर्भ में श्रीलंका की नीतियाँ स्पष्ट हो सकेगी, यद्यपि वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ में भारत के प्रति श्रीलंका की नीतियाँ ईमानदारी पूर्ण नहीं है ।

भारत में नयी सरकार के गठन के बाद भारत एवं श्रीलंका के बीच एक मैत्रीय संधि का विचार रखा गया था । त्रिकोमाली से सम्बन्धित तथ्य भारत – श्रीलंका की मैत्रीकसंधि का प्रमुख विषय था, लेकिन इस संधि का प्रस्ताव अब गिर गया है । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि त्रिकोमाली उन कारणों में से एक है जिनकी वजह से भारत मैत्री संधि पर हस्ताक्षर करने के लिये इतना उत्सुक है । त्रिकोमाली उन आश्वासनों में शामिल है जो कि भारत – श्रीलंका से उसके कूटिनीतिक हितों की सुरक्षा के बदले में चाहता है । भारत ने चाहा है कि श्रीलंका यह वचन दे कि वह त्रिकोमाली या अपने किसी भी बन्दरगाह का प्रयोग किसी भी तीसरे देश को सैन्य उपयोग के लिये नहीं करने देगा, जिससे भारत के हितों को नुकसान पहुचें और जहाँ तक त्रिकोमाली के तेल टैंक के निर्माण एवं संचालन का प्रश्न है, उसे श्रीलंका एवं भारत दोनों संयुक्त रूप से चलाये । श्रीलंका ने लेकिन इस सन्दर्भ में अपनी स्पष्ट नीति प्रदर्शित नहीं की है ।

अतः स्पष्ट है कि भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में सामरिक समस्या प्रारम्भ से ही अपना अस्तित्व बनाये हुये है । श्रीलंका की हिन्दमहासागर में केन्द्रीय स्थिति होने के कारण यह द्वीप

---

1. दैनिक जागरण कानपुर 29 जून 1989 पृष्ठ – 11

सामरिक रूप से भारत के लिये सदैव महत्वपूर्ण रहा है श्रीलंका ने प्रारम्भ से ही अपने क्षेत्र में महाशक्तियों को आमंत्रित करके तथा भारत के शत्रु देशों से मित्रता करके एवं उनसे सैनिक सहायता प्राप्त करके सदैव भारत के लिये सामरिक समस्याओं को जन्म दिया है । हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की बढ़ती हुयी प्रतिस्पर्धा सम्पूर्ण दक्षिण एशिया के लिये चिन्ता का विषय है । भारत एवं श्रीलंका दोनों के सामरिक हित समान है, इसलिये श्रीलंका की भारत बिरोधी नीतियाँ दोनों ही देशों के सामरिक हितों के प्रतिकूल है । श्रीलंका की नीतियों के कारण दोनों देशों के सम्बन्धों में सामरिक समस्या यथावत् अपना स्थान बनाये है ।

आर्थिक समस्या

प्रत्येक देश की आर्थिक व्यवस्था अन्य देशों पर उनके अतिरिक्त उत्पादन वस्तुओं के आयात विज्ञान एवं तकनीकि के सहयोग पर निर्भर करती है । विकसित देश अविकसित देशों पर अपनी वस्तुओं के निर्यात आदि के लिये निर्भर होते हैं, इसके साथ ही अविकसित देश अपने विकास एवं सुरक्षा के लिये विकसित देशों पर निर्भर होते हैं । आर्थिक निर्भरता केवल विकसित एवं अविकसित देशों के मध्य ही नहीं पायी जाती, वरन् समान स्तर के देशों के मध्य भी पायी जाती है । दो देशों के मध्य आयात -निर्यात में असंतुलन होने अथवा दो देशों के आर्थिक हित जब आपस में टकराने लगते है, तब आर्थिक समस्यायें उत्पन्न होने लगती हैं । भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध भी इस प्रकार की आर्थिक समस्याओं से अछूते नहीं हैं ।

भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्ध लगभग दो हजार पाँच सौ वर्ष प्राचीन हैं । भौगोलिक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक रूप से दोनों देश सदैव एक दूसरे को प्रभावित करने के साथ ही आर्थिक रूप से भी युगों-युगों से सम्बन्धित रहे हैं । ब्रिटिश शासनकाल के पूर्व ही भारत श्रीलंका को सर्वाधिक खाद्य प्रदान करने वाला देश था । द्वितीय विश्वयुद्ध के समय श्रीलंका के आधे से अधिक आयात पर भारत अपना नियन्त्रण रखता था ।[1] स्वतन्त्रतता प्राप्ति के बाद भी श्रीलंका भारत की आर्थिक निर्भरता से मुक्ति नहीं प्राप्त कर सका है ।

भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तमिल समस्या को भी बहुत कुछ सीमा तक आर्थिक कारणों ने प्रभावित किया है, यद्यपि भारतीय मानवीय तत्वों ने श्रीलंका की अर्थव्यवस्था के सुधार में विशेष भूमिका का निर्वाह किया है, लेकिन इसके साथ ही प्रवासी भारतीयों ने श्रीलंका की अधिकांश अर्थव्यवस्था पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया था । इसीकारण स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही श्रीलंका के सिंहली समुदाय द्वारा भारतीयों को श्रीलंका में इतनी अधिक मात्रा में उपस्थित पर चिन्ता व्यक्त की जाती रही । 1941 में श्री भंडारनायके

---

1. महेश्वरी "इण्डिया - श्रीलंका इकोनामिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 161

ने भारतीयों के इस बढ़ते हुये प्रभाव पर चिन्ता व्यक्त करते हुये कहा था "श्रीलंका के समस्त वाणिज्य एवं व्यापार पर छोटे से गाँव वट्टिकसे लेकर बड़े-बड़े शहरों तक विदेशियों द्वारा नियन्त्रण स्थापित किया जा चुका है - विशेषत: भारतीयों द्वारा जमीन, जायदाद भी धीरे-धीरे बड़े-बड़े भारतीय व्यापरियों के हाथ में जा रही है । बेरोजगारी भी नियन्त्रण के बाहर होती जा रही है । यह वास्तब में दृढ़ रूप से किसी प्रकार से बचने का प्रश्न है ।"[1] भारतीय मानवीय तत्वों का श्रीलंका की अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण होने के वहाँ की भुगतान प्रक्रिया पर खराब प्रभाव डाला है । भारतीय मूल के सीलोन के व्यापारी एवं मजदूर पारिवारिक रूप से दक्षिण भारत से सम्बन्धित थे, जिससे वे श्रीलंका की धनराशि भारत अपने परिवारजनों को भेजते थे, इसके अतिरिक्त श्रीलंका के व्यापारी जब भारत को सामान निर्यात करते तो वे रियायती दरों में वस्तुयें भारत को दे देते, जिसमें श्रीलंका की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती थी । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तत्कालीन सरकार इस प्रकार की आर्थिक समस्या से भी परेशान थी । 1949 में श्रीलंका के वित्तमंत्री ने इस समस्या के सम्बन्ध में एक वक्तव्य में कहा "मेरे विचार में इस प्रकार के श्रमिकों की उपस्थित एक गम्भीर वित्तीय भार है, जो सीलोन के लिये आर्थिक समस्या उत्पन्न कर रही है । भारतीय श्रमिक सीलोन के श्रमिकों की बराबरी करते है तथा सीलोन के श्रमिकों के रोजगार के अवसर को कम करते है । वे कम से कम पारिश्रमिक में कार्य करने को तैयार है, जिससे सीलोन के श्रमिकों का स्तर गिरता है । भारतीय श्रमिक देश की अर्थ व्यवस्था में कोई सहयोग नहीं देते, क्योंकि वे अपना सारा धन भारत भेज देते हैं, जिससे सीलोन का भुगतान संतुलन बिगड़ता है ।"[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतएवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्ध व्यापारिक संतुलन की समस्या से सर्वाधिक प्रभावित रहे है । व्यापार संतुलन सदैव भारत के ही पक्ष में रहा है, क्योंकि भारत श्रीलंका को भारी मात्रा में वस्तुयें प्रदान करने में सक्षम है, जबकि श्रीलंका भारत को उतनी सीमा में वस्तुये प्रदान नहीं कर सकता ।[3]

---

1. इण्डो सीलोन रिलेसन्स एक्सलॉरेटरी कॉनफ्रेंस प्रोसीडिंग ऑफ नीटिंग सेसनल पेपर 1941 पृष्ठ - 6
2. द टाइम्स ऑफ सीलोन 6 जुलाई 1949
3. महेश्वरी "इण्डिया - श्रीलंका इकोनामिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 170

भारत -- श्रीलंका के समान, चाय का वृद्ध उत्पादक देश है, इसलिये भारत को श्रीलंका से चाय के आयात की आवश्यकता नहीं होती । भारत का श्रीलंका से आयात का क्षेत्र रबर, कॉपर एवं नारियल तेल आदि तक सीमित है, जबकि श्रीलंका को भारत से सूती कपड़ा, सीमेन्ट, प्याज, मछली, मिर्चा, बीड़ी की पत्तियाँ, दवाये, मशीन एवं औजार आयात करने पड़ते है ।[1] भारत श्रीलंका को इन सभी वस्तुओं को प्रतियोगात्मक मूल्य में निर्यात करने में सक्षम है ।

भारत एवं श्रीलंका के मध्य अनेक व्यापारिक समझौते, दोनों देशों के मध्य व्यापार को संतुलित करने के लिये किये गये, लेकिन ये सतझौते पूर्ण रूप में सफल नहीं हो सके ।

श्रीलंका भारत को नारियल, रबर, ग्रेफाइट आदि निर्यात करने में सक्षम है, लेकिन भारत में इन वस्तुओं की खपत बहुत अधिक सीमित हैं । भारत द्वितीय स्तर का नारियल उत्पादक देश है, लेकिन फिर भी भारत श्रीलंका से नारियल का आयात करता है । तेल उत्पादक उद्योगों की विशिष्टता ने भारत के लिये यह आवश्यक कर दिया है कि वह नारियल तेल के आयात में सुरक्षात्मक तरीका अपनाये । नारियल के आयात की प्रक्रिया इसकी सुविधाजनक एवं उचित मूल्य की प्राप्ति पर निर्भर होती है । श्रीलंक में नारियल के बढ़ते हुये मूल्यों की प्रक्रिया ने भारत को मजबूर कर दिया है कि वह इसके लिये कोई अच्छा एवं सस्ता स्त्रोत ढूढ़े । रबर के क्षेत्र में भी यही स्थिति है, इसीलिये सिंगापुर एवं मलेशिया से भारत मुख्य रूप से रबर आयात करता है । रबर के क्षेत्र में चीन एवं श्रीलंका के मध्य समझौता होने के कारण श्रीलंका भारत को रबर प्रदान करने में असमर्थ रहा है । भारत पिछले कई वर्षों से श्रीलंका से ग्रेफाइट आदि भी आयात नहीं कर रहा है । भारत श्रीलंका से बहुत सीमित मात्रा में बस्तुयें आयात करता है ।[2]

पिछले वर्षों में भारत श्रीलंका को सर्वाधिक बस्तुयें निर्यात करने वाला देश रहा है । आज भारत एक मुख्य औद्योगिक देश है । भारत विभिन्न प्रकार की औद्योगिक वस्तुयें निर्मित करने तथा श्रीलंका को प्रतियोगात्मक मूल्यों में प्रदान करने में सक्षम है । भारत में बने हुये रबर

---

1. महेश्वरी "इण्डिया श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 170
2. महेश्वरी "इण्डिया - श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 171

टायर, पेपर प्लाइबुड, ताबे, लोहा, स्टील की वस्तुयें इंजन आदि श्रीलंका को निर्यात किया जाते है ।[1] श्रीलंका की अर्थव्यवस्था आयात पर निर्भर है । भारत अपने निर्यात में वृद्धि करेन के लिये सदैव प्रयत्नशील रहा है । 1977 से जब से श्रीलंका में आयात कानून बहुत उदार कर दिये गये है, तब से भारत - श्रीलंका को भारी मात्रा में कृषि सम्बन्धी एवं औद्योगित वस्तुयें निर्यात करता है ।

भारत एवं श्रीलंका के मध्य व्यापार की धीमी गति श्रीलंका की सीमित व्यापारिक प्रवृत्ति के कारण है । श्रीलंका को वृहदमात्रा में आयात करने के लिये उतनी ही मात्रा में निर्यात के प्रयास करने होगें । चाय एवं रबर श्रीलंका की मख्य निर्यातिक वस्तुयें हैं, जिनको भारत स्वयं उत्पन्न करता है ।

1961 में भारत एवं श्रीलंका के आपसी व्यापार में वृद्धि की दृष्टि से दोनों देशों ने एक समझौता किया कि व्यापार का तरीका दोनों देशों को लाभ पहुँचाने वाला हो तथा व्यापार बढ़ाने की सम्भवानाओं में बृद्धि होनी चाहिये । इसमें यह निश्चय किया गया कि भारत अधिक मात्रा में नारियल का तेल एवं कपास श्रीलंका से आयात करेगा ।[2] इस समझौते के होनें पर भी भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में कोई वृद्धि नहीं हुयी, बल्कि गिरावट ही आयी, क्योंकि इस व्यापारिक समझौते द्वारा दोनों देशों के व्यापार बढ़ाने एवं मजबूत करने की इच्छा प्रदर्शित की गयी थी न कि उसका व्यवहार में प्रयोग किया गया था ।

1968 में भारत एवं श्रीलंका को मध्य आर्थिक सहयोग समिति का गठन हुआ।[3] इस समिति में दोनों देशों के आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों की समस्याओं एवं उनके निराकरण पर विचार विमर्श हुआ । इसमें भारत एवं श्रीलंका के मध्य द्विपक्षीय आर्थिक सम्बन्धों के लिये संस्थागत ढाचों की स्थापना की गयी । भारत एवं श्रीलंका के सँयुक्त आयोग ने कृषि उद्योग एवं तकनीकि क्षेत्रों में आर्थिक सहयोग के लिये कई क्षेत्रों की खोज की तथा निश्चय किया गया कि दोनों देश अधिक से अधिक मात्रा में आयात एवं निर्यात करेंगें ।

---

1. महेश्वरी "इण्डिया - श्रीलंका इकानोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 171
2. कोडीकारा "इण्डिया एण्ड सीलोन" पृष्ठ - 176
3. महेश्वरी "इण्डिया - श्रीलंका इकोनोमिक निलेसन्स" पृष्ठ - 173

भारत एवं श्रीलंका विश्व में 67% चाय के उत्पादक देश है तथा विश्व में चाय के निर्यात के लिये दोनों ही देश एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी है । दोनों देशों ने चाय के निर्यात के सम्बन्ध में एक सहयोग समिति निर्मित करने का निर्णय लिया, जिससे विश्व बाजार में चाय की माँग में बृद्धि हो सके । इस समझौते के अनुसार भारत श्रीलंका से निषिद्ध वस्तुये जैसे क्राकरी, आटोमोबाइल टायर एवं हाथ से बनी वस्तुये आयात करने के लिये सहमत हुआ, इसके साथ ही संयुक्त उद्योगों में सहयोग पर भी दोनों देशों ने अपनी सहमति प्रकट की ।[1] श्रीलंका सरकार के निवेदन पर भारत से आवश्यक वस्तुओं आदि को क्रय करने के लिये अनेक बार ऋण दिये गये ।

1969 में भारत के सिचाई तथा बिजली मन्त्री श्री के० एल० राव ने श्रीलंका की सिचाई योजनाओं में सहयोग देने के लिये श्रीलंका की यात्रा की थी । 1970 में श्रीलंका सरकार ने कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में स्वदेशीकरण की नीति अपनायी, जिसके अन्तर्गत श्रीलंका सरकार ने 15 भारतीयों के व्यापारिक लाइसेन्स रद्द कर दिये तथा श्रीलंका के व्यापार एवं उद्योग पर भारतीय प्रवासियों के नियन्त्रण को समाप्त करने की कोशिश की थी, जिसके परिणामस्वरूप भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में कुछ समय के लिये प्रतिकूल प्रभाव पड़ा ।[2]

1977 में जयवर्धने ने श्रीलंका का शासन संचालन करने के साथ ही श्रीलंका की अर्थव्यवस्था का सिंगापुरीकरण किया अर्थात् यह द्वीप सिगांपुर की तरह निर्यात के क्षेत्र में समृद्ध हो । श्रीलंका को अपनी इस सद्इच्छा के पूर्ति हेतु औधोगिक कार्यो को पूर्ण करने के लिये घरेलू सामान एवं विदेशी मुद्रा दोनों का अभाव था, तथा वहाँ तकनीकि ज्ञान प्राप्त मनुष्यों की भी कमी थी, इसलिये श्रीलंका ने विदेशी निवेशकर्ताओं को अपने क्षेत्र में आमंत्रित किया । 1977 से श्रीलंका निवेश अवसरों की भूमि रहा है । भारत के लिये श्रीलंका में औधोगिक साझेदारी का अच्छा अवसर था, क्योंकि दोनों देशों के उद्योग लगभग समान तरह के हैं । श्रीलंका की मुक्त अर्थव्यवस्था में भारतीय निवेशकर्ताओं ने सम्पन्न फसलों का रोपड़ किया ।

---

1. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 174
2. एन० के० श्रीवास्तव "भारत की विदेशनीति" पृष्ठ - 155 - 165

1978 में श्रीलंका में कोलम्बो आर्थिक आयोग का गठन किया गया, जिससे अधिक से अधिक व्यापार साझेदारी में बृद्धि हो सके । इस आयोग के अन्तर्गत लगभग 169 परियोजनायें लागू की गयी तथा विदेशी निवेश की छूट दी गयी ।[1] इनमें 13 भारतीय परियोजनाये स्वीकृत की गयी । होटल श्रंखला जिसमें 70% तक साझेदारी की छूट है, के अतिरिक्त श्रीलंका में भारतीय भागेदारी की सीमा 49% है । इस श्रेणी के अन्तर्गत 45 परियोजनायें स्वीकृत की गयी, जिनमें 13 कार्यरत हैं । श्रीलंका में इन 45 परियोजनाओं में कुल निवेश 1142 मिलयन रूपये है ।[2]

भारतीय होटल श्रंखला आई0 टी0 सी0 (कलकत्ता) एवं रिसार्ट होटल (बम्बई, श्रीलंका में होटल बना रहें हैं । श्रीलंका में उद्योगों की व्यवस्था में भारतीय प्रमुख प्रतिष्ठान व्यवस्था सम्बन्धी कार्मिकों को भेज रहे है । कुछ व्यापारिक प्रतिष्ठान पूँजीगत माल जैसे सूती वस्त्रोद्योग, अभियन्त्रीय उपकर्णों का निर्यात करते हैं, क्योंकि श्रीलंका में अभियन्त्राण उपकाणों की बहुत अधिक कमी है । भारतीय औद्योगिक प्रतिष्ठान टाटा, कमानी और क्राम्पटन ग्रीष्स पावर उपकरण एवं वाणिज्यक वाहनों जैसी प्रयोजनाओं में संलग्न है ।

श्रीलंका में भारतीय परियोजनाओं की स्थापना एवं साझेदारी में भी कभी-कभी समस्या उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि श्रीलंका में वस्तुओं की खपत बहुत सीमित है, कई बार आवश्यकता से अधिक सामान बन जाता है ।

भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या व्यापार संतुलन की है । व्यापार संतुलन प्रारम्भ से भारत के पक्ष में ही रहा है । 1973-74 में श्रीलंका को भारतीय 9.82 करोड़ रूपये मूल्य का था, जबकि भारत के लिये श्रीलंका का निर्यात लगभग 90 लाख रूपये था । 1974-75 में श्रीलंका में आयात 26.75 करोड़ रूपये तक पहुँच गया, जबकि भारत को किया गया निर्यात 24 लाख रूपये रह गया । 1975-76 में श्रीलंका ने भारत से 23.1 करोड़ रूपये मूल्य का आयात तथा केवल 29 लाख रूपये मूल्य का निर्यात किया ।

---

1. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ - 174
2. प्रियम्बदा "भारत श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्ध उनके बदलते समीकरण" पृष्ठ - 50 प्रगति मुजूषा 1987

1977 से श्रीलंका द्वारा भारत को किये जाने वाले निर्यात में कुछ बृद्धि हुयी, लेकिन आयात में भी बृद्धि होती गयी । 1977–78 में श्रीलंका का आयात 54.3 करोड़ रुपये की राशि तक पहुँच गया जबकि भारत को किया गया निर्यात 2.27 करोड़ रुपये था । इस प्रकार 1973 से 1978 की अवधि में भारत के साथ श्रीलंका करे प्रतिकूल व्यापार संतुलन 148.4 करोड़ रुपये तक हो गया । 1978 के बाद और 1981 में भारत को श्रीलंका द्वारा निर्यात क्रमशः बढ़ा ।[1] श्रीलंका को भारत का निर्यात वहाँ से होने वाले आयात की तुलना में यद्यपि बहुत अधिक था, लेकिन 1981 के दौरान श्रीलंका के कुल आयात का मात्र 4.3 प्रतिशत था तथा श्रीलंका के आयात में भारत का स्थान आठवाँ था ।

1985 में श्रीलंका ने भारत से 2.2 करोड़ रुपये का आयात किया जो सन् 1986 में बढ़कर 2.22 करोड़ 50 लाख रुपये हो गया । 1986 में श्रीलंका से भारत को किया जाने वाला निर्यात बढ़कर दो गुना हो गया । 1985 में श्रीलंका से भारत को किया जाने वाला निर्यात 17 करोड़ रुपये था वही 1986 में यह निर्यात 33 करोड़ रुपये हो गया था ।[2]

भारत एवं श्रीलंका के मध्य व्यापार संतुलन सदैव भारत के पक्ष में ही रहा, यद्यपि पिछले वर्षों में श्रीलंका द्वारा भारत को किये जाने वाले निर्यात में वृद्धि हुयी है, लेकिन फिर भी दोनों देश के व्यापार में काफी असंतुलन है । भारत एवं श्रीलंका दोनों ही देश ने इस समस्या का समाधान करने का प्रयास किया है, लेकिन फिर भी इस दिशा में कोई सफलता नहीं मिली है । सितम्बर 1988 में भारत एवं श्रीलंका ने चाय के निर्यात के सम्बन्ध में संयुक्त समिति गठित करने पर सहमति व्यक्त की तथा भारत ने श्रीलंका के साथ व्यापार को संतुलित करने के लिये श्रीलंका से चाय के आयात पर सहमति प्रकट की, क्योंकि श्रीलंका का चाय उद्योग कठिन परिस्थतियों से गुजर रहा है, लेकिन भारत के वाणिज्य मंत्रालय एवं सस्थान में मतभेद होने के कारण भारत यह कार्य नहीं कर सका है । चाय संस्थान का विचार है कि श्रीलंका से चाय के आयात से दक्षिण भारत के चाय

---

1. प्रगति मंजुषा जून 1987 पृष्ठ – 52
2. वही ।

उत्पादकों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा ।[1]

अतः स्पष्ट है कि भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या व्यापार संतुलन की है, इसके साथ ही श्रीलंका में भारतीय परियोजनाओं की साझेदारी से भी कभी-कभी कुछ समस्याये उत्पन्न हो जाती हैं, क्योंकि श्रीलंका में वस्तुओं की खपत बहुत सीमित है तथा कभी-कभी भारत - श्रीलंका की साझी परियोजनायों में आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का निर्माण हो जाता है ।

भारत एवं श्रीलंका दोनों ही व्यापर संतुलन की समस्या का समाधान करने के लिये प्रारम्भ से प्रयत्नशील रहे हैं । भारत ने दक्षिण एशिया के औद्योगिक देश होने के कारण श्रीलंका को समय-समय पर भारी मात्रा में ऋण आदि देकर वहाँ के औद्योगिक विकास में सहयोग दिया तथा श्रीलंका के साथ व्यापार में साझेदारी करके दोनों देशों के मध्य व्यापार को संतुलित करने का प्रयास किया है, लेकिन फिर भी भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध आर्थिक समस्याओं से अछूते नहीं है, अभी भी दोनों देशों के व्यापार में काफी असंतुलन है, व्यापार संतुलन प्रारम्भ से लेकर अब तक भारत के ही पक्ष में रहा है । भारत - श्रीलंका को बहुत अधिक सीमा में वस्तुयें निर्यात करने सक्षम है, जबकि श्रीलंका को भारत के लिये निर्यात बहुत सीमित है । श्रीलंका अर्थव्यवस्था भारतीय मानवीय स्त्रोत, विज्ञान एवं तकनीकि से प्रभावित होने के कारण भारतीय हितों के अधिक अनुकूल है । भारतीय प्रवासियों का प्रत्यावर्तन, बौद्ध तीर्थयात्रियों के भारत आगमन तथा श्रीलंका की उदार आयात नीति ने इस समस्या को और अधिक गम्भीर कर दिया है तथा दोनों देशों में पड़ोसी राष्ट्रों के समान अभी भी आर्थिक सम्बन्धों का सहज विकास सम्भव नहीं हो सका है । भारत एवं श्रीलंका द्वारा इस समस्या का समाधान करने के लिये किये गये प्रयासों के बाबजूद भी दोनों देशों को इस दिशा में कोई विशेष सफलता नहीं मिली है ।

---

1. आई० डी० एस० ए० साउथ एशिया रिव्यू जून 1989, पृष्ठ - 502

समुद्री सीमा निर्धारण सम्बन्धी समस्या

श्रीलंका भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के अति समीप स्थित है तथा यह भारत से केवल 35 कि.मी. के छोटे से समुद्री मार्ग "पाक जल संयोजक" द्वारा विभाजित है । भारत एवं श्रीलंका की भौगोलिक समीपता के कारण समुद्री सीमा निर्धारण सम्बन्धी समस्या ने भी भारत – श्रीलंका सम्बन्धों को समय-समय पर प्रभावित किया है, लेकिन दोनों ही देशों ने समझौतावादिता की नीति अपनाकर इस समस्या का समाधान करने में सफलता प्राप्त करली है ।

मार्च 1956 में भारत के राष्ट्रपति की घोषणा के अनुसार अपनी प्राचीन तीन मील की समुद्री सीमा को बढ़ाकर छः मील किया तथा 1957 में भारत ने सौ मील के समुद्री मार्ग में अपने मच्छली पकड़ने के अधिपत्य को दावा किया ।[1] श्रीलंका की सरकार द्वारा भारत के सौ मील के मच्छली पकड़ने के दावे को स्वीकार करना असम्भव सा था, क्योकि भारत द्वारा घोषित सौ मील का आर्थिक क्षेत्र श्रीलंका के आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत आता था इसलिये श्रीलंका ने भारत के इस दावे को अस्वीकृत कर दिया । भारत की लोकसभा में यह प्रश्न उठाया गया कि श्रीलंका के मछुआरे बिना अधिकार के भारतीय समुद्री सीमा में प्रवेश करते हैं । श्रीलंका ने भी अपने आर्थिक हितों को सुंरक्षित रखने के लिये 1987 से ही अपनी समुद्री सीमा तीन से बढ़ाकर छः मील घोषित की तथा सौ मील के समुद्री जल में अपने-अपने मच्छली पकड़ने के अधिकार का दावा किया । श्रीलंका का यह कार्य बदले की भावना से प्रेरित था, जिसके कारण दोनों देशों के मध्य तनाव उत्पन्न हो गया था ।

भारत एवं श्रीलंका के समुद्री सीमा निर्धारण सम्बन्धी प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ की जेनेवा वार्ता में भी रखा गया, यह वार्ता अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री कानून से सम्बन्धित थी । जेनेवा वार्ता में भी दोनों देशों के मध्य समुद्री सीमा निर्धारण का निर्णय सम्भव नहीं हो सका । इस सभा में भारत ने अपनी सौ मील की समुद्री सीमा पर विशेष दवाब नहीं डाला, क्योकि इस पर

---

1. कोड़ीकार "फॉरेन पॉलिसी ऑफ श्रीलंका" पृष्ठ – 3।

श्रीलंका ने भी अपना अधिकार जताया था तथा भारत इस सन्दर्भ में कोई विवाद उत्पन्न नहीं करना चाहता था, इस समय भारत एवं श्रीलंका ने इस बात पर सहमति प्रकट की थी कि दोनों देशों के अधिपत्य के दावे के बाद भी दोनों देशों के मछुआरों को एक दूसरे के क्षेत्र में जाने का पहले के समान अधिकार रहेगा, लेकिन अभी भी दोनों देशों के बीच समुद्री सीमा निर्धारण के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट समझौता सम्भव नहीं हो सका था ।[1]

1967 में भारत एवं श्रीलंका ने अपनी समुद्री सीमा बढ़ाकर 15 मील घोषित की । इसी बीच भारतत एवं श्रीलंका ने कच्छतिवु से सम्बन्धित समस्या का भी समाधान किया, लेकिन समुद्री सीमा के निर्धारण की समस्या यथावत रही । 1974 में दोनों देशों के मध्य पाक की खाड़ी एवं आदम सेतु के बीच सीमा निर्धारण समझौता सम्पन्न हुआ, जिसके अनुसार दोनों देशों के नाविक एक दूसरे के क्षेत्र में जा सकते थे ।

भारत एवं श्रीलंका समुद्री सीमा निर्धारण से सम्बन्धित समस्या को प्रारम्भ से ही सुलझाने के लिये प्रयत्नशील रहे, दोनों देशोंके इन्ही प्रयासों को परिणाम स्वरूप 1976 में दोनों देशों के मध्य समद्री सीमा निर्धारण सम्बन्धी समझौता सम्पन्न हो सका । 23 मार्च 1976 को भारत एवं श्रीलंका के बीच एक समझौते द्वारा समुद्री सीमा का निर्धारण किया गया, इसके साथ ही इस समझौते के अन्तर्गत दोनों देशों के क्षेत्रों में मच्छली पकड़ने एवं आर्थिक क्षेत्र में अधिकार के सम्बन्ध में निर्णय लिये गये । इस समझौते के अनुसार आर्थिक क्षेत्र के लिये 320 कि0मी0 की दूरी निश्चित की गयी । तथा यह निर्णय लिया गया कि जहाँ कहीं भी यह दूरी एक दूसरे का अतिक्रमण करे वहाँ भू-सीमा से बराबर-बराबर की दूरी को स्वीकृत अधिकृत क्षेत्र माना जायेगा ।[2] 10 मई 1976 को दोनों देशों ने इस समझौते पर अपना समर्थन व्यक्त किया तथा तभी से इस समझौते को दोनों देशों के बीच लागू किया गया ।

---

1. कोड़ीकारा "इण्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ – 63
2. एम0 सी0 गुप्ता "इण्डियन फॉरेन पालिसी" पृष्ठ – 304

22 नवम्बर 1976 को ही भारत एवं श्रीलंका के मध्य निर्णायक समझौता हुआ, जिसके अनुसार मन्नार की खाड़ी में भारत, श्रीलंका एवं मालद्वीप के त्रिसंगम बिन्दु तक एक समुद्री सीमा रेखा का निर्धारण किया गया ।[1]

अतः भारत – श्रीलंका के मध्य समुद्र सीमा निर्धारण की समस्या ने दोनों देशों के सम्बन्धों को कुछ समय के लिये प्रभावित किया, लेकिन दोनों ही देशों ने आपस में समझौतावादिता की नीति अपना कर इस समस्या का समाधान करने में सफलता प्राप्त की है ।

---

1. एशियन रिकार्डर 1976 पृष्ठ – 13509

भाषा की समस्या

श्रीलंका द्वीप में प्रत्येक जातीय समुदाय अपनी प्रथक भाषा का प्रयोग करता है । बहुसंख्यक सिंहली समुदाय सिंहली भाषा का प्रयोग करता है तथा भारतीय एवं श्रीलंका के तमिलों का समुदाय तमिल भाषा का प्रयोग करता है । तमिल भाषा दक्षिण भारत के तमिलनाडु क्षेत्र की भाषा है । श्रीलंका में भाषा की समस्या का प्रादुर्भाव भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही हो गया था तथा भाषा की समस्या के कारण श्रीलंका की सरकार को अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा । भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में भाषा की समस्या के कारण यद्यपि प्रत्येक रूप से कभी कोई विवाद. उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि यह पूर्णत: श्रीलंका का आन्तरिक विषय है, लेकिन दक्षिणी भारत की तमिल भाषा की संलग्नता के कारण इस समस्या में पारोक्ष रूप से भारत – श्रीलंका सम्बन्धों को प्रभावित किया है ।

ब्रिटिश शासन काल में अंग्रेजी श्रीलंका की प्रशासनिक भाषा थी तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1956 तक अंग्रेजी ही श्रीलंका की प्रशासनिक भाषा रही । सिंहली एवं तमिल को 1956 तक द्वितीय स्तर की भाषा का स्थान प्राप्त था अंग्रेजी भाषा को उच्च स्तरीय लोगों की भाषा की संज्ञा दी जाती थी । स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही श्रीलंका में सिंहली एवं तमिल समुदाय द्वारा अपनी–अपनी भाषा को और अधिक महत्व दिये जाने के सन्दर्भ में माँग हो रही थी । 1956 में यूनाइटेड नेशनल पार्टी की सरकार ने भाषा की समस्या को समाप्त करने के लिये सिंहली एवं तमिल दोनों को ही प्रशासनिक भाषा का स्थान देने का सुझाव रखा लेकिन यूनाइटेड नेशनल पार्टी के कुछ सदस्य इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे । 1956 के आम चुनाव में श्री भंडारनायके ने यूनाइटेड पार्टी से अलग होकर श्रीलंका फ्रीडम पार्टी का गठन किया तथा अपने चुनाव प्रचार में जातीय विद्वेष को काफी भड़काया, जिससे लाभ उन्हें अपने चुनाव में मिला और इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने श्रीलंका प्रधानमन्त्री के रूप में विजय प्राप्त की । प्रधानमंत्री बनते ही श्री भंडारनायके सिंहली जनता को खुश करने के लिये सिंहली भाषा को राष्ट्र भाषा घोषित कर दिया ।[1] इससे पहले सिंहली एवं

---

1. नवभारत टाइम्स 27 दिसम्बर 1988

TABLE

Languages Spoken by Persons Three Years of Age and Above

Language	Percent of Population
Sinhala only	58.9
Tamil only	21.6
English only	0.2
Sinhala and Tamil	9.9
Sinhala and English	4.2
Tamil and English	2.0
Sinhala, Tamil, and English	3.2

Source : Robert Kearney, "Language and the Rise of Tamil Separatism in Sri Lanka," Asian Survey 17 (May 1978) : 523.

तमिल दोनों भाषाओं को समान अधिकार प्राप्त था । श्रीलंका सरकार की इस प्रकार की गतिविधियों से तमिल लोग स्वाभाविक रूप से खुश नहीं थे । उन्होंने सरकार के सौतेले व्यवहार का काफी विरोध किया । परिणामस्वरूप 1956 एवं 1958 में श्रीलंका में भीषण दंगें हुये । श्रीलंका में आपात स्थिति लागू कर दी गया तथा तमिलों को सन्तुष्ट करने के लिये सरकार ने तमिलों को कुछ अधिकार भी प्रदान किये तथा विवाद को हल करने के लिये प्रयास भी किये, लेकिन फिर भी इस समस्या का कोई समाधान नहीं हो पाया । श्रीलंका में इस समय तमिल अपने भाषा सम्बन्धी अधिकार की प्राप्ति हेतु माँग कर रहे थे, जिसके कारण सिंहलियों एवं तमिलों के बीच हिंसात्मक गतिविधियाँ जारी थी । श्रीलंका सरकार ने इन हिंसात्मक गतिविधियों की रोकथाम हेतु उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में सैनिक शासन लागू कर दिया तथा तमिलों के प्रति दमनात्मक नीति को अपनाना प्रारम्भ कर दिया था ।

श्रीलंका में तमिलों के साथ दुर्व्यवहार होने पर भारत के तमिलनाडु के क्षेत्र के तमिलों ने प्रतिक्रिया व्यक्त की । तमिल नेशनल पार्टी के नेता ई० पी० के सम्पथ एवं डी० एम० के० पार्टी के सदस्य नेहरू जी से मिले तथा श्रीलंका में तमिलों पर हो रहे अत्याचार के सन्दर्भ में चिन्ता व्यक्त की । नेहरू जी ने कहा कि वे तमिलनाडु के लोगों की भावनाओं के प्रति पूर्णतः जागरूक है तथा भारत सरकार श्रीलंका की सरकार को इस तरफ अनौपचारिक रूप से ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करेगी ।[1] तमिलनाडु क्षेत्र के लोगों ने श्रीलंका के उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में सैनिक शासन का विरोध किया, लेकिन भारत सरकार ने इस सन्दर्भ में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करने के लिये अस्वीकार कर दिया, क्योंकि यह श्रीलंका का पूर्ण रूप से आन्तरिक विषय था । श्रीलंका के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप न करने की भारत सरकार की नीति ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत सरकार श्रीलंका से अच्छे सम्बन्ध रखने के लिये इच्छुक है तथा भारत - श्रीलंका के मध्य मुख्य नागरिकता की समस्या का गम्भीरतापूर्वक समाधान करना चाहती है ।

तमिलो में सिंहलियों के विरूद्ध असंतोष पनपता रहा, जिसके परिणाम स्वरूप तमिलों ने तुल्फ का गठन किया तथा प्रथक राज्य की माँग करना प्रारम्भ कर दिया श्रीमती भंडारनायके

---

1. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 167

ने तुल्फ के नेताओं की कोई भी बात नहीं सुनी तथा तमिल बाहुल्य क्षेत्र में सेना की चौकसी बढ़ा दी । तमिल बाहुल्य क्षेत्र में सेना की उपस्थिति का तमिलनाडु क्षेत्र में काफी विरोध हुआ ।[1] 1977 में पुनः श्रीलंका में साम्प्रदायिक दंगे हुये ।

1977 में सत्ता में आने के बाद राष्ट्रपति जयवर्धने ने बहुत कुछ सीमा तक तमिलों की माँग को मान लिया उन्होंने तमिल राजनेताओं को वार्ता के लिये आमंत्रित किया । श्री जयवर्धने ने नया संविधान लागू किया जिसमें उन्होने भाषा की समस्या को सुधारने का प्रयास किया था । नये संविधान में सिंहली के समान तमिल भाषा को भी प्रशासनिक भाषा का स्थान दिया गया ।[2] लेकिन तुल्फ के राजनेता इससे संतुष्ट नहीं हुये । नये संविधान में जो रियायते तमिल समुदाय को प्रदान की गयी थी, उन्हें तमिलों ने अस्वीकार कर दिया तथा पृथक राज्य की माँग पर बल देकर आतंकवादी गतिविधियाँ जारी रखी । 1977 से 1983 तक तमिलों की आंतकवादी गतिविधियाँ बढ़ती गयी तथा जयवर्धने की सरकार ने अपने लोहे के हाथों से उन्हें दबानेका प्रयास किया । तमिलों की भाषा एवं अन्य अधिकारों से सम्बन्धित विवाद पृथक राज्य की माँग के रूप में परिवर्तित हो गया तथा समस्या ने जटिल रूप ले लिया ।

1987 के भारत – श्रीलंका समझौते में पहली बार दोनों देशों ने औपचारिक रूप से भाषा का विषय रखा है । इस समझौते के अनुसार सिंहली के साथ तमिल एवं अंग्रेजों की श्रीलंका की राष्ट्रभाषा होगी , लेकिन अभी भी श्रीलंका में हिंसात्मक गतिविधियाँ जारी है । तमिल अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये संघर्ष कर रहे हैं तथा श्रीलंका में हिंसात्मक गतिविधियाँ जारी है ।

अतः स्पष्ट है कि भाषा की समस्या ने प्रत्यक्ष रूप से भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में कभी भी कोई तनाव उत्पन्न नहीं किया है, लेकिन इस समस्या ने तमिल समस्या के समाधान में परोक्ष रूप से विपरीत प्रभाव डाल कर भारत – श्रीलंका सम्बन्धों को प्रभावित किया है ।

---

1. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका" पृष्ठ – 167

रेडियो सीलोन के प्रसारण से सम्बन्धित समस्या

भारत श्रीलंका सम्बन्धों को जहाँ आर्थिक, सामरिक एवं प्रजातीय समस्याये सदैव प्रभावित करती रहती है, वहीं रेडियों सीलोन की प्रसारण सेवा के कारण भी भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में कुछ तनाव उत्पन्न हो गया था, लेकिन दोनों देशों ने परस्पर लेनदेन की नीति अपना कर इस समस्या का समाधान करने में सफलता प्राप्त की थी।

"रेडियो सीलोन" की प्रसारण सेवा भारत के सभी भागों में लोकप्रिय है, इसके द्वारा संगीत के अत्यधिक कार्यक्रम प्रसारित किये जाते है, जिनमें से अधिकांश भारतीय फिल्मों के हिन्दी एवं तमिल धुनों पर आधारित गीत होते है । रेडियो सीलोन द्वारा प्रासारित गीतों एवं उनसे प्राप्त होने वाले शुल्क के सन्दर्भ में कुछ समय के लिये दोनो देशों के मध्य विवाद उत्पन्न हो गया था ।

भारत सरकार ने सर्वप्रथम 1957 में रेडियो सीलोन द्वारा प्रासारित कार्यक्रम पर हस्तक्षेप किया था । 1957 में भारत के सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने दो आधारों पर सीलोन प्रसारण सेवा पर आपत्ति प्रकट की थी । प्रथम रेडियो सीलोन द्वारा जिस स्तर का संगीत प्रसारित किया जाता है, उस प्रकार के संगीत के प्रसारण पर भारत सरकार ने स्वयं रोक लगा दी थी, क्योंकि इस प्रकार का संगीत सांस्कृतिक स्तर गिराता है, इसलिये भारत के पड़ोसी देश द्वारा भारत में इस प्रकार का प्रसारण अनुचित है, दूसरे इस प्रकार के प्रसारण राष्ट्रमंडलीय प्रसारण सेवा द्वारा निषिद्ध कर दिये गये थे ।[1]

श्रीलंका की सरकार ने रेडियों सीलोन की प्रसारणा सेवा की जाँच करने के लिये एक आयोग नियुक्त किया, लेकिन भारतीय भावनाओं के अनुरूप इस आयोगके कोई परिणाम नहीं निकले । दिसम्बर 1957 में भारत सरकार ने विदेशी मुद्रा के प्रश्न के आधार पर सीलोन प्रसारण सेवा को भारतीय विज्ञापनदाताओं द्वारा भेजे हुये धन पर रोक लगाने का निर्णय लिया, जो कि मार्च 1958 से लागू होना था ।

---

1. द हिन्दू 18 अगस्त 1957

भारत सरकार की इस प्रकार की नीति से रेडियो सीलोन में भारतीय विज्ञापनों के प्रसारण में काफी प्रभाव पड़ा परिणामस्वरूप रेडियो सीलोन की वाणिज्यक सेवाओं में काफी गिरावट आयी । श्रीलंका के सूचना एवं प्रसारण मन्त्री ने इस सम्बन्ध में भारत सरकार से विचार विमर्श करना चाहा, लेकिन उन्हें कोई सफलता नहीं मिली, जिसके परिणाम स्वरूप सीलोन प्रसारण सेवा द्वारा भारतीय विज्ञापनों को बहुत ही संक्षिप्त कर दिया गया । 1966 तक दोनों देशों के सम्बन्धों में यह समस्या व्याप्त रही ।

1966 में श्रीलंका की सरकार भारतीय गानों का शुल्क देने को तैयार हो गयी, जिसके परिणामस्वरूप भारत एवं श्रीलंका के बीच इस समस्या का समाधान हो गया ।[1]

अतः रेडियो सीलोन की समस्या को भी भारत एवं श्रीलंका ने पारस्परिक सहमति के आधार पर सुलझाकर इस विवाद का समापन करने में सफलता प्राप्त की थी ।

---

1. द हिन्दू 15 दिसम्बर 1957

गुटनिरपेक्षता की समस्या

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संसार दो विरोधी गुटों में विभक्त हो चुका था सोवियत रूस एवं अमेरिका। साम्यवादी गुट का नेतृत्व सोवियत रूस के हाथ में था तथा पूजीवादी गुट का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका के हाथ में चला गया था । इस समय एशिया एवं अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों के समक्ष समस्या थी कि वे किस गुट की सदस्यता गृहण करे, क्योंकि इन राष्ट्रों को दोनों ही महाशक्तियों से आर्थिक सामरिक एवं राजनैतिक सहायता प्राप्त करनी थी । अत: एशिया एवं अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों ने किसी भी गुट में सम्मिलित न होने का निर्णय लिया । गुटो से पृथक रहने की नीति अर्थात् गुटनिरपेक्षता एशिया के नव जागरण की प्रमुख विशेषता है । 1947 में स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद भारत ने सर्वप्रथम गुटनिरपेक्ष नीति को अपनी विदेशनीति का आधार स्तम्भ बनाया था, इसके बाद एशिया एवं अफ्रीका के अन्य राष्ट्रों ने गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया ।

गुटनिरपेक्ष नीति से तात्पर्य है कि उस देश की विदेश नीति शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व पर आधारित हो, राष्ट्रीय मुक्ति संगठनों को सहयोग प्रदान करे, शीतयुद्ध के फलस्वरूप निर्मित सैनिक संगठनों से पृथक रहे तथा किसी भी महाशक्ति को अपने क्षेत्र में सैनिक अड्डा स्थापित करने की सुविधा प्रदान न करे ।

भारत के समान श्रीलंका ने भी गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया, ऐसा होना स्वाभाविक भी था, क्योंकि अन्य नवोदित राष्ट्रों की भाँति श्रीलंका के समक्ष वैसी ही समस्याये थी जिनके समाधान के लिये उसे भी दोनों गुटों की सहायता अपेक्षित थी ।

भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया, लेकिन श्रीलंका की विदेशनीति का झुकाव पश्चिमी देशों के प्रति विशेष रूप से रहा था । स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही राष्ट्रमण्डल की सदस्यता गृहण की । भारत ने गणराज्य स्थापित करने के साथ भी राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को कायम रखा जबकि श्रीलंका ने आस्ट्रेलिया

एवं कनाडा के समान ब्रिटेन की रानी की अधीनता में राष्ट्रमण्डल की सदस्यता गृहण की थी । 1972 तक श्रीलंका में गणराज्य स्थापित होने तक राष्ट्रमण्डल द्वारा श्रीलंका सरकार की अनुमति से गवर्नर जनरल नियुक्त किया जाता रहा । 1972 में श्रीलंका में गणतन्त्र की स्थापना के बाद श्रीलंका भी भारत के समान राष्ट्रमण्डल की सदस्यता गृहण किये हुये है । अतः प्रारम्भिक वर्षो में श्रीलंका की विदेशनीति पूर्ण रूप से राष्ट्रमण्डल पर आधारित थी ।

भारत - श्रीलंका सम्बन्धों में गुटनिरपेक्ष नीति के कारण प्रारम्भिक मतभेद का कारण श्रीलंका का पश्चिमी गुटों के प्रति झुकाव ही था । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हीं श्रीलंका ने त्रिकोमाली का नौ सैनिक अड्डा तथा कटुनायके का हवाई अड्डा ब्रिटिश नियंत्रण रहने दिया तथा 1955 में श्रीलंका ने सीटों की सदस्यता गृहण करने का प्रयास किया । स्वभाविक रूप से गुटनिरपेक्ष भारत ने श्रीलंका की गुटबद्धता का विरोध किया । 1955 में होने वाले वान्डुग सम्मेलन में श्रीलंका की भूमिका पश्चिमी देशों के प्रवक्ता से कम नहीं थी । श्रीलंका के प्रधानमंत्री कोटलेवाला का मत था कि पश्चिमी साम्राज्यवाद के साथ-साथ सोवियत रूस के साम्यवाद की निन्दा भी आवश्यक है, जबकि भारतीय प्रधानमंत्री नेहरू जी इससें सहमत नही थे ।

1956 में श्री भंडारनायके के शासनकाल में श्रीलंका ने पूर्ण रूप से गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया तथा ब्रिटेन को अपने क्षेत्र से सैनिक अड्डे हटाने के लिये मजबूर कर दिया । श्री भंडारनायके की मृत्यु के बाद श्रीमती भंडारनायके ने भी गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया, लेकिन उन्होने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रभाव में आकर कुछ कार्य किये, गुटनिरपेक्ष नीति पर आधारित नहीं कहा जा सकता । उदाहरणार्थ श्रीलंका ने बंगलादेश मुक्ति संघार्ष के समय अमेरिका एवं चीन के प्रति झुकाव के कारण पाकिस्तान के प्रति पक्षपात का रूख अपनाया ।

1977 से श्रीलंका में यूनाइटेड नेशनल पार्टी का शासन स्थापित हुआ । जयवर्धने सरकार ने भी यह घोषाण की कि उनका देश पूर्ण रूप से गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करेगा, लेकिन वास्तव में श्रीलंका की सरकार का झुझाव इस काल में भी अमेरिका एवं चीन के प्रति रहा है।

---

1. कोडीकारा "फॉरेन पॉलिसी ऑफ श्रीलंका" पृष्ठ - 85

भारत की गुटनिरपेक्ष नीति पर भी सोवियत रूस के प्रति इसके विशेष झुकाव का आरोप लगता है । भारत सोवियत सन्धि 1971 की भी गुटनिरपेक्षता की नीति के आधार पर काफी आलोचना की गयी थी, जबकि भारत – सोवियत मैत्री गुटनिरपेक्ष सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है भारत सोवियत सन्धि संकट के समय के लिये मित्र उत्पन्न करती है, सैनिक गठबन्धन नहीं यह तथ्य यद्यपि सर्वथा सत्य है कि – भारत सोवियत मैत्री के कारण कभी-कभी भारत सोवियत संघ के प्रतिपक्षपात का रुख अपना लेता है तथा रूस की अन्य पेशों के समान अतिकटुता से आलोचना भी नहीं करता है ।

श्रीलंका ने 1981 में अमेरिका को लगभग सौ तेल स्टोरेज त्रिकोमाली बन्दरगाह में बनाने हेतु टेण्डर दे रखा था,[1] जो कि पूर्ण रूप से गुटनिरपेक्ष नीति के प्रतिकूल है, यद्यपि भारतीय शान्ति सेना श्रीलंका में उपस्थिति से इस सम्बन्ध में श्रीलंका अभी कोई नीति स्पष्ट नहीं हो पायी है । श्रीलंका की इस प्रकार की नीतियाँ गुटनिरपेक्ष नीति के अनुकूल नहीं कही जा सकती है।

अतः स्पष्ट है कि भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही अपनी विदेश नीति का आधार स्तम्भ गुटनिरपेक्ष नीति को बनाया है, लेकिन फिर भी महाशक्तियों की नीतियों से प्रभावित होने के कारण इनके मध्य गुटनिरपेक्षता की समस्या उत्पन्न हो जाती है । श्रीलंका का झुकाव प्रारम्भ से ही पश्चिमी देशों के प्रति रहा है, जिसके कारण इस द्वीप ने अपने क्षेत्र में ब्रिटेन एवं अमेरिका को समय-समय पर सैनिक सुविधायें प्रदान की हैं । भारत की भी सोवियत रूस के प्रति झुकाव की नीति के कारण इसकी गुटनिरपेक्ष नीति को भी आलोचनाओं का सामना करना पड़ता है । अतः भारत एवं श्रीलंका दोनों की ही अस्पष्ट नीतियाँ दोनों देशों के मध्य गुटनिरपेक्षता की समस्या पर दृष्टिपात कराती है ।

(भारत एवं श्रीलंका द्वारा विभिन्न गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों में निर्वाह की गयी भूमिका का विवरण षष्ठ अध्याय में किया गया है)

---

1. प्रगति मजूषा जून 1981

****

पंचम् अध्याय

भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में महाशक्तियों की भूमिका

द्वितीय विश्वयुद्ध इतना व्यापक एवं प्रभावकारी था कि इसके अन्त के साथ ही विश्व इतिहास के एक युग का समापन हुआ तथा एक नये युग का सूत्रापात हुआ जिसमें अनेक राज्य उभरे तथा नयी महाशक्तियों का उदय हुआ । विश्व की राजनीति द्वि-ध्रुवीय हो गयी । संयुक्त राज्य अमेरिकाने विश्व राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेकर पूँजीवादी गुट का नेतृत्व करना प्रारम्भ कर दिया तथा सोवियत रूस साम्यबादी गुट की अगुवायी करने लगा । सोवियत रूस एवं संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व की सार्वाधिक शक्तिशाली महाशक्ति के रूप में उभर कर आये । पिछले कुछ वर्षों से अन्तर्राष्ट्रीय जगत द्वि-ध्रुवीयता से शनैः-शनैः बहुकेन्द्रबाद की ओर अग्रसर हो रहा है । 1964 में अणुबम एवं 1967 में हाइड्रोजन बम का निर्माण करके साम्यबादी चीन विश्व नेतृत्व के लिये रूस एवं अमेरिका का प्रतिद्वन्दी बन गया है । वर्तमान समय में एशिया में भारत चीन और जापान, मध्यपूर्व में तेल उत्पादक देश योरोप में योरोपीय आर्थिक समुदाये शक्ति केन्द्र है, जो विश्व के शक्ति – संतुलन को कोई भी मोड़ देने में सक्षम है ।

भारत एवं श्रीलंका दक्षिण एशिया के दो पड़ोसी राष्ट्र है । श्रीलंका को हिन्दमहासागर में महत्वपूर्ण सामरिक स्थिति प्राप्त है, इसलिये विश्व की समस्त महाशक्तियां श्रीलंका को अधिक से अधिक मात्रा में सैनिक एवं आर्थिक सहायता देकर श्रीलंका जैसे सामरिक उपनिवेश प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहती है, जिसका प्रभाव श्रीलंका पर स्वाभाविक रूप से पड़ता है । अमेरिका एशिया में साम्यबादी प्रसार को रोकने के लिये श्रीलंका को अधिक से अधिक मात्रा में सहायता देकर अपने हितों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है । रूस एशिया में चीन एवं अमेरिका के बढ़ते हुये प्रभाव को कम करने के लिये भारत को अधिक से अधिक शक्तिशाली देखना चाहता है । साम्यबादी चीन एशिया में नेतृत्व की भावना के कारण भारत के प्रभाव को कम करने के लिये भारत के पड़ोसी पाकिस्तान एवं श्रीलंका को भारत के विरूद्ध भड़काता रहता है, जिसका प्रभाव स्वाभाविक रूप से भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों पर पड़ता है । जहाँ तक भारत श्रीलंका सम्बन्ध में ब्रिटेन की भूमिका का प्रश्न है, भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में महत्त्वपूर्ण तमिल समस्या

ब्रिटिश उपनिदेशबाद की ही देन है । यद्यपि वर्तमान सभा में ब्रिटेन का प्रत्यक्ष रूप से इस क्षेत्र में कोई हित नहीं टकराता है, लेकिन अमरीकी प्रभाव में आकर ब्रिटेन भी भारत – श्रीलंका सम्बन्धों को प्रभावित करता रहता है ।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद की भूमिका

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, युद्ध के पूर्व ब्रिटेन की गणना महाशक्तियों में प्रथम श्रेणी में होती थी, परन्तु युद्ध के बाद उसकी स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ उसके स्थान को संयुक्त राज्य अमेरिका एवं सोवियत रूस ने ले लिया था । ब्रिटेन मुख्यत: उद्योग प्रदान देश है, द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व ब्रिटेन अपने उद्योगों के लिये कच्चा माल अपने उपनिवेशों से आयात करता था, परन्तु युद्ध के पश्चात् अधिकांश उपनिवेशों की समाप्ति पर ब्रिटेन के लिये विदेशों से कच्चे माल का आयात उतना सरल एवं सुगम नहीं था, जिससे ब्रिटेन की गणना आत्मनिर्भर राष्ट्रों में नहीं हो सकती थी । इन बदलती हुयी परिस्थितियों में ब्रिटेन की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में पहले के समान महत्वपूर्ण भूमिका नहीं थी, लेकिन फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महाशक्तियों के अतिरिक्त शक्ति स्तर पर ब्रिटेन का स्थान महत्वपूर्ण है तथा ग्रेट ब्रिटेन की नीतियाँ विश्वराजनीति में अपना प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवश्य डालती है । भारत एवं श्रीलंका दोनों ही ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अंग रहे है, इसलिये स्वभाविक रूप से भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों को ब्रिटिश उपनिवेशवाद की भूमिका ने बहुत कुछ सीमा तक प्रभावित किया है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत एवं श्रीलंका दोनों ही ब्रिटिश उपनिवेशवउद के अंग थे तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दोनों ने ही ब्रिटिश राष्ट्रमंडल की सदस्यता गृहण की । कोलम्बों योजना के अन्तर्गत ब्रिटेन ने भारत एवं श्रीलंका को पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान की तथा दोनों ही देशों को बड़ी सीमा में ब्रिटेन ने सैनिक सहायता भी प्रदान की ।

ब्रिटिश सैनिक सहायता के माध्यम से भारत जल एवं वायू सेना को विकसित करने में सफल हो सका है, लेकिन फिर भी भारत ने सदैव गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया है, जबकि श्रीलंका की प्रारम्भिक नीतियाँ पूर्ण रूप से ब्रिटिश नीतियों द्वारा ही संचालित थी ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही ब्रिटेन एवं श्रीलंका के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार दोनों देश एक दूसरे को वाह्य शक्तियों से सुरक्षित रखने के लिये संकट के समय सैनिक सहयोग प्रदान करेंगें । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ब्रिटेन ने श्रीलंका की सहमति से नौ सेना, वायू सेना एवं थलसेना के अड्डे श्रीलंका क्षेत्र में स्थापित कर लिये ।[1] श्रीलंका की प्रारम्भिक विदेशनीति ग्रेट ब्रिटेन द्वारा ही निर्देशित थी । 1956 में श्री भंडारनायके के शासन गृहण करने के पश्चात् श्रीलंका ने पूर्ण रूप से गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया तथा ब्रिटेन को अपने क्षेत्र से सैनिक अड्डे हटाने के लिये मजबूर किया नवम्बर 1957 में कटुनायेके एवं त्रिकोमाली से ब्रिटिश सैनिक अड्डे हट गये । श्रीलंका की इस प्रकार की गतिविधियाँ ब्रिटिश के प्रति किसी विरोधी भावना से पूर्ण नहीं थी वरन स्वतन्त्र गुटनिरपेक्ष नीति के कारण थी ।

श्रीलंका के ब्रिटेन से सदैव ही अच्छे सम्बन्ध रहे केवल स्वेज प्रकरण को छोड़कर । स्वेज समस्या के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही ब्रिटेन की नीतियों का विरोध किया । इस सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका का समान दृष्टिकोण था ।

ब्रिटेन के साथ भारत के सम्बन्ध सदैव मित्रतापूर्ण एवं घनिष्ठ रहते हुये भी कुछ विषय ऐसे रहे जिनमे ब्रिटिश नीतियाँ भारतीय हितों के विपरीत रही हैं । कश्मीर के सन्दर्भ में ब्रिटेन ने सदैव पाकिस्तान का ही समर्थन किया है तथा भारत का सदैव विरोध किया । भारत एवं पाकिस्तान के मध्य उभरे हुये विवाद हमें ग्रेट ब्रिटेन द्वारा ही विरासत में प्राप्त हुये है । 1962 के चीनी आक्रमण के समय ब्रिटेन ने भारत के प्रति सहानभूति प्रदर्शित की तथा भारत को सैनिक सहायता भी प्रदान की थी, लेकिन ब्रिटेन के तत्कालिक प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति

---

1. करेडीकारा "फॉरेन पालिसी ऑफ श्रीलंका" पृष्ठ – 85

कैनेडी पर दवाब डाला था कि भारत को 500 मिलियन डालर की सहायता काफी अधिक है उसे घटाकर 120 मिलियन डालर कर दी जाये ब्रिटेन की इस प्रकार की नीतियाँ पाकिस्तानी हितों के अनुरूप थी । ब्रिटेन पाकिस्तान की तुलना में भारत को शक्तिशाली नहीं देखना चाहता था । 1971 के भारत पाक युद्ध के समय ब्रिटेन भारत विरोधी प्रस्तावों को ही अपना समर्थन देता रहा था । इस युद्ध में श्रीलंका की नीतियाँ भी पाकिस्तानी हितों के अनुरूप थी । अतः भारत पाक युद्ध के समय श्रीलंका एवं ब्रिटेन दोनों ने ही अप्रत्यक्ष रूप से पाकिस्तान का ही सहयोग दिया था ।

1967 में ब्रिटेन ने हिन्दमहासागर क्षेत्र से हटने का निर्णय लिया । संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा इस रिक्तता के भरने के प्रयास को सफल बनानें में ब्रिटेन ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया तथा अपने एक द्वीप डियागोगार्सिया में अमेरिका का सैनिक अड्डा स्थापित करवा दिया । भारत श्रीलंका एवं अन्य तटवर्ती रष्ट्रों ने ब्रिटेन एवं अमेरिका की इस कार्यवाही का विरोध किया, लेकिन ब्रिटेन एवं अमेरिका ने किसी की परवाह किये बिना डियागोगार्सिया में सैनिक अड्डे की स्थापना की । श्रीलंका ने ब्रिटेन एवं अमेरिका के इस कार्य की कभी भी भारत के समान उच्च स्वर में आलोचना नहीं की है ।

श्रीलंका की विदेशनिति का झुकाव प्रारम्भ से ही पश्चिमी देशों के प्रति रहा है । सैद्धान्तिक रूप में गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करते हुये भी श्रीलंका की नीतियाँ ब्रिटिश नीतियों से ही प्रभावित रहीं हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटेन ने सदैव श्रीलंका का समर्थन किया है । भारत को भी ब्रिटेन ने राष्ट्रमण्डल का सदस्य होने के कारण पर्याप्त मात्रा में आर्थिक एवं सैनिक सहायता प्रदान की है, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत एवं ब्रिटेन की नीतियों में काफी मतभेद रहा है । दोनों ने ही समय-समय पर एक दूसरे की नीतियों एवं कार्यो की आलोचना की है ।

भारत श्रीलंका सम्बन्धों में विशेषतः तमिल समस्या के समाधान में जो भारत एवं श्रीलंका को ब्रिटेन द्वारा ही विरासत में मिली है, ब्रिटेन ने सदैव श्रीलंका का ही समर्थन किया है । ब्रिटेन तमिल समस्या के स्थाई समाधान पर बल न देकर श्रीलंका को भारी मात्रा में शास्त्रों की

आपूर्ति करवा के भारत के विरूद्ध सशक्त बनाने में प्रयत्नशील रहा है । ब्रिटेन द्वारा श्रीलंका को सैनिक प्रशिक्षण प्रदान किया गया तथा कोलम्बों एवं जाफना के मध्य सैनिक बलों के आवागमन हेतु श्रीलंका द्वारा ब्रिटिश जहाज भी खरीदे गये । अतः तमिल समस्या के सन्दर्भ में ब्रिटेन ने सदैव श्रीलंका का समर्थन करके दोनों देशों के मध्य तनाव उत्पन्न किया है ।

अतः स्पष्ट है कि भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों को ब्रिटेन की नीतियों ने भी प्रभावित किया है, यद्यपि ब्रिटेन वर्तमान समय में महाशक्तियों की श्रेणी में नहीं आता है, लेकिन फिर भी ब्रिटेन आज तक शक्तिशाली राष्ट्र है इसलिये भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध ब्रिटिश भूमिका से सदैव से प्रभावित होते रहे है । भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों का महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व तमिल समस्या वास्तव में दोनों राष्ट्रों को ब्रिटिश उपनिवेशवाद से ही विरासत में प्राप्त हुयी है ।

संयुक्त राज्य अमेरिका की भूमिका

संयुक्त राज्य अमेरिका वर्तमान विश्व के राजनीतिक एवं भौगोलिक मानचित्र पर अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । इसकी भौगोलिक स्थिति उन्नत आर्थिक व्यवस्था तकनीकि स्तर की उच्चता सैनिक शक्ति, विदेशों को सहायता तथा साम्यवादी विस्तार के विरूद्ध मोर्चा आदि अनेक तथा ऐसे तत्त्व है,जिसके कारण आज विश्व की प्रत्येक राजनीतिक एवं आर्थिक घटना से इसका सम्बन्ध है । अतः भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रभावी भूमिका स्वाभाविक है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी विदेशनीति की आधारभूत विशेषता साम्यवाद का अवरोध रही है । 1949 में चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना के साथ ही अमेरिका ने एशिया में साम्यवाद के प्रसार की रोकथाम करने के लिये अनेक प्रकार के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये थे । अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु अमुरिका ने स्वतन्त्राता, न्याय, लोकतन्त्र ,विश्वशान्ति एवं सुरक्षा के नारों के सहारे एशियायी देशों को आर्थिक एवं सैनिक सहायता देना प्रारम्भ कर दिया था । दक्षिणी पूर्वी एशिया एवं दक्षिण एशिया को साम्यवाद के प्रसार से बचाने के के लिये अमेरिका ने सीटों एवं सेण्टों सैन्य सन्धि संगठन निर्मित किये । भारत एवं श्रीलंका अपनी गुटनिरपेक्ष नीति के आधार पर अमेरिका के सीटों एवं सेण्टों सैन्य सन्धि संगठनों में सम्मिलित नहीं हुये, लेकिन अमेरिका की हिन्दमहासागर से सम्बन्धित नीतियों के कारण भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध अछूते नहीं रहे । हिन्दमहासागर सामरिक एवं आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक दृष्टिकोण से संसार का 80% से अधिक व्यापर आवागमन एवं संसार व्यवस्था इसी सागर पर निर्भर करती है । प्रशान्त महासागर एवं अंटलाटिक महासागर के मध्य हिन्दमहासागर एवक सेतु का कार्य करता है । एशिया, यूरोप, अफ्रीका एवं आस्ट्रेलिया महाद्वीपों को जोड़ने वाले वायु एवं जलमार्ग भी हिन्दमहासागर से होकर गुजरते है ।[1] हिन्दमहासागर में छितरे हुये विभिन्न द्वीप विश्व शक्तियों की सामरिक सक्रियाओं को आमंत्रित करते है । अणु हथियारों के संग्रह एवं

---

1. राजवीर सिंह "राष्ट्रीय नक्षा एवं सुरक्षा" पृष्ठ - 139

भविष्य में सफलता पूर्वक प्रयोग करने के लिये यह क्षेत्र एक उपयुक्त एवं कारगर सैनिक अड्डे प्रदान करता है ।[1] श्रीलंका को हिन्दमहासागर में केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है, इसलिये प्रारम्भ से ही अमेरिका श्रीलंका में सैनिक सुविधायें प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहा है तथा श्रीलंका की नीतियों का झुकाव भी संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति रहा है, जिसके कारण भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में सदैव उतार-चढ़ाव आता रहा है ।

स्वतन्त्रता प्रप्ति के साथ ही भारत ने गुटनिरपेक्ष नीति को भारतीय विदेशनीति के महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व का स्थान दिया । भारत यद्यपि अमेरिका के प्रजातान्त्रिक तरीकों पर विश्वास करता था, लेकिन उसका निर्णय था कि वह किसी गुट में सम्मिलित न होकर अपनी स्वतन्त्र निष्पक्षा नीति का अनुसरण करेगा । श्रीलंका ने भी यद्यपि प्रारम्भ से गुटनिरपेक्ष नीति को अपनी विदेशनीति का आधारभूत तत्व बनाया लेकिन व्यवहार में श्रीलंका की नीतियों का झुकाव पश्चिमी गुट के देशों विशेषतः संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर रहा है ।

प्रारम्भ में श्रीलंका सरकार की नीतियाँ पूर्णरूप से साम्यवाद विरोधी थी, इसलिये स्वाभाविक रूप से श्रीलंका अमरीकी विचारधाराओं के समीप था । भारत की गुटनिरपेक्षता की नीतियों को अमेरिका ने सदैव सन्देहों की दृष्टि से देखा था । अमेरिकी विदेशमन्त्री फास्टरडलेस का मत था "कि जो देश स्पष्ट रूप से हमारे साथ नहीं है वो हमारा विरोधी है ।"[2] इसीकारण दक्षिण एशिया में साम्यवाद के प्रसार की रोकथाम के लिये तथा अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका ने पाकिस्तान को भारी मात्रा में सैनिक सहायता देकर भारत के प्रतिद्वन्दी के रूप में तैयार करने का प्रयत्न किया है । श्रीलंका की महत्वपूर्ण सामरिक स्थिति के कारण प्रारम्भ से अमेरिका की नीति श्रीलंका के प्रति रूचिपूर्ण रही है, इसीलिये अमेरिका ने श्रीलंका को प्रारम्भ से ही भारी मात्रा में सैनिक एवं आर्थिक सहायता देकर श्रीलंका जैसे सामरिक उपनिवेश को प्राप्त करने का पुयत्न किया है । अपने इस उद्देश्य की प्रप्ति में अमेरिका को समय-समय पर

---

1. राजवीर सिंह "राष्ट्रीय रक्षा एवं सुरक्षा" पृष्ठ - 139
2. डा० एम० जी० राय "भारत एवं विश्वराजनीति" पृष्ठ - 232

सफलता भी प्राप्त हुयी है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रजातांत्रिक तरीकों पर आस्था प्रकट की लेकिन भारत अपनी गुटनिरपेक्ष नीति पर अटल रहा, जबकि श्रीलंका सरकार की नीतियाँ प्रारम्भ से पूर्णतः गुटनिरपेक्ष नहीं थी । श्रीलंका मंत्रीमण्डल के एक सदस्य के अनुसार "आज विश्व में दो महाशक्तियों का उदय हुआ है संयुक्त राज्य अमेरिका एवं सोवियत रूस । हमें इनमें से एक का अनुसरण करना है, इस सम्बन्ध में कोई मध्यम मार्ग नहीं है । इसलिये हमने निश्चय किया है कि हम सुयुंक्त राज्य अमेरिका तथा इसके प्रजातान्त्रिक सिद्धांतों का अनुसरण करेंगें ।"[1]

प्रारम्भिक वर्षों में श्रीलंका की नीतियों का झुकाव पूर्णतः अमेरिका की ओर था । 1950 में श्रीलंका ने अमेरिका को कोरिया मार्ग के लिये बन्दरगाह उपयोग करने की सुविधा प्रदान कर दी थी ।[2] श्रीलंका की अमरीकी के प्रतिनीतियाँ भारत एवं श्रीलंका के मध्य मतभेद का कारण रही हैं, क्योंकि भारत स्वाभाविक रूप से श्रीलंका की इन नीतियों का विरोध करता रहा है । 1950 में अमेरिका ने श्रीलंका को चार सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत तकनीकि सहायता देना प्रारम्भ कर दिया । 1951 में श्रीलंका का चीन के साथ रबर के सम्बन्ध में समझौता होने के कारण अमेरिका ने श्रीलंका को आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया ।[3] इस समय तक भारत एवं अमेरिका सम्बन्ध भी आर्थिक सहायता तक ही सीमित थे ।

1954 में पुनः प्रधानमंत्री कोटलेवाला ने अमेरिका की सेना के जहाजों को फ्रान्ससे हनोई जाने के लिये कटुनायके का हवाइ अड्डा प्रयोग करने की सुविधा प्रदान कर दी ।[4] भारत ने स्वाभाविक रूप से श्रीलंका की इस प्रकार की नीतियों का बिरोध किया । भारत अमेरिका को दक्षिण एशिया में "फूट डालों एवं शासन करों" की नीति का उत्तराधिकारी समझता था,

1. एच० ऑफ आर० 1950 श्रीलंका का संसद डिवेड – वाल्यूम 8, कालम 293
2. कोडीकारा, फॉरेन पॉलिसी ऑफ श्रीलंका पृष्ठ – 86
3. कोडीकारा, फॉरेन पॉलिसी ऑफ श्रीलंका पृष्ठ – 76
4. वही ।

क्योंकि भारत को अमेरिका द्वारा अपनायी गयी इस नीति के प्रमाण काशमीर एवं अन्य स्थानों पर मिल गये थे । नेहरू जी को अमेरिका की साम्यवाद विरोधी नीति में साम्राज्यवादको गन्ध आती थी । कोरिया युद्ध के समय अमेरिका ने विकासशील देशों को अधिक सहायता देना प्रारम्भ कर दिया था तथा जा देश रूस या अन्य साम्यवादी देशों से आयात करते थे उनकी सहायता में वृद्धि करदी थी ।

साम्यवादी प्रासार की रोकथाम के उद्देश्य से ही अमेरिका ने भारत को भी आर्थिक सहायता देना प्रारम्भ कर दिया था । 1957 से 1961 के मध्य भारत अमरीका के आर्थिक सम्बन्धों के साथ-साथ राजनैति सम्बन्धों में भी वृद्धि होने लगी थी । 1962 के भारत चीन युद्ध में अमेरिका ने सक्रिय रूप से भारत का सहयोग दिया तथा 1965 के भारत - पाक युद्ध में अमेरिका ने तटस्थता की नीति अपनायी, क्योंकि एशिया में चीन के प्रभाव एवं शक्ति को सीमित करने की नीति को प्रमुखता देते हुये अमेरिका उस समय भारतीय राजनीतिक स्थिति को कमजोर नहीं देखना चाहता था । 1962 के भारत एवं चीन युद्ध में श्रीलंका की नीतियाँ भारतीय भावनाओं के विपरीत थी, क्योंकि इस समय श्रीलंका एवं चीन के मध्य आर्थिक सम्बन्ध काफी अच्छे स्तर पर थे तथा 1956 से ही श्रीलंका ने स्वतन्त्र गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करते हुये अमेरिका के साथ चीन एवं रूस से भी मित्रता के प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे । 1963 में श्रीमती भंडारनायके ने स्वतन्त्र गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करते हुये अमेरिका के सातवें जहाजी बेड़े को श्रीलंका के जल में प्रवेश के लिये रोक दिया था तथा एस्सो तथा काल्टेक्स नामक तेल कम्पनियों का राष्ट्रीकरण कर दिया था ।[1] श्रीलंका के इस कदम से संयुक्त राज्य अमेरिका को काफी नाराजगी हुयी, फलस्वरूप अमेरिका ने श्रीलंका को आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया ।

1969 के बाद राष्ट्रपति निक्सन के पदरूढ़ होने के बाद अमेरिका एवं चीन के मैत्री सम्बन्ध स्थापित होने के बाद भारत को अमेरिका की सहायता का प्रश्न स्वतः समाप्त

---

1. दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पृष्ठ - 166

हो गया । अमेरिका ने चीन को दक्षिण एशिया में एक प्रभुत्वपूर्ण शक्ति के रूप में स्वीकार लिया । अमेरिका एवं चीन के मैत्री सम्बन्ध स्थापित होने के साथ ही श्रीलंका की नीतियों का झुकाव स्वाभाविक रूप से अमेरिका की ओर हो गया ।

1971 के भारत एवं पाकिस्तान युद्ध में अमेरिका ने पूर्ण रूप से पाकिस्तान का सहयोग दिया था तथा श्रीलंका ने भी चीन एवं अमेरिका के प्रभाव में आकार पाकिस्तानी नीतियों का समर्थन किया था । 1971 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने भारत पर दवाब डालने के लिये अपना सातवां जंगी जहाजी बेड़ा इन्टरप्राइज जेट विमानों एवं प्रक्षेपास्त्रों से सुसज्जित बंगाल की खाड़ी में भेजा था । श्रीलंका ने युद्ध में पाकिस्तान का सहयोग दिया था । इस काल में पुनः श्रीलंका की नीतियों का झुकाव चीन के माध्यम से पूर्ण रूप से अमेरिका की ओर था ।[1]

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपने आर्थिक एवं सामरिक हितों की पूर्ति के लिये डियागोगार्सिया में एक उन्नत संचार केन्द्र व हवाई एवं नौसैनिक अड्डा निर्मित किया है । हिन्दमहासागर में स्थित इस छोटे से द्वीप ने आज अमेरिकी सैन्य नीति द्वारा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है । डियागोगार्सिया से अमेरिका सम्पूर्ण हिन्दमहासागर पर दृष्टि रखता है, इस लिये डियागोगार्सिया भारत एवं श्रीलंका एवं अन्य हिन्दमहासागर के तटीय राष्ट्रों की सुरक्षा के लिये खतरनाक है । इसीकारण भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग पर बल दिया । भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में प्रारम्भ से हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग की तथा महाशक्तियों की हिन्दमहासागर में उपस्थिति की उच्च स्वर में आलोचना की है । श्रीलंका ने भी यद्यपि हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग की पूर्ण समर्थन किया है, लेकिन श्रीलंका के अमेरिका के प्रति झुकाव के कारण इस द्वीप के द्वारा कभी भी भारत के समान उच्च स्वर में हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की उपस्थित के विषय में आलोचना नहीं की गयी है ।[2]

---

1. कोडीकारा "फारन पालिसी ऑफ श्रीलंका" पृष्ठ - 76
2. पी० के० मिश्रा "साउथ एशिया इन इन्टरनेशनी पालिटिक्स" पृष्ठ - 29

श्रीलंका ने जहाँ हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग का सदैव समर्थन किया है, वहीं इस क्षेत्र में भी अमरीकी सेनाओं को आमंत्रित किया है । 1981 में श्रीलंका ने लगभग सौ तेल स्टोरेज टैंक अमेरिका को त्रिकोमाली बन्दरगाह पर बनाने हेतु टेन्डर दे दिये थे, जिसके बदले में अमेरिका ने 600 मिलियन डालर की सहायता का प्रस्ताव श्रीलंका के सामने रखा था ।[1] श्रीलंका क्षेत्र में किसी विदेशी शक्ति का आमंत्रण भारतीय हितों के सर्वथा विपरीत है, इसलिये भारत की कोई भी सरकार यह सहन नहीं कर सकती कि त्रिकोमाली पर किसी विदेशी शक्ति का अधिपत्य हो । श्रीलंका की इस प्रकार की नीतियों का भारत ने सदैव विरोध किया जिसके कारण भी भारत एवं श्रीलंका के मध्य तनाव उत्पन्न हो गया । अमेरिका को श्रीलंका जैसा सामरिक उपनिवेश मिलने पर भारत तथा अन्य तटीय राष्ट्रों की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है ।

जुलाई 1987 के भारत-श्रीलंका शान्ति समझौते के अन्तर्गत भारत ने इस तथ्य को भी रखा था कि किसी तीसरी शक्ति की श्रीलंका में उपस्थिति नहीं रहेगी, लेकिन समझौते के कुछ दिनों बाद ही इसरायली सैनिकों की श्रीलंका में उपस्थिति का श्रीलंका ने यह तर्क दिया था कि वह समझौते का अंग नहीं है, इसलिये उन्हें श्रीलंका से नहीं हटाया जायेगा । अतः इसी प्रकार का तर्क श्रीलंका अपने क्षेत्र में अमेरिका या अन्य किसी विदेशी शक्ति की उपस्थिति के सन्दर्भ में दे सकता है । भारतीय शान्ति सेना की श्रीलंका से वापसी होने के बाद ही अमेरिका के सम्बन्ध में श्रीलंका की नीतियाँ स्पष्ट हो सकेगी । यद्यपि भारत एवं श्रीलंका के मध्य 1987 शान्ति समझौता सम्पन्न होने के पश्चात् अमेरिका ने दोनों देशों के मध्य तटस्था की नीति अपनायी है तथा 1987 के भारत – श्रीलंका शान्ति समझौते का स्वागत किया है ।

अतः स्पष्ट है कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों को सदैव प्रभावित किया है । अमेरिका की साम्राज्यवादी नीति के कारण भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में अधिकशांता तनाव की स्थिति रही है, क्योंकि अमेरिका की साम्राज्यवादी नीति के प्रभाव में आकर श्रीलंका ने गुटनिरपेक्ष नीति को अपनाने के बाद भी सीटों की सदस्यता प्राप्त करने का प्रयत्न किया तथा अमेरिका को अपने क्षेत्र में बन्दगाह आदि की सुविधाये प्रदान की । श्रीलंका सरकार

1. प्रगति मंजूषा, जून 1987

की इस प्रकार की नीतियाँ भारतीय हितों के विपरीत होने के कारण, भारत ने स्वाभाविक रूप से इन नीतियों का विरोध किया, जिसके कारण दोनों देशों में मतभेद उत्पन्न हुये । अतः संयुक्त राज्य अमेरिका की साम्राज्यवादी नीति ने भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों को मतभेद उत्पन्न करके सदैव प्रभावित किया ।

सोवियत रूस की भूमिका

सोवियत संध वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विशिष्ट स्थान रखता है । सोवियत संघ की नीति सदैव से साम्यवादी प्रसार की रही है । साम्यवाद का मौलिक सिद्धान्त समूचे विश्व में साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रसार तथा पूँजीबाद का उन्मूलन है । द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ ने एक ओर साम्यवादी क्रान्ति के प्रसार हेतु उग्र नीति अपनायी तथा दूसरी ओर पश्चिमी प्रभावों से स्वयं एवे पूर्वी योरोप के साम्यवादी देशों को बचाने के लिये लौह आवरण की नीति का आश्रय लिया है ।

समाजवादी देश होने के कारण सोवियत संघ के लिये यह आवश्यक है कि वह साम्राज्यबाद का विरोध करे तथा औपनिवेशिक जनता के स्वाधीनता संघर्षों को अपना समर्थन प्रदान करे, इसीकारण प्रारम्भ से ही सोवियत रूस ने एशिया एवं अफ्रीका के पराधीन राष्ट्रों के स्वतन्त्रता आन्दोलनों का समर्थन किया तथा साम्राज्यबाद की निन्दा की । अणविक आयुधो तथा अणुवमों के आतंक से पीड़ित मानवता के परिणाम के लिये सोवियत संघ ने शान्ति आन्दोलनों पर बहुत अधिक बल दिया ।

सोवियत संघ की यूरेशिया महाद्वीप में महत्त्वपूर्ण स्थिति, अत्यधिक आर्थिक संसाधन, उच्च तकनीति स्तर आदि अनेक तथ्यों ने सोवियतसंघ को शक्तिशाली स्वरूप प्रदान किया है । विश्वकी प्रत्येक राजनीतिक घटना के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सोवियत संघ का सम्बन्ध है, अतः भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में सोवियत संघ की प्रभावी भूमिका स्वाभाविक है । स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय से ही भारत सोवियत संघ की साम्राज्यबादी एवं उपनिवेशबाद विरोधीनीतियों से प्रभावित था ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत ने विश्व की महाशक्तियों से समान दूरी के सिद्धान्त का पालन करते हुये गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण कर शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के आधार पर अपने सम्बन्ध दूसरे देशों से विकसित किये । सोवियत रूस ने स्टालिन युग में गुटनिरपेक्ष

देशों को न केवल घृणा की दृष्टि से देखा, बल्कि उन्हें पश्चिमी प्रवक्ता एवं अपना विरोधी माना स्टालिन विश्व में केवल साम्यवादी एवं पूंजीबादी दो गुटों के अस्तित्व को स्वीकार करता था । नेहरू, नासिर एवं डा0 सुर्कण जैसे नेताओं को स्टालिन सम्राज्यवादियों का समर्थक समझता था । स्टालिन युग के अन्तिम दिनों में होने वाले घटनाक्रम के कारण रूस का भारत के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित होने लगा। सोवियत नीति में परिवर्तन लाने का श्रेय, भारत-चीन सम्बन्ध कोरिया युद्ध, एशिया में सैनिक गठबन्धन तथा बांडुग सम्मेलन को जाता है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक वर्षों में श्रीलंका की नीतियाँ पूर्ण रूप से साम्यवाद विरोधी थी । प्रारम्भिक वर्षों में श्रीलंका ने ब्रिटेन एवं अमेरिका को सैनिक अड्डे एवं बन्दरगाहों की सुविधाये प्रदान कर दी थी । 1955 के बाडुंग सम्मेलन में श्रीलंका के प्रधानमंत्री श्री कोटलेवाला की भूमिका पश्चिमी देशों के प्रवक्ता के समान थी । इस सम्मेलन में साम्राज्यवाद के एक प्रस्ताव पर भारत एवं श्रीलंका के मध्य मतभेद हो गया । श्री कोटलेवाला को मत था कि पश्चिमी साम्राज्यवादी के साथ रूसी विस्तारवाद की निन्दा भी आवश्यक है, क्योंकि योरोपीय साम्राज्यवाद एवं एशिया एवं अफ्रीका के साम्राज्यवाद में कोई अन्तर नहीं है, जबकि नेहरू जी का मत था कि पूर्वी योरोप के सभी देश स्वतन्त्र एवं सार्वभौमिक है, उन्हें किसी आधार पर उपनिवेश नहीं कहा जा सकता । कोटलेवाला का मत पूर्ण रूप से साम्यबाद विरोधी था ।[1] 1955 में ही बाडुग सम्मेलन से लौटने के बाद श्री कोटलेवाला ने एक वक्तव्य में कहा कि श्रीलंका सीटों की सदस्यता ग्रहण कर सकता है, जबकि कोटलेवाला के अपने दल के सदस्य सीटों की सदस्यता से सहमत नहीं थे, लेकिन कोटलेवाला का यह वक्तव्य पूर्ण रूप से साम्यवाद विरोधी था।[2]

1956 में श्री भंडारनायके के शासनकाल में श्रीलंका ने पूर्ण रूप से गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया तथा अमेरिका एवं ब्रिटेन के साथ-साथ रूस एवं चीन से भी सामान्य सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास किया, स्टालिन काल के बाद सोवियत रूस ने गुटनिरपेक्षता के सम्बन्ध में

---

1. भारत एवं विश्व राजनीति "भारत श्रीलंका सम्बन्ध" पृष्ठ - 217
2. काडीकारा "फॉरन ऑफ श्रीलंका" पृष्ठ - 92

अपना दृष्टिकोण बदल दिया था । सोवियत रूस को यह विश्वास हो गया था कि आधुनिक पृष्ठभूमि में गुटनिरपेक्षता साम्राज्यवाद के विरोध का सूचक है । गुटनिरपेक्षता की नीति का अनुसरण सामान्यत: वे राष्ट्र कर रहें हैं जो औपनिवेशिक दासता के शिकार थे । स्वाधीन होने के बाद ये देश अपनी स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उनके लिये आवश्यक है कि वे विश्व राजनीति के दोनों गुटों से अलग रहें । यदि ये देश गुटनिरपेक्ष रह कर अपनी अर्थव्यवस्था को साम्राज्यवादी अधिपत्य से मुक्त रखने में सफल होते है, तो साम्राज्यवादियों के हाथों से उनकी पुरानी मण्डियाँ निकल जायेगी, जिससे साम्राज्यवाद दुर्वल हो जायेगा । इसलिये सोवियत संघ ने गुटनिरपेक्ष देशों में समुचित मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया, ताकि ये देश साम्राज्यवादियों के दवाब से मुक्त रहें, परिणामस्वरूप जनवरी 1954 से 1963 तक संयुक्त राज्य अमेंरिका एवं सोवियत रूस के मध्य अल्पविकसित राष्ट्रों को आर्थिक सहायता देने की प्रतियोगिता सी प्रारम्भ हो गयी ।

प्रारम्भ में भारत एवं श्रीलंका को प्राप्त होने वाली लगभग सारी विदेशी सहायता पश्चिमी देशों से आती थी । पश्चिम पर भारत की निर्भरता हटाने के लिये अभूतपूर्व सोवियत अभियान शुरू हो गया । भारत में भिलाई व वोकारो इस्पात कारखाना राजस्थान में सूरतगढ़ का कृषि फार्म, हैदराबाद एवं ऋषिकेष में स्थापित ऐण्टी वायोटिक कराखाने आदि सोवियत सहायता के रूप हैं। 1963 में श्रीलंका की सरकार ने अमरीका ऐस्सो एवं कालटेक्स नामक तेल कम्पनियों का राष्ट्रीकरण कर दिया । श्रीलंका के इस कदम से संयुक्त राज्य अमरीका को काफी नाराजगी हुयी,परिणामस्वरूप अमेरिकाने श्रीलंका को आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया। लेकिन सोवियत संघ बिना किसी शर्त के श्रीलंका को आर्थिक सहायता प्रदान करता रहा । सोवियत रूस भारत एवं श्रीलंका दोनों को ही आर्थिक सहायता प्रदान करता रहा, लेकिन भारत एवं रूस सम्बन्ध में निरन्तर बृद्धि होती रही ।

---

1. दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ - 166

1962 के पश्चात् चीन के बढ़ते प्रभाव के कारण रूस एशिया में अपने आपको अकेला महसूस कर रहा था, अतः रूसी हितों के अनुरूप यह आवश्यक था कि वह भारत के साथ एशिया में अपने स्थान को सशक्त बनाये । अक्टूबर 1962 में रूसी रुख भारत के लिये निराशाजनक रहा, लेकिन धीरे-धीरे भारत पर चीनी आक्रमण के सन्दर्भ में सोवियत दृष्टिकोण बदलने लगा तथा रूस ने भारत पर चीनी आक्रमण की कड़ी निन्दा की । 1963 में चीन द्वारा कोलम्बों प्रस्ताव ठुकरा देने पर रूस ने भी चीन की कड़ी आलोना की ।[1] भारत पाक समस्या के समाधान के लिये सोवियत संघ अपनी सेवायें अर्पित करने को तैयार हो गया । कश्मीर एवं गोवा के प्रश्न पर भी सोवियत संघ ने सदैव भारत का समर्थन किया । 1971 में भारत तथा सोवियत संघ के मध्य एक बीस वर्षीय सन्धि पर हस्ताक्षर हुये । यह सन्धि तत्कालिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाचक्र का परिणाम थी, क्योंकि इस समय वाशिंगटन एवं पीकिंग गठबन्धन की रचना की सम्भावना थी । पश्चिमी शक्तियाँ विशेषकर अमेरिका ने बंगलादेश की समस्या को भारत एवं पाकिस्तान की समस्या का षड़यन्त्र रचा था । बंगलादेश में हो रहे नर संहार के कारण भारत में शरणार्थियों की बाढ़ आ रही थी, जिससे भारत में आर्थिक बोझ बढ़ गया था तथा भारतीय सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया था ।

भारत सोवियत सन्धि भारत के साथ-साथ रूसी हितों की पूर्ति भी थी । रूस भारत को एशिया में अपना गढ़ मानता है, इसलिये वह भारत को दुर्बल नहीं बनने देना चाहता था तथा अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच में रूस भारत से सहयोग की अपेक्षा करता था । चीन के बढ़ते प्रभाव को रोकने में रूस अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति कर रहा था । पाक एवं चीन के सम्भावित हमले में भारत रूस से नैतिक समर्थन की अपेक्षा करता था ।

भारत सोवियत सन्धि के सन्दर्भ में यद्यपि श्रीलंका ने प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की थी, लेकिन श्रीलंका को चीन एवं अमेरिका के निकट लाने में इस सन्धि ने अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया था । इससे पूर्व भी श्रीलंका एवं चीन के सम्बन्धों में निरन्तर वृद्धि हो रही थी चीन श्रीलंका को भारी मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान कर रहा था, इसी भावना से प्रेरित

---

1. राजवीर सिंह "राष्ट्रीय रक्षा एवं सुरक्षा" पृष्ठ - 193

होकर भारत पाकिस्तान के युद्ध में श्रीलंका ने पाकिस्तान का सहयोग दिया था । सोवियत रूस नें बंगला देश के प्रश्न पर भारत-पाक युद्ध के समय सुरक्षा परिषद में तथा बाहर भारत का पूर्ण समर्थन किया । इस युद्ध के दौरान जब अमेरिका ने सांतवा जंगी बेड़ा इन्टरप्राइण बिमानों एवं प्रक्षेपस्त्रों से सुसज्जित बंगाल की खाड़ी में भारत पर दवाब डालने के लिये भेजा था, तो सोवियत संघ ने अमेरिका के 14 युद्धपोतों के विरोध में 16 युद्धपोत हिन्दमहासागर में उतार दिये थे।[1] इस प्रकार सोवियत समर्थन के कारण अमरीका का भारत के विरूद्ध युद्धपोत राजनय विफल हो गया तथा अमेरिका भारत के विरूद्ध हस्ताक्षेप की नीति नहीं अपना सका ।

हिन्दमहासागर में सोवियत गतिविधियों का एक बड़ा भाग इस क्षेत्र में अमरीकी संक्रियाओं का प्रतिक्रिया स्वरूप ही सम्पादित होता है । एशिया एवं योरोपीय राष्ट्रों से सोवियत संघ काफी सीमा तक स्थलबद्ध देश है । चीन से किसी भी सम्भावित युद्ध की दशा में इन राष्ट्रों से व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखने तथा शास्त्रपूर्ति कायम रखने के लिये सोवियत संघ का हिन्दमहासागर में उपस्थित रहना अनिवार्य है । इस क्षेत्र में चीनी प्रगति एवं पश्चिमी शक्तियों के कार्यकलापों ने सोवियत संघ के लिये दोहरा संकट उपस्थित कर दिया है, इसीकारण जब श्रीलंका ने अपने क्षेत्र में अमेरिका को सैनिक अड्डे प्रदान करने की सहमति दी तो सोवियत संघ ने भी श्रीलंका में सैनिक अड्डे एवं बन्दरगाहों की सुविधा प्राप्ति हेतु रूचि प्रदर्शित की । श्रीलंका क्षेत्र में किसी विदेशी शक्ति का आमत्राण भारत की सुरक्षा के सर्वथा प्रतिकूल है, इसलिये भारत ने श्रीलंका की इस प्रकार की गतिविधियों का सदैव विरोध किया । श्रीलंका ने यद्यपि हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग पर सदैव भारत का समर्थन किया है, लेकिन अमेरिका के प्रति झुकाव होने के कारण श्रीलंका ने कभी भी हिन्दमहासागर में महाशक्तियों के प्रवेश की आलोचना उच्च स्वर में नहीं की । सोवियत संघ का हिन्दमहासागर में उपस्थिति का तर्क यह है कि हिन्दमहासागर में फैली अणु शक्ति संचालित मिसाइले पनडुब्बियों एवं सैनिक अड्डों से सोवियत संघ की राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया है । अमरीकी सैनिको की वापसी से सोवियत संघ

---

1. राजवीर सिंह "भारतीय रक्षा एवं सुरक्षा" पृष्ठ - 139

की राष्ट्रीय सुरक्षा को कम खतरा होगा, इसके साथ ही सोवियत संघ ने सदैव हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग का समर्थन किया है ।

अत: सोवियत संघ ने कभी भी भारत एवं श्रीलंका के मध्य प्रत्यक्ष रूप से तनाव की स्थिति उत्पन्न करने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि पारस्परिका सौहार्द में बृद्धि का स्वागत किया है । भारत – श्रीलंका समझौता 1987 का स्वागत करते हुये सोवियत संघ के उपप्रधानमंत्री ने एक वक्तव्य में कहा था "भारत – श्रीलंका समझौता इस बात का प्रतीक है कि क्षेत्रीय संघर्ष वास्तविक नीति का अनुसरण करते हुये सुलझाये जा सकते हैं ।"[1]

अत: स्पष्ट है कि सोवियत रूस ने कभी भी प्रत्यक्ष रूप से भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न करने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि सदैव पारस्परिक सौहर्द में बृद्धि करने के लिये प्रेरित किया है, लेकिन भारत एवं सोवियत रूस के बढ़ते हुये मैत्री सम्बन्धों ने अप्रत्यक्ष रूप से श्रीलंका को अमेरिका एवं चीन की ओर अग्रसर होने के लिये प्रेरित किया है । सोवियत संघ अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर भारत से सहयोग की अपेक्षा करता है तथा दक्षिण एशिया में चीन एवं अमेरिका के प्रभाव को रोकने के लिये भारत को सदैव शक्तिशाली देखना चाहता है ।

---

1. पैटिरीयोट 1508 – 1987

साम्यवादी चीन की भूमिका

1949 की साम्यवादी क्रान्ति के बाद विश्व राजनीति में एक शक्ति के रूप में चीन का उदय हुआ । आज परमाणिक शक्ति के क्षेत्र में चीन पश्चिमी देशों के समान स्थान रखता है। अनेक वर्षों के वैमनस्य एवं शत्रुता के बाद भी अमेरिका जैसी महाशक्ति चीन से सम्बन्ध सुधारने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रही है । चीन की बढ़ता हुयी शक्ति के परिप्रेक्ष्य में वर्षों पूर्व जॉन हे ने कहा था "विश्व की शान्ति चीन पर निर्भर है । जो कोई चीन को समझ सकेगा उसी के हाथ में आगामी पाँच वर्षों तक विश्व राजनीति की कुंजी होगी ।"[1] वर्तमान समय में चीन की कूटिनीति रूस एवं अमेरिका को ही नहीं अपितु विश्व के अन्य दूर एवं पड़ोसी सभी देशों को प्रभावित करती है ।

चीनी विचारधारा के अनुसार किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय विशेषत: एशिया से सम्बन्ध रखने वाली समस्या का समाधान तब तक सम्भव नहीं है जब तक चीनी गणराज्य इसमें भाग न ले चीन अपने प्रभाव का विस्तार एशिया में, विशेषत: दक्षिण एशिया में करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहा । चीन ने सदैव अपने को एशिया की महाशक्ति के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, इसलिये भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में चीन की विस्तारवादी नीति की प्रभावी भूमिका स्वाभाविक है ।

अक्टूबर 1949 में चीन में साम्यवादी क्रान्ति का भारत ने स्वागत किया। दिसम्बर 1949 को भारत साम्यवादी चीन को मान्यता प्रदान करने वाला प्रथम गैर साम्यवादी देश था । स्वतन्त्र भारत में हिन्दी - चीनी भाई-भाई का नारा बहुत दिनों तक लोकप्रिय रहा । 1954 में भारत ने तिब्बत पर चीन की प्रभुता को स्वीकार लिया । भारत एवं चीन सम्बन्धों का यह चरमोत्कर्ष काल था ।

---

1. सी0 ए0 फड़िया "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति" पृष्ठ - 46।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक वर्षों में श्रीलंका की नीतियों का झुकाव पूर्ण रूप से पश्चिमी देशों के प्रति था तथा श्रीलंका की नीतियाँ स्पष्ट रूप से साम्यवाद विरोधी थी । प्रारम्भ से ही श्रीलंका में ब्रिटिश एवं अमेरिका से मधुर सम्बन्ध होने के कारण इसके चीन से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे । 1951 में श्रीलंका एवं चीन के मध्य आर्थिक सम्बन्धों का सूत्रापात हुआ । 1952 में श्रीलंका एवं चीन के मध्य पाँच वर्षों के लिये रबर एवं चावल सम्बन्धित समझौते पर हस्ताक्षर हुये जिसके अनुसार श्रीलंका ने 50,000 टन रबर के बदले में 2,70,000 टन चावल लेने का समझौता किया ।[1] इसी समय से श्रीलंका एवं चीन के सम्बन्धों में निरन्तर बृद्धि होती रही ।

1955 में इंडोनेशिया में आयोजित वाडुंग सम्मेलन में भारत, चीन एवं श्रीलंका तीनों देशों ने भाग लिया । एफ्रो एशियायी देशों के साथ सम्पर्क स्थापित करने में नेहरू जी ने चीन की सहायता की थी । वाडुंग सम्मेलन में श्रीलंका के प्रधानमंत्री श्री कोटलेवाला की भूमिका पूर्णरूप से पश्चिमी देशों के प्रवक्ता के समान थी, लेकिन वाडुंग सम्मेलन के बाद कोटलेवाला की साम्यवादी धारणा में कुछ परिवर्तन हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप श्रीलंका ने पोलैंड, चेकोस्लावाकिया एवं रूमानियां आदि समाजवादी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये ।[2]

1956 में श्रीलंका में श्री भंडारनायेके के शासनकाल में पूर्ण रूप से गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण करते हुये पश्चिमी देशों के साथ-साथ रूस एवं चीन से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया । 1956 श्रीलंका एवं चीन ने एक संयुक्त विज्ञप्ति में हस्ताक्षर किये, जिसके अनुसार श्रीलंका एवं चीन कूटनीतिक सम्बन्धों के साथ-साथ आर्थिक एवं सांस्कृति सम्बन्धों में भी बृद्धि करेगे ।[3] श्री भंडारनायेके ने तिब्बत की समस्या को चीन का आन्तरिक विषय घोषित कर उसकी आलोचना करना अस्वीकार कर दिया ।

चीन ने श्रीलंका को भारी मात्रा में ऋण एवं सहायता प्रदान की, जिसके कारण श्रीलंका एवं चीन के सम्बन्धों में निरन्तर बृद्धि होती रही । चीन के श्रीलंका से आर्थिक सम्बन्धों में

1. रमाकान्त चाइन एण्ड साउथ एशिया पृष्ठ - 155
2. रमाकान्त चाइना एण्ड श्रीलंका पृष्ठ - 155
3. वही ।

बृद्धि होने के कारण चीन ने इस क्षेत्र में भारत के प्रतिद्वन्दी का स्थान ले लिया था ।[1]

20 अक्टूबर 1962 चीनी सेना ने बड़े पैमाने पर उत्तरी पूर्वी सीमान्त में तथा इसमें 1,600 किमी की दूरी पर लद्दाख के मोर्चे पर तोपखाने आदि के साथ सीमा विवाद के सन्दर्भ में भारत पर आक्रमण कर दिया । युद्ध आरम्भ होने के एक महीने बाद 21 नवम्बर को चीनियों ने युद्ध बन्दीकी घोषणा कीतथा चीन ने जीते हुये कुछ भारतीय प्रदेशों को भी खाली करना प्रारम्भ कर दिया तथा भारत के कुछ सैनिक सामान को भी वापस कर दिया था ।

भारत - चीन सीमा विवाद के प्रश्न पर श्रीलंका की नीतियाँ भारतीय भावनाओं के विपरीत थी । श्रीलंका में निष्पक्ष नीति का अवलम्बन न करके अप्रत्यक्ष रूप से चीन का समर्थन किया, यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके ने भारत - चीन सीमा विवाद का समाधान करने का प्रयत्न किया था । श्रीमती भंडारनायके के प्रस्ताव पर भारत - चीन सीमा - विवाद की समस्या का हल खोजने के लिये कोलम्बों में छः देशों का एक सम्मेलन हुआ । इस सम्मेलन के प्रस्तावों को लेकर श्रीमती भंडारनायके पेकिंग गयी, वहाँ 31 दिसम्बन से 7 जनवरी 1963 तक श्री चाऊ से इस सम्बन्ध में बातचीत की तथा इसके उपरान्त वे नयी दिल्ली आयी और उन्होंने नेहरू जी से विचार विमर्श किया ।[2] कोलम्बों प्रस्ताव यद्यपि भारत की 8 सितम्बर 1962 की स्थिति को फिर से लाने की माँग को स्वीकार नहीं करते थे तथापि समझौते की दृष्टि से भारत ने इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया, चीन ने इन प्रस्तावों को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करने के बाद भी व्यवहारिक रूप में अस्वीकार कर दिया । इस विवाद के सन्दर्भ में श्रीलंका ने चीन को आक्रमक घोषित नहीं किया तथा ढुलमुल नीति का अनुसरण किया ।

1965 के भारत - पाक युद्ध में चीन ने पाकिस्तान को खुला समर्थन दिया तथा भारतीय पक्ष की कटु आलोचना की, इसके साथ ही भारत को अक्रामक भी घोषित किया । 1971 में बंगलादेश के अभ्युदय के सन्दर्भ में भारत - पाक युद्ध में चीन की शत्रुतापूर्ण का हाथ था ।

---

1. रमाकान्त चाइना एण्ड श्रीलंका रिलेसन पृष्ठ - 155
2. दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ - 506

श्रीमती भंडारनायके ने चीन को प्रसन्न करने के लिये पाकिस्तान के प्रति पक्षपात का रूख अपनाया था, इसीकारण श्रीमती भंडारनायके ने कोलम्बों से होकर पूर्वी पाकिस्तान से पश्चिमी पाकिस्तान को हवाई जहाज आने-जाने की अनुमति प्रदान कर दी थी[1] तथा पाकिस्तानी जहाज कोलम्बों में तेल पानी भी लेते थे । आज की बदली हुयी परिस्थिति में श्रीलंका बंगलादेश के यथार्थ को स्वीकार करता है, लेकिन उसके जन्म के समय श्रीलंका की सहानुभूति उन शक्तियों के साथ थी जो इस शिशु का उसके पालने में ही गला घोटना चाहती थी । अतः 1971 के भारत एवं पाक युद्ध में श्रीलंका की भारत विरोधी नीतियाँ चीन की शत्रुतापूर्ण नीति के कारण ही थी ।

श्रीलंका को चीन द्वारा भारी मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान की गयी । 1971 में चीन ने श्रीलंका को गस्ती नौकायें उपहार स्वरूप प्रदान की । 1972 में श्रीमती भंडारनायके की चीन यात्रा के दौरान दोनों देशों के मध्य व्यापार एवं तकनीकि से सम्बन्धित समझौता हुआ । चीन ने एक करोड़ आठ लाख डालर का 40 हजार टन चावल श्रीलंका को उपहार स्वरूप देने का वचन दिया । इस समय श्रीलंका ने भारत के साथ बहुत सी वस्तुओं का आयात बन्द कर दिया तथा चीन के साथ आर्थिक सम्बन्धों में बृद्धि हुयी । चीन ने श्रीलंका को 150 करोड़ रूपये का व्याजमुक्त ऋण प्रदान किया । 1975 के एक प्रलेख के अनुसार चीन श्रीलंका का सबसे बड़ा व्यापारिक सहयोगी बन गया था, इस प्रकार चीन के कारण भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में गिरावट आयी है । चीन द्वारा श्रीलंका को दी जा रही सैनिक एवं आर्थिक सहायता के दो पक्ष हैं । प्रथम पक्ष शुद्ध व्यवसायिक है, जबकि दूसरा पक्ष राजनैतिक उद्देश्य से प्रभावित है । इस सहायता के माध्यम से चीन श्रीलंका में अपने एक गढ़ की स्थापना करना चाहता है तथा भारत के विरूद्ध अपनी स्थिति सुदृढ़ करना चाहता है । चीन हिन्दमहासागर की उपेक्षा नहीं कर सकता है । हिन्दमहासागर उसकी सुरक्षा व्यापारिक एवं आर्थिक हितों से जुड़ा है । चीन यह समझता है कि रूस के साथ युद्ध होने की स्थिति में उसके नौसैनिक पोत रूस तक प्रक्षेपास्त्र पहुँचा सकते है । अपने इन्हीं सामरिक हितों की पूति के लिये चीन श्रीलंका को भारी मात्रा में आर्थिक एवं सैनिक सहायता प्रदान

---

1. कोडीकारा "फॉरेन पॉलिसी आफ श्रीलंका" पृष्ठ - 139

करके त्रिकोमाली बन्दरगाह में अधिपत्य स्थापित करके हिन्दमहासागर में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना चाहता है, यद्यपि 1971 में जब महासभा में हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र बनाने के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ, तब सिद्धस्त रूप में चीन ने भी इसका समर्थन किया, लेकिन वास्तव में चीन हिन्दमहासागर में अपने प्रभुत्व स्थापित करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहा है ।

भारत की बढ़ती हुयी प्रगति चीन द्वारा एशिया में नेतृत्व के प्रयास में चुनौती है । अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत का सम्माननीय स्थान एफ्रो एशियायी देशों में नेहरू जी का नेतृत्व, संयुक्त राष्ट्रसंघ में एफ्रों एशियायी देशों की बढ़ती संख्या के परिणामस्वरूप भारत का विशिष्ट स्थान आदि प्रारम्भ से ही चीन के लिये भारत के प्रति ईर्षा का कारण रहा है। बाङ्डुग सम्मेलन से ही यह स्पष्ट हो गया था कि चीन एशिया का नेतृत्व चाहता है । भारत-चीन सीमा विवाद वास्तव में एक नेतृत्व का संघर्ष था ।

एशिया में नेतृत्व की भावना से चीन सदैव भारत के विरूद्ध अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये प्रयत्नशील रहा है । अपने इसी उद्‌देश्य की पूर्ति के लिये चीन, भारत के पड़ोसी देशों पाकिस्तान, नैपाल एवं श्रीलंका आदि को भारी मात्रा में आर्थिक एवं सैनिक सहायता देकर भारत के विरूद्ध भड़काता रहा है । भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध चीन की नीतियों से सदैव प्रभावित होते रहे हैं ।

चीन श्रीलंका को साठ के दशक से बराबर आर्थिक एवं सैनिक सहायता प्रदान करता रहा है । 1984 के अन्त में श्रीलंका एवं चीन के मध्य पाँच शंघाइ टाइप पेट्रोल स्टाफ्ट के सम्बन्ध में एक समझौता हुआ । इसके अतिरिक्त चीन श्रीलंका को टाइप 86 एसाल्ट राइफलों की आपूर्ति भी कर रहा है तथा चीन ने श्रीलंका की वायुसेना को प्रशिक्षण देने का भी प्रस्ताव रखा है ।[1] श्रीलंका का लगभग पचास प्रतिशत हथियार एवं गोलाबारूद चीन से आता है । चीन द्वारा श्रीलंका को दी जाने वाली आर्थिक एवं सैनिक सहायता के कारण भारत एवं श्रीलंका के मध्य

---

1. रमाकान्त "चाइना एण्ड श्रीलंका रिलेसन्स" पृष्ठ - 155

सौहार्द उत्पन्न नहीं हो पाता है । चीन ने अपने आर्थिक एवं सामरिक हितों की पूर्ति के लिये सदैव भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न करने का प्रयास किया है । जुलाई 1987 के भारत श्रीलंका समझौते की जहाँ कई देशों ने सराहना की थी तथा आपसी समस्या समाधान हेतु इसे एक सार्थक कदम बताया था, वहीं चीन में इस समझौते को भारतीय हितों के समीप बताया, जिसका श्रीलंका की स्वतन्त्रता एवं सम्प्रभुता पर विशेष प्रभाव पड़ेगा ।[1]

अतः स्पष्ट है कि चीन ने भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में काफी प्रभावी भूमिका का निर्वाह किया है । चीन ने अपने आर्थिक राजनैतिक एवं सामरिक हितों की पूर्ति के लिये सदैव भारत एवं श्रीलंका के मध्य तनाव उत्पन्न करने का प्रयास किया है । चीन की एशिया महाद्वीप में नेतत्व की भावना ने भारत के विपरीत अपनी स्थिति को सदैव सुदृढ़ करने का प्रयास किया है । श्रीलंका के माध्यम से चीन हिन्दमहासागर में अपना गढ़ स्थापित करना चाहता है, जिससे भारतीय सुरक्षा सदैव प्रभावित होती है । श्रीलंका एवं चीन के बढ़ते हुये आर्थिक सम्बन्धों ने स्वभाविक रूप से भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों पर प्रभाव डाला है । अतः स्पष्ट है कि चीन ने भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में सदैव तनाव उत्पन्न करने का प्रयास किया है ।

---

1. रमाकान्त "चाइना एण्ड श्रीलंका रिलेसन्स" पृष्ठ – 155

भारत श्रीलंका सम्बन्धों पर महाशक्तियों की भूमिका का प्रभाव

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दो महाशक्तियों का आर्विभाव हुआ संयुक्त राज्य अमेरिका एवं सोवियत रूस । ग्रेटब्रिटेन एवं साम्यवादी चीन ने भी अतिरिक्त शक्ति स्तर पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया । अपने अस्तित्व से ही से समस्त महाशक्तियाँ विश्व के प्रत्येक घटना को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करती रही है ।

दक्षिण एशिया के क्षेत्र में महाशक्तियों की प्रभुत्व स्थापित करने की नीतियों ने, हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा ने तथा भारत एवं श्रीलंका के मध्य उपस्थित तमिल समस्या के सन्दर्भ में महाशक्तियों के प्रत्यक्ष या परोक्ष हस्ताक्षेप ने भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों पर अमिट प्रभाव डाला है ।

भारत एवं श्रीलंका के मध्य वर्तमान तमिल समस्या ब्रिटिश उपनिवेशवाद की ही देन है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ग्रेटब्रिटेन ने कभी भी निष्पक्ष नीति का आलम्बन करके तमिल समस्या के समाधान का प्रयास नहीं किया है, वरन श्रीलंका को भारत के विरूद्ध शस्त्रों की अधिकाधिक मात्रा में आपूर्ति करवा के इस समस्या को और अधिक जटिल बनाया है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही अमेरिका एवं ब्रिटेन ने श्रीलंका क्षेत्र में सैनिक अड्डे आदि उपभोग करने की सुविधाये प्राप्त कर ली । भारत भौगोलिक दृष्टि से श्रीलंका के काफी समीप स्थित है तथा सामरिक दृष्टि से श्रीलंका को भारत के लिये विशेष महत्व है इसलिये श्रीलंका में किसी विदेशी शक्ति के आगमन से भारत की सुरक्षा प्रभावित होती है । श्रीलंका में ब्रिटेन एवं अमेरिका की उपस्थिति का भारत में सदैव विरोध किया जिसके कारण दोनों देशों में मतभेद उत्पन्न हो गया था ।

भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्ध स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही रहे थे । स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के प्रारम्भिक वर्षों में श्रीलंका का समस्त व्यापार भारत से ही होता था । 1952 में चीन ने श्रीलंका के साथ चाय रवड़ के स्थान पर

चावल देने का समझौता किया तथा चीन ने श्रीलंका को अपने प्रभुत्व के अधीन रखने के लिये समय-समय पर भारी मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान की जिसके परिणामस्वरूप चीन एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में उत्तरोत्तर बृद्धि हुयी । 1971 में श्रीलंका एवं चीन के मध्य व्यापार एवं तकनीकि क्षेत्र में एक समझौता हुआ तथा चीन ने श्रीलंका को एक करोड़ आठ लाख डालर का चालीस हजार टन चावल उपहार स्वरूप श्रीलंका को देने का वचन दिया । चीन एवं श्रीलंका के मध्य व्यापारिक सम्बन्धों में बृद्धि होने के कारण श्रीलंका ने भारत के साथ बहुत सी वस्तुओं का आयात बन्द कर दिया । अत: चीन की आर्थिक नीतियों के कारण भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में गिरावट आयी । चीन की एशिया महाद्वीप में नेतृत्व की भावना ने श्रीलंका को भारी मात्रा में सैनिक एवं आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिये प्रेरित किया, जिससे श्रीलंका भारत के विरूद्ध अपनी स्थिति सुदृढ़ कर सके । चीन ने अपने आर्थिक एवं राजनैतिक उद्‌देश्य की पूर्ति के लिये भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में मतभेद उत्पन्न करने का प्रयास किया है, जिसमे उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुयी है ।

सोवियत रूस एशिया महाद्वीप में भारत को अपना गढ़ मानता है तथा दक्षिण एशिया में अपने महत्त्व को कायम रखने के लिये भारत की स्थिति को कभी भी कमजोर नहीं देखना चाहता है । दक्षिण एशिया में चीन एवं अमेरिका के बढ़ते हुये प्रभाव को रोकने के लिये भारत की स्थिति सुदृढ़ करके अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर भारत से सहयोग की अपेक्षा करता है । अपने इसी उद्‌देश्य की पूर्ति के लिये रूस एवं भारत में 1971 में एक मैत्री सन्धि हुयी । इस मैत्रीसन्धि के परिणामस्वरूप भारत एवं श्रीलंका और भी एक दूसरे से दूर हो गये । श्रीलंका ने यद्यपि इस सन्धि पर कोई प्रत्यक्ष आक्षेप नहीं किया, लेकिन भारत सोवियत मैत्री सन्धि के फलस्वरूप श्रीलंका का झुकाव अमेरिका की ओर और अधिक हो गया तथा इस मैत्री सन्धि ने अमेरिका एवं चीन को एक दूसरे के निकट लाने में सहयोग दिया । अत: भारत - श्रीलंका सम्बन्धों में स्वाभाविक रूप से दूरी उत्पन्न हो गयी है ।

श्रीलंका को हिन्दमहासागर में केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है, इसलिये सभी महाशक्तियाँ श्रीलंका क्षेत्र में सैनिक अड्डे एवं बन्दरगाहो आदि की सुविधा प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहती है 1984 में श्रीलंका ने त्रिकोमाली में अमेरिका के तेल आपूर्ति सुविधा प्रदान करने का वचन दे दिया था उसके स्थान पर अमेरिका श्रीलंका को भारी मात्रा में सैनिक सहायता प्रदान करनी थी सोवियत रूस ने भी त्रिकोमाली में तेल आपूर्ति सुविधा प्राप्त करने में रूचि प्रदर्शित की । त्रिकोमाली पर किसी विदेशी शक्ति का अधिपत्य भारत के लिये चिन्ता का विषय था, इसलिये भारत में श्रीलंका की त्रिकोमाली सम्बन्धी नीतियों की आलोचना की, लेकिन श्रीलंका ने भारत के विरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया, यद्यपि भारतीय शान्ति सेना की प्रभावी भूमिका के बाद अभी भी श्रीलंका की त्रिकोमाली के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट नीति प्रकट नहीं हुयी है, लेकिन श्रीलंका के त्रिकोमाली से सम्बन्धित वक्तव्यों ने भारत का श्रीलंका के प्रति अविश्वास बढ़ाया है । अतः अमेरिका ने भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में परस्पर अविश्वास उत्पन्न करके उन्हें एक दूसरे से दूर करने का प्रयास किया है, जिसमें अमेरिका को सफलता भी प्राप्त हुयी है ।

श्रीलंका द्वारा अपने क्षेत्र में वायस ऑफ अमेरिका के छः ट्रान्समीटरों को स्थापित करने की प्रक्रिया से भारत एवं श्रीलंका के मध्य और अधिक तनाव उत्पन्न हो गया है । ये ट्रान्समीटर इतने अधिक शक्तिशाली है कि पूरा दक्षिण एशियायी क्षेत्र एवं भारतीय उपमहाद्वीप इससे प्रभावित है । अमेरिका द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यो पर श्रीलंका का किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं रहेगा।श्रीलंका की इस प्रकार की गतिविधियों की भारत सरकार द्वारा समय-समय पर कड़ी आलोचना की गयी है, जिससे दोनों देशों के सम्बन्धों में और अधिक कटुता उत्पन्न हो गयी है ।

भारत एवं श्रीलंका के मध्य वर्तमान तमिल समस्या वर्तमान समय में हिन्दमहासागर एवं भारतीय उपमहाद्वीप को प्रभावित करने वाली समस्या है । तमिल समस्या श्रीलंका की आन्तरिक समस्या है, लेकिन श्रीलंका सरकार ने विदेशी शक्तियों की सहायता प्राप्त करके इस समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का स्थान प्रदान किया है । तमिल समस्या के विभिन्न चरणों में श्रीलंका सरकार ने महाशक्तियों से आर्थिक सैनिक एवं नैतिक समर्थन मागा तथा इसके बाद जयवर्धने की

घोषणा कि "जातीय समस्या का सैनिक समाधान उनके पास है" ने भारत एवं श्रीलंका के मध्य अत्यधिक तनाव उत्पन्न कर दिया था । श्रीलंका द्वारा महाशक्तियों का अपने क्षेत्र में आमंत्रण एवं तमिल समस्या के समाधान के लिये महाशक्तियों द्वारा प्रदान की गयी सैनिक सहायता के कारण भारत एवं श्रीलंका के मध्य मतभेद और अधिक बढ़े ।

श्रीलंका में तमिल ईलम माँग रहे उग्रवादियों की स्थिति अत्यधिक सुदृढ़ हो गयी थी, जिसेक कारण श्रीलंका सरकार को यह लगने लगा था कि सरकार को तमिल उग्रवादियों का सामना करने में मुश्किल हो जायेगी । उग्रवादियों का सामना करने के लिये श्रीलंका ने अमेरिका सहित अन्य विदेशी शक्तियों से सहायता माँगी । एक समय तो ऐसा लगा कि श्रीलंका में अमेरिकी फौजें आ जायेगी भारत इस आशंका से बहुत चिंतित था तथा उसने इसके विरोध में अन्तर्राष्ट्रीय गोलबन्दी की कोशिषें भी प्रारम्भ कर दी थी । भारत को इस सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय आवाज देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी, क्योंकि अमेरिका में आसन्न चुनावों को देखते हुये तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति ने जयवर्धने को स्पष्ट शब्दों में बता दिया कि वे अमेरिका से किसी सहयोग की आशा न रखे ।[1]

1987 से भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में महाशक्तियों ने लगभग तटस्थता की नीति का अनुसरण किया है । जुलाई 1987 में भारत एवं श्रीलंका के मध्य हुये शान्ति समझौते का साम्यवादी चीन के अतिरिक्त सभी महाशक्तियों ने स्वागत किया तथा इस समझौते को तमिल समस्या के समाधान की ओर एक महत्वपूर्ण कदम की संज्ञा दी । समझौते के उपरान्त समस्त महाशक्तियों ने तटस्थता की नीति का अनुसरण किया तथा दोनों देशों के सम्बन्ध में कोई भी विवाद उत्पन्न करने की कोशिष न करके दोनों देशों से यह अपेक्षा की कि वे अपने आपसी विवाद परस्पर विश्वास के आधार पर सुलझाये ।

जुलाई 1989 में भारत एवं श्रीलंकर के बीच शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में काफी मतभेद उत्पन्न होने पर भी किसी भी महाशक्ति ने कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की थी ।

---

1. नवभारत टाइम्स 30 जून, 1990

साम्यवादी चीन सहित समस्त महाशक्तियों की यह धारणा रही कि यह भारत एवं श्रीलंका का द्विपक्षीय विवाद है, इसलिये दोनों देशों को इस समस्या समाधान को पारस्परिक विचारविमर्श द्वारा सुलझाना चाहिये । इस सन्दर्भ में किसी भी महाशक्ति ने हस्तक्षेप करने की कोशिष नहीं की ।

अतः स्पष्ट है कि भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में महाशक्तियों ने प्रारम्भ से अधिकांशतः तनाव उत्पनन किया है । संयुक्त राज्य अमेरिका सोवियत रूस, ग्रेट ब्रिटेन एवं साम्यवादी चीन ने अपने हितों की पूर्ति के लिये भारत एवं श्रीलंका के मध्य हस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया है, जिससे प्रभावी होकर भारत एवं श्रीलंका के मध्य अनेक मतभेद उत्पन्न हुये है । भारत – श्रीलंका के मध्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या ब्रिटिश उपनिवेशवाद की देन है । अमेरिका एवं साम्यवादी चीन ने अपनी साम्राज्यवादी नीति के कारण दोनों देशों के मध्य अनेक विवाद उत्पन्न किये है । 1987 से यद्यपि लगभग सभी महाशक्तियाँ दोनों देशों के मध्य तटस्थता की नीति का अनुसरण कर रही है, लेकिन फिर भी भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों में विद्यमान सभी समस्याओं एवं विवाद महाशक्तियों की विस्तारवादी एवं साम्राज्यवादी नीति का ही परिणाम है ।

****

षष्ठ अध्याय

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत एवं श्रीलंका

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विभिन्न राष्ट्र अपनी नीतियों एवं कार्यों के माध्यम से अपने उन राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते है, जो अन्य राष्ट्रों के राष्ट्रीय हितों से टकराते है । अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में तीन महत्वपूर्ण तत्व सन्निहित है – राष्ट्रीय हित, संघर्ष एवं शक्ति । राष्ट्रीय हित अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का लक्ष्य है, संघर्ष उसकी प्रकृति है तथा शक्ति उसका साधन है । अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संघर्ष एवं सहयोग दोनों सन्नहित है, लेकिन सहयोग की अपेक्षा संघर्ष अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि सहयोग स्वयं विवाद से उत्पन्न होता हे । समान उद्देश्य एवं समान हितों वाले राष्ट्र मिलकर अपने हितों की रक्षा के लिये विभिन्न संगठनों का निर्माण करते है तथा अपने आपसी समस्याओं के समाधान का प्रयास करते है । वर्तमान समय में राज्यों के बहुपक्षीय सम्बन्धों के संचालन में तथा समस्याओं के समाधान में अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका का विशेष महत्व है । अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के अस्तित्व से राष्ट्रों के आचरण की स्वतन्त्रता पर गम्भीर अंकुश लगने की सम्भावनाओं में बृद्धि हुयी है ।

भारत एवं श्रीलंका सम्प्रभुता समन्न राष्ट्र होने के नाते अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विभिन्न संघर्षों एवं समस्याओं के सन्दर्भ में अपना मत प्रस्तुत करने के लिये स्वतन्त्र है । भारत एवं श्रीलंका ने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रय संगठनों संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्रमण्डल, गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों एवं दक्षेस आदि में समान रूप से सदस्य होने के माध्यम से विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों एवं समस्याओं को अपने मत एवं कार्यों से प्रभावित करके अपनी स्वतन्त्र भूमिका का निर्वाह किया है । भारत एवं श्रीलंका दोनों ही ब्रिटिश उपनिपेशवाद के अंग थे तथा दोनों ने लगभग साथ-साथ स्वतन्त्रता प्राप्त की थी, इसलिये दोनों के ही हित लगभग समान थे । भारत एवं श्रीलंका ने अपने आर्थिक, राजनैतिक, सैनिक हितों की पूर्ति के लिये स्वतन्त्रता के बाद भी राष्ट्रमण्डल की सदस्यता कायम रखी । दोनों ही एशिया के नवोदित राष्ट्र थे, इसलिये दोनों की विदेशनीति का आधार साम्राज्यबाद उपनिवेशवाद एवं रंगभेद का विरोध था, इसी भावना से प्रेरित होकर दोनों राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र संघ, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एवं दक्षेस में सक्रिय भूमिका का

निर्वाह किया है । यद्यपि भारत एवं श्रीलंका के यद्यपि आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक हित समान है, लेकिन कभी-कभी महाशक्तियों के प्रभाव में आकर तथा कभी आपसी समस्याओं के कारण इन दोनों राष्ट्रों ने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर समान एवं विरोधी मतों का प्रस्तुतीकरण किया है ।

राष्ट्रमण्डल में भारत एवं श्रीलंका

राष्ट्रमण्डल की स्थापना ब्रिटेन की महरानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के अवसर पर साम्राज्य के स्वशासी ब्रिटिश उपनिवेशों द्वारा 1887 में हुयी। प्रारम्भिक काल में राष्ट्रमण्डल औपनिवेशिक सम्मेलन के नाम से जाना जाता था । 1907 में इसे इम्पीरियल कान्फ्रेंस की संज्ञा दी गयी तथा स्वशासी उपनिवेशों को डोमीनियन का नाम दिया गया ।[1] 1926 में इम्पीरियल कान्फ्रेंस की घोषणा के साथ वास्तविक राष्ट्रमण्डल का निर्माण हुआ । इस घोषणा को 1931 के वेस्ट मिनिस्टर विधान के रूप में कानूनी रूप प्रदान किया गया तथा इस संस्था को ब्रिटिश कामन वेल्थ की संज्ञा दी गयी ।[2] 1931 के अधिनियम द्वारा यह भी घोषित किया गया कि राजमुकुट ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्यों के स्वतन्त्र समुदाय का प्रतीक है, लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व राष्ट्रमण्डल में सभी सदस्य राज्य श्वेत जाति के थे । द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन को एशियायी एवं अफ्रीकी प्रदेशों को स्वतन्त्रता देनी पड़ी और चूकि ये देश राष्ट्रमण्डल में रहना चाहते थे इसलिये इन्हें राष्ट्रमण्डल की सदस्यता प्रदान करनी पड़ी । इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के बाद राष्ट्रमण्डल के स्वरूप में परिवर्तन आ गया । भारत, पकिस्तान एवं श्रीलंका ने 1948 में राष्ट्रमण्डल की सदस्यता गृहण कर ली ।

1949 में राष्ट्रमण्डल के स्वरूप में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ । अब तक राष्ट्रमण्डल के सदस्यों के अध्यक्ष गवर्नर जनरल होते थे जिनकी औपचारिक रूप में नियुक्ति राजमुकुट

---

1. राय एम0 पी0 "भारत एवं विश्वराजनीति" पृष्ठ - 311।
2. वही । पृष्ठ - 312

करता था । 1949 में भारत के प्रधानमंत्री ने सम्मेलन में सूचित किया कि भारत गणराज्य होने के साथ राष्ट्रमण्डल की सदस्यता कायम रखना चाहता है । सम्मेलन ने भारत को सदस्य बनाये रखना स्वीकार किया ।[1] भारत के पश्चात् कई अन्य राज्य जो राष्ट्रमण्डल के सदस्य थे गणराज्य हो गये और राष्ट्रमण्डल के सदस्य भी बने रहे। प0 नेहरू ने ही 1949 में लन्दन के राष्ट्रमण्डल सम्मेलन में "सुरक्षा स्वतन्त्राता एवं विकास" के प्रस्ताव को बदलवाकर "शान्ति स्वतन्त्राता एवं विकास" का प्रस्ताव राष्ट्रमण्डल के लक्ष्य के रूप मे पारित किया ।

1971 में सिंगापुर सम्मेलन में, ब्रिटिश सरकार ने भारत के प्रार्थना-पत्र पर ब्रिटिश कॉमनवेल्थ से ब्रिटिश शब्द हटा लिया तथा अब इसका नाम केवल राष्ट्रमण्डल रह गया है ।

वर्तमान समय में राष्ट्रमण्डल प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों का एक अनूठा संगम है तथा परामर्श एवं सहयोग इसके आदर्श है । राष्ट्रमण्डल के सदस्य एकत्रित होकर विभिन्न सामान्य राजनीतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करके प्रयास करते है तथा अपना मत एवं सहयोग देकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निर्वाह करते है ।

भारत एवं श्रीलंका दोनों स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद भी राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहे, लेकिन श्रीलंका ने प्रारम्भ में आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड के समान ब्रिटेन की रानी की अधीनता में राष्ट्रमण्डल की सदस्यता गृहण की थी । 1972 तक श्रीलंका में गणराज्य स्थापित होने तक राष्ट्रमण्डल द्वारा श्रीलंका सरकार की अनुमति से गवर्नर जनरल नियुक्ति किया जाता रहा है । 1972 में श्रीलंका में गणतन्त्रा की स्थापना के बाद श्रीलंका भी भारत के समान राष्ट्रमण्डल की सदस्यता गृहण किये हुये है ।

भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही राष्ट्रमण्डल की सदस्यता आर्थिक राजनैतिक प्रशासनिक एवं सैनिक हितों की पूर्ति के लिये गृहण की थी । भारत एवं श्रीलंका के प्रशासनिक

---

1. के0 के0 कुलश्रेष्ठ "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ - 188

आर्थिक एवं सैनिक हित समान थे । भारत एवं श्रीलंका की प्रशासनिक पद्धति ब्रिटिश शासन पद्धति पर ही आधारित थी, इसलिये दोनों देशों का हित इसी में था कि वह राष्ट्रमण्डल से सदस्यता बनाये रखे । राष्ट्रमण्डल की सदस्यता एशियायी एवं अफ्रीकी देशों के साथ सम्पर्क का एक साधन था । भारत एवं श्रीलंका दोनों ही देशों का राष्ट्रमण्डल की सदस्यता स्वीकार करने के पीछे सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण ब्रिटेन एवं अन्य राष्ट्रमण्डलीय देशों के साथ आर्थिक सम्बन्धों का होना था ।

राष्ट्रमण्डल देशों के आर्थिक कल्याण हेतु 1951 में भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा ब्रिटेन के प्रयत्नों में कोलम्बों योजना का निर्माण किया गया कोलम्बों योजना राष्ट्रमण्डलीय देशों के आर्थिक विकास हेतु दक्षिण एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों के सहयोग का प्रथम प्रयास था । जिसका निर्णय राष्ट्रमण्डलीय देशों के सम्मेलन में लिया गया था ।[1] कोलम्बों योजना की सदस्यता ऐसे राष्ट्रों ने भी गृहण की थी जो राष्ट्रमण्डल के सदस्य नहीं थे । संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी इसकी सदस्यता गृहण की थी । इस योजना के द्वारा खेती चाय रबड़ एवं तकनीकि ज्ञान आदि क्षेत्रों में परस्पर सहयोग के प्रयास किये गये तथा समान व अधिकारों की रक्षा पारस्परिक सहयोग, सामान्य हितों की बृद्धि, आर्थिक कल्याण आदि में वृद्ध के लिये सहयोग के प्रयास किये गये । भारत एवं श्रीलंका दोनों ही राष्ट्रमण्डलीय देशों की कोलम्बों योजना के संस्थापक सदस्य हैं । इन दोनों देशों ने परस्पर आर्थिक सहयोग के क्षेत्र में प्रयास किये है ।

राष्ट्रमण्डल की सदस्यता भारत एवं श्रीलंका दोनों की स्वतन्त्र इच्छा पर आधारित है । भारतत एवं श्रीलंका दोनों ने ही निर्वाध रूप से समय-समय पर अपनी स्वतन्त्र विदेशनीति का परिचय राष्ट्रमण्डल देशों के शिखर सम्मेलन में दिया है । 1950 में राष्ट्रमण्डल देशों के शिखर सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका दोनों ही इस पक्ष में थे कि चीन को मान्यता मिलनी चाहिये, जबकि कनाडा आस्ट्रेलिया एवं स्वयं ब्रिटेन इसके विरोधी थे ।[2] 1957 में राष्ट्रमण्डल देशों के शिखर सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका ने स्वेज आक्रमण के कारण ब्रिटेन की

---

1. देवेन वोहरा "द कॉमनवेल्थ इकोनोमिक कन्फलिक्ट" पृष्ठ - 101
2. के0 के0 कुलश्रेष्ठ "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ - 193

निन्दा की तथा राष्ट्रमण्डल के माध्यम से ब्रिटेन पर यह दवाब डाला कि यह मिश्र पर आक्रमण को समाप्त कर दे । ब्रिटेन को ऐसा ही करना पड़ा । अतः भारत एवं श्रीलंका ने अपनी स्वतन्त्र भूमिका के माध्यम से समस्या समाधान की ओर प्रयास किया ।

1961 में राष्ट्रमण्डल देशों के शिखर सम्मेलन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय रंगभेद नीति से सम्बन्धित था । इस सम्मेलन में भारत श्रीलंका एवं अन्य एशियायी अफ्रीकी सदस्यों ने रंगभेद के अन्त की माँग की तथा दक्षिण अफ्रीका की इस बातपर निन्दा की कि यह काले लोगों के मौलिक अधिकारों का हनन कर रही है,[1] जिसके परिणामस्तः दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि सम्मेलन से चले गये । 20 दिसम्बर 1961 को भारत ने शक्ति प्रयोग के आधार पर पुर्तगाली अत्याचारों से गोआ को मुक्ति दिलायी । ब्रिटेन ने भारत के इस कदम का विरोध किया, लेकिन श्रीलंका सहित अन्य ऐशियायी अफ्रीकी राज्यों ने भारत का समर्थन किया ।

1962 में भारत पर चीन के आक्रमण के समय श्रीलंका सहित कई राष्ट्रमण्डलीय देशों ने न केवल भारत के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की वरन श्रीलंका ने कोलम्बो प्रस्ताव द्वारा इस समस्या का समाधान करने का असफल प्रयास भी किया था । भारत को ब्रिटेन, कनाडा एवं आस्ट्रलिया से सैनिक सहायता भी प्राप्त हुयी थी । 1965 के भारत – पाकिस्तान युद्ध के समय ब्रिटेन ने पाकिस्तान का स्पष्ट रूप से समर्थन किया तथा भारत को अक्रामक ठहराया । श्रीलंका ने इस युद्ध में तटस्थता की नीति का अनुसरण किया था । भारतीय राजनेताओं ने ब्रिटेन के व्यवहार से क्षुब्ध होकर यह माँग की कि भारत को राष्ट्रमण्डल छोड़ देना चाहिये । नेहरू जी ने इस प्रकार की मांगों का उत्तर देते हुये कहा था "आजकल संसार में पहले से ही अनेक विघटनकारी शक्तियाँ है । भारत का यह विशेषाधिकार एवं नीति है कि वह शब्दों के बीच पुल का कार्य करे न कि पहले से बने हुये वर्तमान पुलों को तोड़े । हम अन्य देशों के साथ जो भी सम्पर्क रखते है, चाहे ये राष्ट्रमण्डल के देश हो या अन्य देश उससे शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य में सहायता मिलती है । मैं ऐसी प्रत्येक वस्तु के पक्ष में हूँ जो हमें बांधे बिना एक दूसरे के

1. के0 के0 कुलश्रेष्ठ "अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ – 194

निकट लाती है । किसी भी चीज को तोड़ना सरल है पर उसे बनाना कठिन है ।[1]

1971 में भारत पाक युद्ध के समय ब्रिटेन सहित सभी राष्ट्रमण्डलीय देश तटस्थ रहे, लेकिन शिखर सम्मेलन में ब्रिटेन भारत विरोधी प्रस्तावों को अपना समर्थन देता रहा, यद्यपि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के कारण ब्रिटेन भारत को भी सैनिक शस्त्रों की आपूर्ति करवाता रहा । बंगलादेश के अभ्युदय के समय पाकिस्तान के राष्ट्रपति श्री भुट्टो ने यह घोषित किया कि यदि राष्ट्रमण्डल के देश बंगलादेश को मान्यता प्रदान करेगें तो पाकिस्तान राष्ट्रमण्डल की सदस्यता त्याग देगा । श्रीलंका, ब्रिटेन, न्यूजीलैण्ड एवं आस्ट्रेलिया आदि अनेक राष्ट्रमण्डलीय देशों ने बंगलादेश को मान्यता प्रदान कर दी तो पाकिस्तान ने राष्ट्रमण्डल की सदस्यता त्याग दी ।

1971 तक राष्ट्रमण्डल देशों के शिखर सम्मेलन को कोई औपचारिक नाम नहीं दिया गया था तथा 1971 से पहले राष्ट्रमण्डल देशों के शिखर सम्मेलन लन्दन में ही होते थे । 1971 में पहलीबार राष्ट्रमण्डल देशों का शिखर सम्मेलन ब्रिटेन में न होकर सिंगापुर में सम्पन्न हुआ तथा इस सम्मेलन में राष्ट्रमण्डल देशों के शिखर सम्मेलन का औपचारिक नाम सरकारो के प्रमुख का सम्मेलन रखा गया । ये सम्मेलन प्रति दो वर्ष बाद होते है । इस सम्मेलन में भारत श्रीलंका एवं अन्य एशियायी एवं अफ्रीकी देशों ने ब्रिटेन की दक्षिणी अफ्रीका को हथियार देने की नीतियों की कटु आलोचना की । इसी सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका द्वारा हिन्दमहासागर में महाशक्तियों के शक्ति संघर्ष को समाप्त करने की माँग की गयी, जिससे हिन्दमहासागर शान्ति क्षेत्र घोषित हो सके, लेनिक भारत एवं श्रीलंका को इस कार्य में अभी तक कोई सफलता प्राप्त नहीं हुयी है आज भी हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा जारी है ।

ब्रिटेन एवं कनाडा राष्ट्रमण्डलीय देशों के योरोपीय आर्थिक संगठन में सम्मिलित होने तथा आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड द्वारा सीटो की सदस्यता गृहण करने से भारत श्रीलंका सहित अन्य एशियायी एवं अफ्रीकी देशों के आर्थिक हित एवं विदेश व्यापार पर विशेष प्रभाव पड़ा

---

1. के0 के0 कुलश्रेष्ठ "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ – 200

यद्यपि ब्रिटेन ने आश्वासन दिया है कि वह राष्ट्रमण्डलीय देशों के आर्थिक हितों को ध्यान में रखेगा, लेकिन ब्रिटेन के राष्ट्रमण्डल के बाहर के देशों को सुविधाये प्रदान करने पर भारत एवं श्रीलंका का विदेश व्यापार निश्चित रूप से प्रभावित हुआ है ।

नवम्बर 1983 में राष्ट्रमण्डल देशों का शिखर सम्मेलन भारत में हुआ था । इस सम्मेलन में समस्त अन्तर्राष्ट्रीय सार्वजनिक एवं आर्थिक विषयों पर विचार विमर्श हुआ । सभी राष्ट्रों ने निःशस्त्रीकरण पर विचार विमर्श किया तथा दक्षिणी अफ्रीका में रंगभेद नीति, अफगानिस्तान से विदेशी सेना को हटाने एवं समस्या का राजनीतिक हल ढूढने का आवाहन किया गया । भारत एवं श्रीलंका दोनों ने विशेष रूप से हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की बढ़ती हुयी सामरिक उपस्थिति पर चिन्ता व्यक्त की ।

अब तक राष्ट्रमण्डलीय देशों के 27 शिखर सम्मेलन सम्पन्न हो चुके है । राष्ट्रमण्डलीय राष्ट्रों का 27 वाँ शिखर सम्मेलन मलेशिया की राजधानी क्वालालम्पूर में सम्पन्न हुआ । पाकिस्तान अब पुनः राष्ट्रमण्डल का सदस्य बन गया है । इस सम्मेलन में दक्षिणी अफ्रीका का विषय सर्वाधिक चर्चित एवं विवादास्पद रहा । इस विषय में ब्रिटेन ने ही सभी सदस्य राष्ट्रों से अपना अलग मत प्रस्तुत किया । इस सम्मेलन में भी भारत एवं श्रीलंका सहित अन्य, एशियायी एवं अफ्रीकी राष्ट्रों ने हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने का मांग की तथा निःशस्त्रीकरण पर बल दिया । अगला सम्मेलन जिम्बावे के राजधानी हरारे में होगा ।

अतः स्पष्ट है कि राष्ट्रमण्डल में राजनीतिक विषयों में तो विचार विमर्श होता ही है तथा इसके माध्यम से विकासशील सदस्यों को आर्थिक, शैक्षिक एवं तकनीकि सहायता प्रदान की जाती है । भारत एवं श्रीलंका ने राष्ट्रमण्डल को सदस्य होने के कारण भारी मात्रा में आर्थिक सहायता प्राप्त की है तथा अनेक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर समान विचार व्यक्त है । राष्ट्रमण्डल का सदस्य होने पर भी समय-समय पर भारत एवं श्रीलंका ने ब्रिटेन एवं आस्ट्रेलिया की कटु आलोचना की है तथा भारत एवं श्रीलंका में भी कुछ विषयों में आपस में पर्याप्त

मतभेद रहा है । श्रीलंका में भारतीय मूल के तमिल नागरिकों की समस्या आज भी बनी है, लेकिन फिर भी भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में राष्ट्रमण्डल की प्रभावी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है । राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के कारण भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक एवं राजनीतिक सम्बन्धों का विकास हुआ तथा इसके माध्यम से दोनों देशों को अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में भाग लेने का अवसर भी प्राप्त हुआ । इसके साथ ही दोनों देशों ने राष्ट्रमण्डलीय देशों के शिखर सम्मेलनों में अपनी स्वतन्त्र विदेशनीति का अनुसरण करते हुये समान एवं विरोधी विचार प्रदर्शित किये ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत एवं श्रीलंका

द्वितीय विश्व युद्ध के भीषण नरमेघ एवं विध्वस के ताण्डव ने विचारशील व्यक्तियों को मानव जाति की रक्षा के लिये शान्ति को सुरक्षित बनाये रखने वाले एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के निर्माण की तीव्र आवश्यकता अनुभव करायी थी । विश्व युद्ध के दौरान ही अधिकांश महाशक्तियों ने इस दिशा में प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे । विभिन्न राष्ट्रों के अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप 1945 में सैनफ्रांसिस्को सम्मेलन हुआ तथा 26 जनवरी 1945 को 51 राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र चार्टर पर हस्ताक्षर किये । 24 अक्टूबर 1945 को विधिवत संयुक्तराष्ट्र संघ की स्थापना की गयी । संयुक्त राष्ट्रसंघ का उद्देश्य मानव जाति की भावी सन्ततियों को युद्ध की विभीषिका से बचाना तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखना है । संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व के अनेक राष्ट्रों द्वारा औपनिवेशिक दासता से मुक्ति पाने के लिये किये गये राष्ट्रीय आन्दोलनों में सहयोग किया, जिससे अनेक सार्वभौमिक सत्ता सम्पन्न राष्ट्रों का उद्भव हुआ और विश्व का यह महान लोकतान्त्रिक राष्ट्र भारत मानव मूल्यों की स्थापना के सहयोगियों की अग्रिम पंक्ति में बना रहा । आज संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों की संख्या 159 है ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ मानव जाति का केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही सहयोग नहीं रहा है, यह तो अब विश्व के आर्थिक कल्याण एवं सार्वभौमिक विकास के लिये प्रयत्नशील है । भारत एवं श्रीलंका संयुक्त राष्ट्रसंघ में पूर्ण आस्था रखते हैं तथा दोनों ने ही सदैव संयुक्त राष्ट्रसंघ के राजनैतिक क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभायी है । वर्तमान समय में दोनों ही राष्ट्र संयुक्त राष्ट्रसंघ की लोक कल्याणकारी योजिनाओं को सफल बनाने मे सहयोगी बने हुये हैं।

वर्तमान समय में भारत एवं श्रीलंका दोनों ही संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य हैं । भारत संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रारम्भ से ही सदस्य रहा है, लेकिन श्रीलंका ने संयूक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता 1955 में श्री कोटलेवाला के शासनकाल में प्राप्त की थी । श्रीलंका यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्रारम्भ से प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहा था लेकिन सोवियत रूस

द्वारा लगातार निषेधाधिकार का प्रयोग किये जानेपर श्रीलंका 1955 तक संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता नहीं प्राप्त कर सका ।[1] 1955 में महाशक्तियों के मध्य पैकेज डील [2] अथवा एक मुश्त सौदा की योजना के अन्तर्गत श्रीलंका को संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्राप्त हुयी । भारत एवं श्रीलंका की विदेशनीति संयुक्त राष्ट्रसंघ चार्टर उद्देश्यों पर आधारित है ।

भारत एवं श्रीलंका ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत कई अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर समय-समय पर समान एवं विरोधी मत प्रस्तुत किये हैं । पंचशील के प्रतिपादक प0 जवाहर लाल नेहरू का संयुक्त राष्ट्रसंघ के न्याय में अटूट विश्वास था । उनका मत था कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों को इसकी सेवाओं का अधिकाधिक उपभोग करना चाहिये । संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के स्थाई प्रतिनिधित्व तथा शिष्ट मण्डलों के सदस्यों ने इसके विभिन्न अंगों संस्थाओं व समितियों में सक्रिय भाग लेकर इन्हें सफल बनाने से सहयोग दिया है । कश्मीर एवं गोआ के प्रश्नों पर भारत विरोधी रूख तथा निराशा के बाद भी भारत संयुक्त राष्ट्रसंघ का निरन्तर सहयोग करता रहा है । श्रीलंका ने भी अपनी अपनी सदस्यता गृहण करने के पश्चात सदैव संयुक्त राष्ट्रसंघ में अपनी आस्था प्रकट की है तथा भारत के समान इसके कार्यो में सहयोग देने का प्रयास किया है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व इण्डोनेशिया पर हालैण्ड का अधिकार था । युद्ध के दौरान जापान ने उस पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया । जापान के आत्मसमर्पण के बाद ब्रिटिश व डच सेनाओं ने इण्डोनेशिया पर पुनः डच साम्राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से आक्रमण कर दिया । इण्डोनेशिया के लोग पुनः अपने देश को उपनिवेश बनवाने के लिये तैयार नहीं थे, इसलिये उन्होंने स्वतन्त्राता आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया । इस संघर्ष में अनेक इण्डोनेशियायी एवं ब्रिटिश सैनिक मारे गये । भारत एवं आस्ट्रेलिया ने सर्व प्रथम इस विषय को संयुक्त राष्ट्रसंघ में रखा । अगस्त 1947 को परिषद ने दोनों पक्षों को युद्ध विराम का आदेश दिया तथा विवाद को शान्तिपूर्ण

---

1. विलसन "पॉलिटिक्स इन श्रीलंका" पृष्ठ – 282
2. **पैकेज डील** – महाशक्तियों के मध्य एक समझौता हुआ था, जिसके अनुसार 16 राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्रदान की गई थी । इनमें से चार राष्ट्र पश्चमी समूह के थे, चार सोवियत समूह के तथा आठ गुप्त निरपेक्ष देश थे ।

ढ़ग से हल करने के लिये समितियाँ निर्मित की गयी । इण्डोनेशिया की स्वतन्त्रता के प्रति अन्तर्राष्ट्रीय जनमत तैयार करने तथा डच सरकार पर दवाब डालने के लिये भारत ने 20 जनवरी 1949 को एशियायी देशों का एक सम्मेलन आमंत्रित किया जिसमें श्रीलंका सम्मिलित था । श्रीलंका अफ्रीकी एवं एशियायी देशों में पहला देश था जिसने डचों की कार्यवाही की निन्दा की तथा इण्डोनेशिया के व्यक्तियों के स्वतन्त्रता संग्राम का समर्थन किया ।[1] भारत श्रीलंका एवं अन्य एशियायी देशों द्वारा दिये गये नैतिक एवं सैद्धान्तिक सहयोग द्वारा 27 दिसम्बर 1949 को इण्डोनेशिया स्वतन्त्र गणतन्त्र के रूप में उदित हुआ। स्वतन्त्र भारत को एक परतन्त्र देश को स्वतन्त्रता दिलाने के इस प्रथम प्रयास में अद्वितीय सफलता मिली । श्रीलंका उस समय संयुक्त राष्ट्र संघ के बाहर रहते हुये भी इण्डोनेशिया के स्वतन्त्रता के प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का सहयोग दिया ।

कोरिया समस्या के समय भी श्रीलंका संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं था, लेकिन इस समस्या के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका के मतों में भिन्नता थी । 25 जून 1950 को संयुक्त राष्ट्रसंघ को सूचना दी गयी कि उत्तरी कोरिया की सेनाओं ने दक्षिणी कोरिया के गणराज्य पर आक्रमण कर दिया है । उसी दिन सुरक्षा परिषद की एक बैठक हुयी तथा यह घोषणा की गयी कि इस सशस्त्र आक्रमण से शान्ति भंग हुयी है । भारत ने एक प्रस्ताव के आधार पर उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी घोषित करने का समर्थन किया । श्रीलंका ने कोरिया युद्ध के सन्दर्भ में इण्डोनेशिया के समान कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की । श्रीलंका के तत्कालिक प्रधानमंत्री श्री डी० एस० सेनानायेक का मत था कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की अपील इसके सदस्यों के लिये है । श्रीलंका चूकि संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं है इसलियें उसे विवाद में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है । कोरिया युद्ध 27 जुलाई 1953 को समाप्त हो गया । इस समस्या के सन्दर्भ में श्रीलंका की विचारधारा साम्याबाद के विपरीत थी तथा श्रीलंका ने संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया था ।[2]

स्वेज समस्या के समय श्रीलंका ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्राप्त कर ली थी इस सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका ने एक मत होकर संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यो में सहयोग दिया ।

---

1. सीलोन डेली न्यूज 23 दिसम्बर, 1948
2. निसाफा "श्रीलंका फॉरेन पॉलिसी" पृष्ठ – 116

व्यापारिक एवं सामरिक दृष्टि से स्वेज श्रीलंका के लिये महत्वपूर्ण स्थान है । जुलाई 1956 में मिश्र ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर लिया तो ब्रिटेन फ्रान्स एवं इसरायल ने मिलकर मिश्र पर आक्रमण कर दिया । संयुक्त राष्ट्रमहासभा ने ब्रिटेन, फ्रान्स तथा इसरायली फौजों को मिश्र से हट जाने का प्रस्ताव पारित किया भारत एवं श्रीलंका ने मिश्र पर आक्रमण की निन्दा की तथा दोनों देशों ने मिश्र को अपना पूर्ण समर्थन दिया । भारत के प्रयासों से ही मिश्र संयुक्तराष्ट्रसंघ की सेना रखने को तैयार हुआ । श्रीलंका ने भी संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेना मिश्र में भेजने का पूर्ण समर्थन किया, तथा श्रीलंका के प्रधानमंत्री ने संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा पारित प्रस्ताव का स्वागत किया तथा मिश्र से सभी सेनाओं की वापसी की माँग की ।[1] भारत श्रीलंका एवं अन्य एशियायी देशों के प्रयासोंके परिणामस्वरूप स्वेज समस्या के सन्दर्भ में समझौता सम्पन्न हो सका । अतः स्वेज समस्या के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में अपना समान मत प्रस्तुत किया तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्य में सहयोग दिया ।

हंगरी की समस्या के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका के मतों में समानता नहीं रही । श्रीलंका ने हंगरी में रूसी हस्तक्षेप को अनुचित ठहराया जबकि भारत ने इस सन्दर्भ में अपने को तटस्थ रखा । 10 जनवरी 1957 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने हंगरी के विषय की जाँच के लिये एक विशेष समिति को नियुक्त किया । इस समिति में श्रीलंका आस्ट्रेलिया, डेन्मार्क, टयूनिसिया आदि प्रति विधियों को रखा गया । इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में सोवियत संघ को हंगरी में हस्तक्षेप के लिये दोषी ठहराया ।[2] संयुक्त राष्ट्रसंघ के ग्यारहवे अधिवेशन में समिति की रिपोर्ट के आधार पर सोवियत संघ की हंगरी में हस्तक्षाप करने के लिये आलोचना की गयी । इस सन्दर्भ में भारत ने अपने को अनुपस्थित रखा । अतः हंगरी की समस्या के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में समान मत प्रस्तुत नही किये भारत ने सोवियत संघ प्रति पक्षापात पूर्ण नीति अपनाते हुये सोवियत संघ का स्पष्ट रूप से विरोध नहीं किया तथा अपने को इस विषय के सन्दर्भ में तटस्था रखा ।

---

1. कोडीकारा "फाँरन पाँलिसी आँफ श्रीलंका" पृष्ठ - 103
2. दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" पृष्ठ - 300

कागों की समस्या के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका दोनों में एक मत होकर संयुक्त राष्ट्रसंघ का सहयोग दिया । कागों ने 30 जून 1960 को बेल्जियम के औपनिवेशिक शासन से मुक्ति पायी थी, लेकिन वेल्जियम के षड़्यन्त्र के परिणामस्वरूप 11 जुलाई 1960 को कटंगा प्रान्त ने कागों से अलग होने तथा अपना स्वतन्त्र राज्य बनाने की घोषणा कर दी । कागों के प्रधानमंत्री ने संयुक्त राष्ट्रसंघ से बेलिजयम के आक्रमण एवं षड़यन्त्र के विरूद्ध कागों की सहायता करने का अनुरोध किया । भारत का विचार था कि साम्राज्यवादी देशों के हस्तक्षेप के कारण ही कागों की परिस्थितियाँ खराब हुयी । भारत निरन्तर यह माँग करता रहा कि विदेशी शक्तियों को इस संघर्ष से अपना हाथ हटा लेना चाहिये । संयुक्त राष्ट्रसंघ ने कागों की समस्या के समाधान के लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेना भेजने का निर्णय लिया, जिसे भारत ने सहर्ष स्वीकार करके अपनी सेनायें भी कागों भेजी । श्रीलंका ने भी कागों की समस्या के समाधान के लिये महाशक्तियों के बीच मध्यस्थता करने का प्रयास किया तथा समस्या समाधान में सहयोग दिया । अतः भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही संयुक्त राष्ट्रसंघ में कागों की समस्या के सन्दर्भ में समान मत प्रस्तुत किया तथा समस्या समाधान के लिये सहयोग दिया ।

साइप्रस की समस्या के सन्दर्भ में भी भारत एवं श्रीलंका ने समान रूप से संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत समस्या समाधान हेतु प्रयास किया । साइप्रस में यूनानियों एवं तुर्कों के बीच संघर्ष के कारण गृह युद्ध की सी स्थिति हो गयी थी । साइप्रस के राष्ट्रपति ने सुरक्षा परिषद से शान्ति स्थापित करने की प्रार्थना की । सुरक्षा परिषद ने शान्ति स्थापित करने के लिये संघ की सेना भेजने तथा दोनों पक्षों के मध्य समझौता कराने के लिये एक मध्यस्थ नियुक्त करने का प्रस्ताव पारित किया । संयुक्त राष्ट्रसंघ के सेना भारत व सेनापति ले जनरल ज्ञानी के नेतृत्व में साइप्रस गयी इस सेना को कानून एवं व्यवस्था स्थापित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुयी । श्रीलंका ने भी तुर्की एवं यूनानियों के बीच समझौता कराने का प्रयास करके समस्या समाधान में योगदान दिया ।[1]

---

1. विल्सन "पॉलिटिक्स इन श्रीलंका" पृष्ठ – 284

अतः भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत साइप्रस की समस्या का समाधान करने का प्रयास किया ।

1971 में श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके ने संयुक्तराष्ट्र संघ की महासभा में हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने का प्रस्ताव रखा ।[1] श्रीलंका के इस प्रस्ताव का समर्थन भारत सहित सभी हिन्दमहासागर के तटीय राष्ट्रों ने किया, लेकिन महाशक्तियों ने अपने सामरिक एवं आर्थिक हितों की पूर्ति के कारण हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने में कोई रूचि नहीं प्रदर्शित की थी ।

अरब - इजरायल संघर्ष में भारत एवं श्रीलंका दोनों ही अरब राष्ट्र का समर्थन करते रहे है । भारत ने सदैव इजरायल को अक्रामक घोषित किया है । अरब एवं इजरायल के मध्य अनेक युद्ध हो चुके है, लेकिन समस्या का कोई समाधान नहीं हो पाया है । संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही सदैव अरब का समर्थन किया है तथा इजरायल को आक्रमणकारी घोषित किया है ।

अफगानिस्तान में भी हस्तक्षेप के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका ने पूर्ण रूप से संयुक्त राष्ट्रसंघ में समान विचार व्यक्त नहीं किये है । श्रीलंका ने अफगानिस्तान में रूसी हस्तक्षेप को सदैव अनुचित माना तथा वहाँ से रूसी सेनायें हटाये जाने की माँग का पूर्ण समर्थन किया है । भारत ने भी श्रीलंका के समान अफगानिस्तान में रूसी हस्तक्षेप को सदैब अनुचित माना है, लेकिन भारत ने सोवियत रूस के प्रति समीपता की नीति के कारण श्रीलंका के समान अफगानिस्तान में रूसी सेना की उपस्थिति का कभी स्पष्ट रूप से विरोध नहीं किया। 5 फरवरी 1989 को अफगानिस्तान से रूसी सेनायें पूर्ण रूप से वापस हो चुकी है, लेकिन अफगानिस्तान में अभी भी अस्थिरता की स्थिति बनी हुयी है ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत भारत एवं श्रीलंका ने अन्य अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर समय-समय पर समान एवं विरोधी विचारों को प्रस्तुतीकरण करने के साथ ही कभी-कभी

1. विल्सन "पॉलिटिक्स इन श्रीलंका" पृष्ठ - 284

दोनों देशों ने अपनी आपसी समस्या को भी संयुक्त राष्ट्रसंघ में रखा है ।

भारत ने सर्वप्रथम 1983 में संयुक्तराष्ट्रसंघ के अन्तर्गत निम्न स्वर में श्रीलंका से आने वाले शरणार्थियों की समस्या को रखा । यह पहला अवसर था जब भारत ने श्रीलंका से सम्बन्धित किसी विषय को संयुक्त राष्ट्रसंघ में रखा था । इस समय भारत ने श्रीलंका द्वारा लगाये गये उसके आन्तरिक विषयों में हस्ताक्षेप के आरोप का खण्डन किया तथा तमिलों पर हो रहे अत्याचार का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ में उठाया ।[1] इसके अतिरिक्त मार्ग 1986 में भारत ने जेनेवा में संयुक्त राष्ट्रसंघ वार्ता में श्रीलंका पर मानवाधिकार उल्लंघन का आरोप लगाया तथा संगठन के सदस्यों को श्रीलंका की सेना द्वारा तमिलों के प्रति की गयी हिंसात्मक कार्यवाही के सन्दर्भ में अवगत कराया ।[2]

जून 1989 में श्रीलंका से भारतीय शान्ति सेना की बापसी के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका में काफी विवाद उत्पन्न हो गया था । श्रीलंका के समाचार पत्रों के अनुसार श्रीलंका की सरकार ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में यह आग्रह करने की योजना बनायी थी कि वह शान्ति सेना की वापसी के लिये भारत सरकार से आग्रह करे, लेकिन अन्त में दोनों देशों ने शान्ति सेना के विषय को समझौतावादिता की नीति अपनाकर सुलझा लिया ।

अत: स्पष्ट है कि भारत एवं श्रीलंका ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत विभिन्न समस्याओं के सन्दर्भ में समय-समय पर अपना मत एवं सहयोग देकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करने के साथ ही कभी-कभी अपनी आपसी समस्याओं को भी संयुक्त राष्ट्रसंघ के माध्यम से समाधान करने का प्रयास किया है ।

---

1. एशियन रिकॉर्डर 17 - 23 दिसम्बर, 1983
2. एशियन रिकॉर्डर 16 - 22 अप्रैल, 1986

गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों में भारत एवं श्रीलंका की भूमिका

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन आज विश्व राजनीति में प्रभावोत्पादक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है ।[1] गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उत्पत्ति कोई संयोगमात्र नहीं थी, अपितु यह सुविचारित अवधारणा थी । इसका उद्देश्य नवोदित राष्ट्रों की स्वाधीनता की रक्षा करना था तथा युद्ध की सम्भावनाओं को रोकना था । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व दो गुटों में विभाजित हो गया - सोवियत रूस एवं अमेरिका । अतः उस समय एशिया एवं अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों के सम्मुख अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखने की समस्या थी जिसके परिणाम स्वरूप गुटनिरपेक्षता का प्रादुर्भाव हुआ । एशिया एवं अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों ने अपनी स्वतन्त्र विदेशनीति का संचालन करते हुये दोनों गुटों की राजनीति से पृथक रहते हुये तथा दोनों गुटों से समान रूप से आर्थिक एवं सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिये गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया। 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत ने सर्वप्रथम गुटनिरपेक्ष नीति को अपनी विदेशनीति में महत्वपूर्ण स्थान दिया इसके बाद श्रीलंका सहित एशिया के अन्य देशों ने इस नीति में अपनी आस्था प्रकट की ।

1955 में कोलम्बो समूह द्वारा आयोजित एफ्रो - एशियायी राष्ट्रों के वान्डुंग सम्मेलन में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की नीव डाली गयी थी । इस सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका ने सक्रिय रूप से भाग लिया था । इस सम्मेलन में उपस्थित 25 देशों द्वारा उपनिवेशवाद का खण्डन, नवस्वतन्त्र राष्ट्रों के विकास एवं सहयोग की अनिवार्यता पंचशील एवं शान्तिपूर्ण सहचारिता के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय तनावों को दूर करने की माँगो ने गुटनिरपेक्षता आन्दोलन के वैचारिक एवं दार्शनिक आयामों पर बल दिया । इसके पश्चात नेहरू जी एवं टीटो ने ब्रियोनी में एक सुयुक्त घोषणा पत्र द्वारा इस सम्मेलन की नीतियों एवं प्रस्तावों का अनुमोदन कर गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया ।[2]

---

1. खान रक्षीउद्दीन "पर्सपेक्टव ऑन नॉन एलाइनमेन्ट एडीरिड वोर्ड कलमकर प्रकाशन" पृष्ठ - 19
2. राजवीर सिंह "राष्ट्रीय रक्षा एवं सुरक्षा" पृष्ठ - 85

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अथवा शिखर सम्मेलन गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का सबसे बड़ा अधिवेशन है, जो प्रति तीन वर्ष बाद होता है । जिसमें गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के शासनाध्यक्ष भाग लेते हैं । गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने अपने आन्दोलनों द्वारा विश्व राजनीति की विभिन्न समस्याओं पर गम्भीर रूप से विचार विमर्श किया है तथा उनके समाधान के लिये कई महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये हैं, जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है । भारत एवं श्रीलंका ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया है । स्वतन्त्राता आन्दोलन से विरासत में मिली नीति, भारत की आर्थिक एवं सामरिक स्थिति भारतीय दर्शन एवं संस्कृति की माँग एवं नेहरू के योग्य नेतृत्व ने गुटनिरपेक्षता को भारतीय विदेशनीति का मौलिक आधार बना दिया । श्रीलंका ने भी अपनी विदेशनीति में गुटनिरपेक्षता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है तथा प्रारम्भ से ही गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करके समय-समय पर भारत के समान एवं विरोधी मतों का प्रस्तुतीकरण किया है ।

गुटनिरपेक्ष देशों का प्रथम शिखर सम्मेलन 1961 में योगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में सम्पन्न हुआ था।इस सम्मेलन में 28 देशों को आमंत्रित किया गया था, जिसमें 25 देशों ने अपने प्रतिनिधि भेजकर तथा तीन देशों ने अपने पर्यवेक्षक भेजकर इस सम्मेलन में भाग लिया था । इस सम्मेलन में ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित किया गया था जिनमें विश्व युद्ध आरम्भ हो सकता था । इस सम्मेलन में साम्राज्यवाद का विरोध तथा दक्षिणी अफ्रीका की रंगभेद नीति की भर्त्सना की गयी थी, इसके साथ ही शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धान्त में आस्था प्रकट की गयी थी ।[1]

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रथम शिखर सम्मेलन में भारत के प्रधानमंत्री प0 जवाहरलाल नेहरू एवं श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके ने भाग लिया था । इस सम्मेलन में भारत, श्रीलंका एवं नैपाल ने फ्रांस एवं पुर्तगालियों के मुक्ति अभियान के विश्वव्यापी आन्दोलन का समर्थन किया तथा दक्षणी अफ्रीका की रंगभेदी नीति की आलोचना की । इसके

1. पी0 के0 मिश्रा "साउथ एशिया इन इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स" पृष्ठ - 27

साथ ही इन सभी देशों ने अणु परीक्षण निषेध आन्दोलन का समर्थन किया ।[1] अतः गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के प्रथम शिखर सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका ने सहयोगी के रूप में कार्य किया तथा इस समय इन दो देशों के मध्य किसी भी विषय पर मतभेद उत्पन्न नहीं हुआ था ।

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का द्वितीय शिखर सम्मेलन मिश्र की राजधानी काहिरा में आयोजित हुआ । इस सम्मेलन में 48 देशों के प्रतिनिधि एवं 11 पर्यपेक्षकों ने भाग लिया था । इस सम्मेलन में उपनिवेशवाद समाप्त करने तथा शान्ति एवं सहअस्तित्व की भावना पर बल दिया गया ।

काहिरा सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका ने शीत युद्ध एवं उसके दुष्परिणामों को विशेष महत्व दिया । इस सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका ने दक्षिणी अफ्रीका के मुक्ति आन्दोलन का स्वागत किया तथा विश्व में किसी भी प्रकार के जाति भेद एवं रंगभेदी भावनाओं की आलोचना की तथा निःशास्त्रीकरण के सुझाव का पूर्ण समर्थन किया ।[2] इस सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया तथा दोनों देशों में इस समय भी कोई मतभेद नहीं हुआ ।

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का तृतीय शिखर सम्मेलन जाम्बिया की राजधानी लुसाका में 1970 में सम्पन्न हुआ । इस सम्मेलन में 53 देशों ने पूर्ण सदस्य के रूप में भाग लिया तथा 12 देशों ने पर्यपेक्षक के रूप में भाग लिया ।

लुसाका सम्मेलन में सर्वप्रथम भारत एवं श्रीलंका ने हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने पर बल दिया तथा दोनों ही देशों ने इसरालियों के अरब क्षेत्र में प्रवेश करने के कारण आलोचना की । भारत एवं श्रीलंका ने दक्षिण अफ्रीका में राजनैतिक जेलवासियों के साथ किये गये दुर्व्यवहार की कठोर आलोचना की । दोनों ही देशों ने निःशस्त्रीकरण का समर्थन किया ।[3]

---

1. पी० के० मिश्री साउथ एशिया इन इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स" पृष्ठ – 27
2. वही ।
3. वही ।

गुटनिपेक्ष राष्ट्रों का चतुर्थ शिखर सम्मेलन अल्जीरिया की राजधानी अल्जीयर्स में 1973 में सम्पन्न हुआ । इस सम्मेलन में 75 देशों ने पूर्ण सदस्य के रूप में तथा 9 देशों ने पर्यवक्षाक के रूप में भाग लिया । चतुर्थ शिखर सम्मेलन तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अभूतपूर्व परिवर्तन आ चुका था । शीत युद्ध की वैमनस्यता के स्थान पर तनाव शैथिल्प ने महत्वपूर्ण स्थान ले-लिया था, जिससे शान्ति की समस्या के समझौते की अनिवार्यता क्षीण हो गयी थी, तथा उसके स्थान पर तृतीय विश्व के लिये नयी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की अनिवार्यता ने उच्च वरीयता प्राप्त कर ली थी ।[1] इसी कारण सम्मेलन ने अपने घोषणा पत्र में स्पष्ट रूप से कहा कि विश्व की राजनीतिक एवं आर्थिक नीतियों के गठन में विकासशील देशों की आवाज सुनी जाने के लिये निर्गुट राष्ट्र सम्मिलित रूप से विकसित राष्ट्रों पर दवाब डालेगे ।

अल्जीयर्स सम्मेलन में राजनीतिक दृष्टि से वियतनाम युद्ध मुख्य विषय वस्तु रहा । इस सम्मेलन में भारत श्रीलंका सहित दक्षिण एशिया के अन्य राष्ट्रों ने पेरिस शान्ति समझौते का स्वागत किया । तथा भारत एवं श्रीलंका ने अफरीका एवं लैटिन अमेरिका के साम्राज्यवाद की समान रूप से आलोचना की एवं जाति विद्वेश के उन्मूलन का समर्थन किया ।[2] चतुर्थ शिखर सम्मेलन में भी भारत एवं श्रीलंका ने सभी अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर समान मत प्रस्तुत किये तथा किसी विषय में भी दोनों राष्ट्रों में मतभेद उत्पन्न नहीं हुआ ।

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का पाँचवा शिखर सम्मेलन श्रीलंका की राजधानी कोलम्बों में 1976 में आयोजित किया गया । इस सम्मेलन में 86 देशों ने पूर्ण सदस्य के रूप में, 13 सदस्यों ने पर्यवेक्षाक के रूप में तथा 7 सदस्यों में अतिथि के रूप में भाग लिया । कोलम्बों सम्मेलन में भारत ने मुख्य भूमिका का निर्वाह किया तथा सम्मेलन में मुख्य स्वर भारत का ही रहा । इस सम्मेलन में पश्चिमी एशिया, साइप्रस फिलिस्तीनी समस्या तथा दोनों कोरिया के एकीकरण की समस्याओं का विश्लेषण किया गया तथा मुक्ति आन्दोलनों का समर्थन किया गया ।[3]

---

1. राजवीर सिंह "राष्ट्रीय रक्षा एवं सुरक्षा" पृष्ठ - 89
2. पी0 के0 मिश्रा "साउथ एशिया इन इन्टरनेशनल पॉलिटिस्क" पृष्ठ - 29
3. पी0 के0 मिश्रा "साउथ एशिया इन इन्टरनेशनल पालिटिक्स" पृष्ठ - 29

इस सम्मेलन में डियागोगार्शिया में अमेरिका की उपस्थिति का प्रश्न उठाया गया तथा भारत श्रीलंका सहित दक्षिण एशिया के अन्य राष्ट्रों ने हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग पर बल दिया । इस सम्मेलन में भारत एवं बंगलादेश ने उच्च स्वर में हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की उपस्थिति की आलोचना की तथा हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने के प्रस्ताव पर बल दिया । इसके विपरीत श्रीलंका एवं नैपाल ने दबे स्वर में हिन्दमहासागर में अमरीका की उपस्थिति की आलोचना की जबकि श्रीलंका ने स्वयं सर्वप्रथम हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग की थी तथा सदैब इस माँग का समर्थन किया है,[1] लेकिन अमरीकी नीतियों के प्रभाव के कारण श्रीलंका ने कभी भी हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की उपस्थिति की स्पष्ट रूप से आलोचना नहीं की । अत: कोलम्बो शिखर सम्मेलन में भी भारत एवं श्रीलंका ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर समान विचार व्यक्त किये, लेकिन हिन्दमहासागर में अमेरिका के उपस्थिति के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका के मतों में कुछ विभिन्नता उत्पन्न हो गयी थी ।

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का छंठवा आन्दोलन क्यूवा की राजधानी हवाना में 1979 में राष्ट्रपति डा० फिदले कोस्त्रो के साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद एवं अमरीका विरोधी भाषणों के साथ प्रारम्भ हुआ । यह पहला अवसर था जब किसी लतीनी अमरीका देश में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का आयोजन हुआ था । इस सम्मेलन में 96 देशों ने अपने राष्ट्राध्यक्षों अथवा विदेशमंत्रियों के माध्यम से भाग लिया । भारत का प्रतिनिधित्व इस सम्मेलन में भारत के तत्कालीन विदेशमंत्री श्यामनन्दन मिश्र ने भाग लिया था, यह पहला अवसर था जब भारत के पधानमंत्री का स्थान गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में रिक्त रहा था ।

हवाना सम्मेलन में भारत श्रीलंका सहित दक्षिण एशिया के राष्ट्रों ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, नवउपनिवेशवाद एवं नस्लवाद के विरोध में विचार व्यक्त किये तथा दक्षिणी अफ्रीका के मुक्ति आन्दोलन का समर्थन किया । दक्षिण एशिया के समस्त राष्ट्रों ने जाम्बिया एवं

---

1. पी० के० मिश्रा "साउथ एशिया इन इन्टरनेशनल पालिटिक्स" पृष्ठ – 29

जिम्बाम्बे के मुक्ति आन्दोलन का समर्थन किया तथा नस्लबाद के विरोध में सम्पन्न जेनेवा वार्ता 1978 का स्वागत किया । भारत श्रीलंका सहित दक्षिण एशिया के राष्ट्रों ने कम्पूचिया में वियतनाम के सैनिक हस्तक्षेप की आलोचना की ।[1]

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का सातवाँ शिखर सम्मेलन भारत की राजधानी नयी दिल्ली में श्रीमती इन्दिरागाँधी की अध्यक्षता में 1983 में सम्पन्न हुआ था । इस सम्मेलन में 100 देशों ने भाग लिया । इस सम्मेलन में साम्राज्यवाद, उपनिवेशवदा, नवउपनिवेशवाद के विरोध के साथ ही फिलिस्तीनी समस्या तथा उसके दौरान प्रदर्शित इजरायली उग्रवादिता, ईरान-ईराक युद्ध, नाम्बिया की स्वतन्त्रता, कन्यूचिया एवं दक्षिणी अफ्रीका द्वारा प्रदर्शित रंगभेद नीति पर विस्तृत विचार किया गया ।

इस सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका के मध्य महाशक्तियों की नीति के कारण कुछ मतभेद उभर कर आये । श्रीलंका ने मारिसस की डिपागोगार्सियाँ से अमेरिका की वापसी की माँग को हिन्दमहासागर में गैर शास्त्रीकरण करने के तथ्य से एक बद्ध नहीं होने दिया ।[2] जबकि भारत ने डिपागोगार्सिया में अमेरिका की उपस्थिति की खुलकर निन्दा की थी । हवाना सम्मेलन के तीन माह बाद ही सोवियत फौजे अफगानिस्तान में आ गयी थी । इससे न केवल अफगानिस्तान, पाकिस्तान एवं ईरान के आपसी सम्बन्ध विगड़ गये थे, वरन सम्पूर्ण दक्षिण पश्चिम एशिया विश्व राजनीति का ऐसा भर्मस्थल बन गया था, जिससे पुनः विश्वयुद्ध के नगाड़ों की हवनि गुन्जायमान होने लगी थी दोनों महाशक्तियों के बीच चल रही परिसीमन वार्ता भंग हो गई थी । अमेरिका ने खाड़ी के देशों, हिन्दमहासागर तथा पाकिस्तान में अपनी सैनिक उपस्थित को बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया ।

अफगानिस्तान के सन्दर्भ में राष्ट्रों ने सोवियत कार्यवाही को उचित ठहराया तथा कुछ ने इसका विरोध किया । भारत ने सोवियत संघ का विरोध करने के स्थान पर यह माना कि

---

1. पी० के० मिश्रा "साउथ एशिया इन इन्टरनेशनल पालिटिक्स" पृष्ठ - 29
2. प्रगति मंजूषा अप्रैल, 1983 पृष्ठ - 63

अफगानिस्तान से सोवियत सेना की बापसी एवं विदेशी हस्ताक्षेप की समाप्ति एक साथ हो जानी चाहिये, जबकि श्रीलंका ने अफगानिस्तान में सोवियत कार्यवाही की खुलकर निन्दा की । अत: नयी दिल्ली सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका के मध्य कुछ विषयों पर मतभेद प्रकट हुये ।

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का आठवाँ शिखर सम्मेलन जिम्बावे की राजधानी हरारे में 1986 में सम्पन्न हुआ । इस सम्मेलन में 101 सदस्यों ने भाग लिया । इस सम्मेलन में यूनान, मगोलिया एवं आस्ट्रेलिया के पर्यवेक्षकों को विशेष स्थान दिया गया । इस सम्मेलन में भारत श्रीलंका सहित अन्य सदस्य देशों ने दक्षिण अफ्रीका की रंगभेदी सरकार के विरूद्ध आर्थिक एवं राजनीतिक नाकेबन्दी की घोषणा की तथा सदस्य देशों को आर्थिक एवं तकनीकि क्षेत्र में सहयोग देने के लिये भारत के नेतृत्व में एक प्रभाकारी कार्य योजना अफ्रीका कोष तैयार की गयी थी । अफ्रीका कोष का मुख्यालय नयी दिल्ली में है । इस सम्मेलन में साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद की कड़ी आलोचना की गयी । भारत एवं श्रीलंका ने इस सम्मेलन में समान विचार व्यक्त किये तथा कोई टकराव की स्थिति उत्पन्न नहीं हुयी ।

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का नवाँ शिखर सम्मेलन योगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में 4 से 7 सितम्बर 1989 में सम्पन्न हुआ । इस आन्दोलन में 102 सदस्य देशों ने भाग लिया इस सम्मेलन में भाग लेने के लिये भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के साथ राजीव गाँधी गये । वेलग्रेड पहुँचने पर श्री राजीव गाँधी ने कहा "गुटनिरपेक्ष देश विश्व की मूल सोच बदलने का प्रयास करते है । हम महसूस करते है कि युद्ध का कोई समाधान नहीं है ।[1] इस सम्मेलन में अणविक नि: शास्त्रीकरण विश्व – व्यापी आर्थिक असमानताओं को दूर करने उपनिवेशवाद का समापन पर्यावरण एवं मानवाधिकार की रक्षा तथा संयुक्त संघ की भूमिका प्रभावी बनाने के विशिष्ट विषयों पर विचार विमर्श किया गया । नवें गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के घोषणा पत्र को लेकर निर्गुट विदेशमंत्रियों में गहरा मतभेद रहा था । कुछ आफ्रीकी, लैटिन अमरीकी एवं एशियायी देशों ने मसविदे के प्रारूप

1. नव भारत टाइम्स 5 सितम्बर, 1989

पर तीखा प्रहार किया था, किन्तु दसरी ओर भारत अल्जीरिया इंडोनेशिया अर्जेन्टीना, बंगलादेश श्रीलंका, जेनेवा पेनेजुसला, लीविया आदि अनेक देशों ने मोटे तौर पर मसौदे का समर्थन किया ।[1]

इस सम्मेलन में भारत श्रीलंका सहित अन्य सदस्य देशों ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद एवं भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने वेलग्रेड शिखर सम्मेलन में पृथ्वी संरक्षण कोष की स्थापना का एक प्रस्ताव रखा तथा भारत एवं श्रीलंका ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त किये । इस सम्मेलन में विकासशील देशों के आर्थिक विकास सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार विमर्श किया गया ।[2]

अतः स्पष्ट है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों में भारत एवं श्रीलंका ने प्रारम्भ से सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया है । दोनों देश गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के संस्थापक सदस्य है । भारत एवं श्रीलंका ने प्रारम्भ से प्रत्येक सम्मेलन में साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद नस्लबाद एवं रंगभेद की खुली आलोचना की तथा सदैव निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया को जारी रखने तथा विकासशील देशों में आर्थिक विकास की ओर बल दिया । प्रराम्भ से लेकर अब तक गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों में दोनों देशों के मध्य कोई विशेष टकराव की स्थिति नहीं आयी है, लेकिन फिर भी कभी-कभी दोनों देशों के विचारों महाशक्तियों के प्रभाव में आकर मतभेद उत्पन्न हुये है । अनेक अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर अधिकांशतः भारत एवं श्रीलंका ने समान विचार व्यक्त किये है, क्योंकि दोनों देशों की विदेशनीति के आधार भूत तत्व लगभग समान है । लेकिन महाशक्तियों की नीति से प्रभावित होने के कारण तथा उनके प्रति पक्षपातपूर्ण नीति अपनाने के कारण सभी देशों के विचारों में भिन्नता भी देखने को मिली है । डिपागोगार्सिया में अमेरिका की उपस्थिति की श्रीलंका द्वारा आलोचना न करने की नीति तथा अफगानिस्तान में रूसी सेनाओं की उपस्थिति के सन्दर्भ में भारत द्वारा किसी स्पष्ट नीति का अनुसरण न करने पर दोनों देशों के विचारों में विभिन्नता सामने आयी तथा दोनों देशों ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों में अपने अलग-अलग मत प्रस्तुत किये ।

---

1. नवभारत टाइम्स 4 सितम्बर, 1989
2. नवभारत टाइम्स 5 सितम्बर, 1989

अतः स्पष्ट है कि मौलिक रूप में भारत एवं श्रीलंका के गुटनिरपेक्षता सम्बन्धी आदर्शों में पूर्ण समानता है तथा दोनों ने प्रारम्भ से अब तक इन आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया है । गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों में भारत एवं श्रीलंका के बीच जो मतभेद उभर कर आये, वे वास्तव में दोनों देशों को मौलिक भेद नहीं है वरन महाशक्तियों की नीतियों से प्रभावित होकर अपने आर्थिक, सामरिक एवं राजनैतिक हितों की पूर्ति के लिये दोनों देशों ने विरोधी विचारों का प्रस्तुतीकरण किया है ।

दक्षेस में भारत एवं श्रीलंका की भूमिका

भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, नैपाल, भूटान, श्रीलंका एवं मालद्वीप मिलकर दक्षिण एशिया की एक प्रथक भौगोलिक इकाई का निमार्ण करते है । इस क्षेत्र की उत्तरी सीमा पर हिमालय पर्वत तथा दक्षिणी सीमा पर हिन्दमहासागर अपनी शाखाओं बंगाल की खाड़ी एवं अरब सागर के साथ स्थित है । इसकी पूर्वी सीमा पर पर्वतमालाये एवं जंगल तथा उत्तरी पश्चिमी सीमा पर अफगानिस्तान दक्षिण एशिया क्षेत्र के संगम के समान फैला हुआ है ।[1] दक्षिण एशिया की भौगोलिक सामरिक स्थिति तथा इसकी सामाजिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकरूपता इस क्षेत्र को पूर्ण या अधिकांश रूप से सार्थक बनाने के लिये उत्तरदायी है ।[2] यह क्षेत्र प्राकृतिक संशाधन एवं जनशक्ति से भरपूर है, लेकिन इसके साथ ही यह गरीबी, जनसंख्या में बृद्धि एवं अविकसतता जैसी चिर स्थायी समस्याओं से घिरा है ।[3] दक्षिण एशिया के ये देश एक दूसरे से जलवायू, जाति धर्म, इतिहास एवं सामाजिक परम्पराओं के आधार पर एक दूसरे से प्रथक प्रतीत होते है, किन्तु एक क्षेत्र में स्थित होने के साथ ही इनमे अनेक समान लक्षण विद्यमान हैं ।

दक्षिण एशिया के समस्त देशों ने परस्पर आर्थिक, सांस्कृतिक, तकनीकि एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों में सहयोग की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुयें दक्षिण एशियायी क्षेत्रीय सहयोग संगठन अथवा दक्षेस का गठन किया । दक्षेस का उद्देश्य इसके समस्त देशों में आर्थिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास करना है । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आपसी सहयोग करना, एक दूसरे की प्रभुसत्ता एवं क्षेत्रीय अखण्डता का सम्मान करना तथा आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप न करना है । इसका लक्ष्य गरीबी मिटाना तथा आर्थिक एवै सामाजिक विकास की प्रक्रिया को तेज करना है ।

दक्षिण एशियायी क्षेत्रीय सहयोग संगठन का गठन दिसम्बर 1985 में हुआ था, लेकिन इसके पूर्व ही दक्षिण एशियायी देशों द्वारा इसके गठन के लिये प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे ।

---

1. रोजीनो एण्ड थामसन "वर्ल्ड पालिटिक्स" पृष्ट – 50
2. वही ।
3. विमल प्रसाद "रीजनल कॉपरेशन इन साउथ एशिया" पृष्ठ – 61

दक्षिण एशियाइ क्षेत्रीय सहयोग संगठन
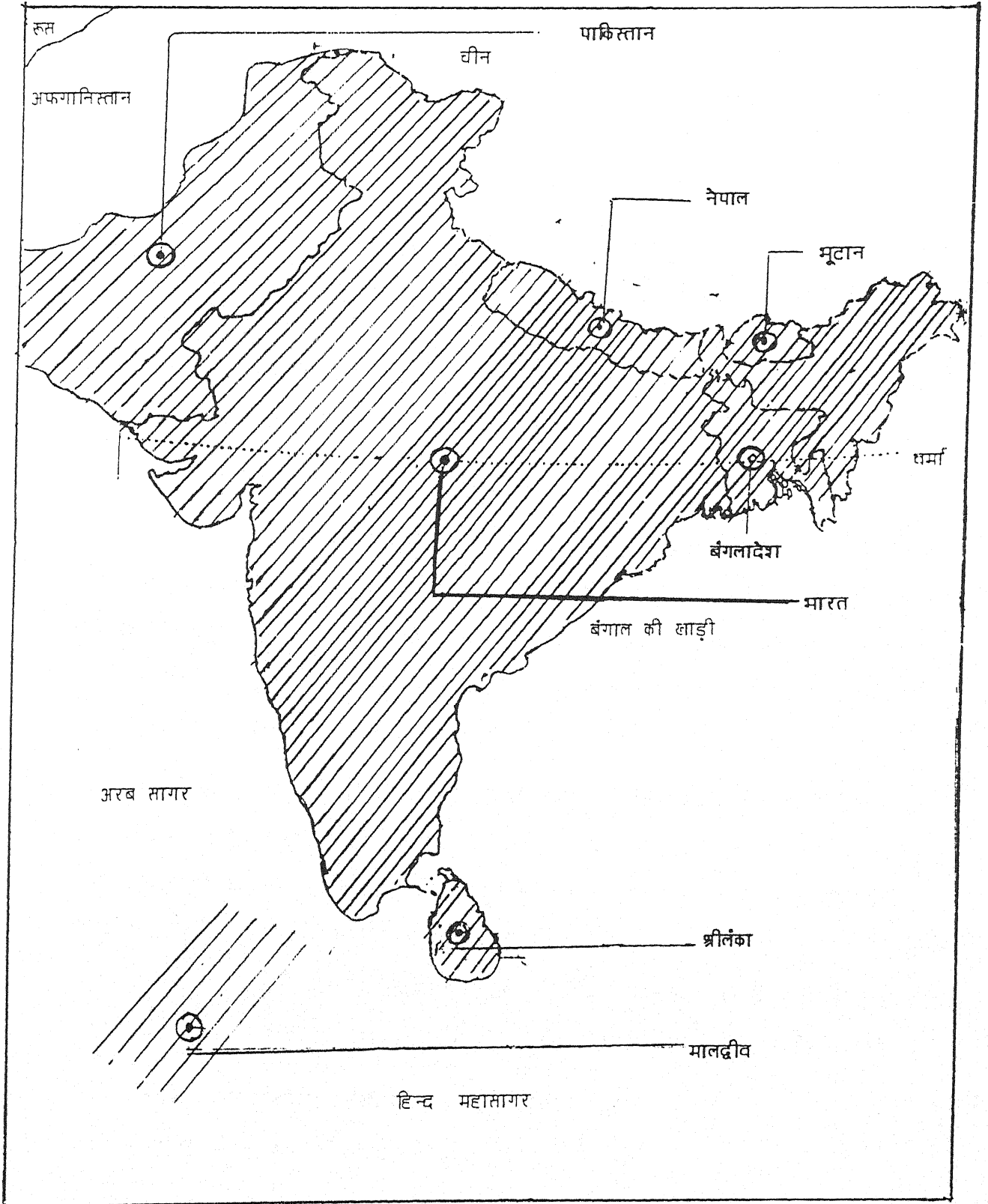
सर्वप्रथम बंगलादेश के राष्ट्रपति स्वर्गीय ज़ियाउर रहमान ने 1980 में दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन का विचार प्रस्तुत किया तथा उन्होंने दक्षिण एशिया के देशों से इस बात का आवाह्न किया कि दक्षिण एशिया के राष्ट्रों को आपस में मिलकर लैटिन अमरीकी, अफ्रीका तथा मध्यपूर्व के देशों द्वारा निर्मित संगठनो के समान एक क्षेत्रीय सहयोग संगठन का निर्माण करना चाहिये । नेपाल एवं भूटान ने बंगला देश के राष्ट्रपति के इस प्रस्ताव का स्वागत किया, लेकिन भारत, पाकिस्तान एवं श्रीलंका ने इसकी सफलता के विषय में संदिंध थे । बंगला देश के राष्ट्रपति ने 1980 से ही दक्षेस के गठन के लिये प्रयास प्रारम्भ कर दिया थे । 1981 में ही दक्षिण एशिया के देशों के विदेश सचिव स्तर की बैठकें होना प्रारम्भ हो गयी थी । अप्रैल 1981 से मार्च 1983 तक इन सातों देशों के विदेश सचिव स्तर की बैठके कोलम्बों काठमांइ, इस्लामाबाद एवं ढाका में सम्पन्न हुयी ।[1] इन बैठकों में क्षेत्रीय सहयोग के कार्यक्रमों पर विचार विमर्श किया गया ।

अगस्त 1983 में नयी दिल्ली में सर्वप्रथम दक्षिण एशियायी देशों के विदेश मंत्री स्तर की बैठक सम्पन्न हुयी । इस बैठक में भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने आर्थिक विकास के माध्यम से सहयोग देने पर बल दिया । 1984 में पुनः दक्षिण एशियायी देशों के विदेशमंत्री स्तर की बैठक मालद्वीप की राजधानी माले में सम्पन्न हुयी, इसमें दूर संचार एवं हवाई यातायत के सम्बन्ध में निर्णय लेने में प्रगति हुयी ।

जुलाई 1985 में भूटान की राजधान थिम्पू में दक्षिण एशियायी देशों के विदेशमंत्री स्तर की बैठक सम्पन्न हुयी । इस सम्मेलन के उदघाटन भाषण में भूटान देश ने कहा कि "दक्षिण एशिया के देशों को अपने पुराने पूर्वाग्रहों से हटकर इस क्षेत्र की जनता के वैयक्तिक एवं सामूहिक विकास के लिये साहस एवं विकास के साथ आगे बढ़ना चाहिये।"[2]

परस्पर राजनीतिक विवादों के कारण दक्षिण एशियायी क्षेत्रीय सहयोग संगठन विलम्बित रहा - अधिकांश दक्षिणी एशियायी राष्ट्र इसकी सफलता पर संदिग्ध थे ।

1. विमल प्रसाद "रीजनल कॉपरेशन इन साउथ एशिया" पृष्ठ - 22
2. हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली जुलाई 14, 1985

श्रीलंका इससे सहमत नहीं था । श्रीलंका ने तमिल समस्या का प्रकरण उठाकर इस संगठन को विलम्बित करना चाहा । थिम्पू वार्ता के द्वितीय सम्मेलन से भारत सरकार ने परिस्थिति का लाभ उठाकर श्रीलंका के साथ तमिल समस्या के समाधान हेतु विचार विमर्श किया, लेकिन थिम्पू वार्ता के इस सम्मेलन में श्रीलंका के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री जयवर्धने ने तमिलों की पृथक राज्य सहित प्रथम तीन माँगों को अस्वीकृत कर दिया । उन्होंने कहा कि श्रीलंका सरकार ने पहले ही सभी नागरिकताविहीन लोगों को नागरिकता प्रदान करने के लिये निर्णय ले लिया है । भारत सरकार के अनेक प्रयत्नों के बाद भी थिम्पू वार्ता का कोई निष्कर्ष नहीं निकला ।

तमिल समस्या के प्रकरण को लेकर ही श्रीलंका दक्षेस के गठन से सहमत नहीं था । दक्षिण एशिया के अन्य छ: राष्ट्रों ने श्रीलंका को समझाने का प्रयास किया तथा श्रीलंका को अनुपस्थिति में मिनिस्टीरियल काउंसिल गठित करने का प्रस्ताव पारित कर दिया । अंतत: श्रीलंका ने भी दक्षेस संगठन के गठन के लिये अपनी सहमति प्रकट की, लेकिन श्रीलंका दक्षेस के प्रारूप एवं कार्यान्विन के विषय में बिल्कुल मौन रहा उसने अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की । 1985 में सम्पन्न हुयी थिम्पू वार्ता में दक्षिण एशियायी देशों के मध्य संगठन निर्मित किये जान पर बल दिया । अत: श्रीलंका दक्षिण एशियायी संगठन के गठन के समय से ही इससे पूर्ण रूप से सहमत नहीं रहा था ।

दक्षिण एशियायी देशों के राजनैतिक, सामाजिक, सामरिक, आर्थिक महत्त्व को देखते हुये तथा इन देशों के मध्य सहयोग एवं विश्वास की आवश्यकता के कारण कुछ विवादों के होते हुये भी दक्षिण एशियायी क्षेत्रीय सहयोग संगठन का गठन 8 दिसम्बर 1985 को हुआ । इसका सचिवालय काठमांडू में निश्चित किया गया तथा यह निर्णय लिया गया कि प्रत्येक वर्ष के अन्त में दक्षेस संगठन का अधिवेशन बारी-बारी से प्रत्येक देश में होगा तथा उस देश का शासनाध्यक्ष उस संगठन का अध्यक्ष होगा ।

दक्षिण एशिया के समस्त देशों के शासनाध्यक्षों की प्रथम बैठक 6 से 8 दिसम्बर 1985 को ढाका में सम्पन्न हुयी । यह सम्मेलन वास्तव में एक ऐतिहासिक कदम था जिसके

माध्यम से दक्षिण एशियायी देशों के शासनाध्यक्षों को आपस में विचार विमर्श करने का अवसर प्रदान किया था । इस सम्मेलन में परस्पर आर्थिक सामाजिक सांस्कृति क्षेत्रों में सहयोग पर बल दिया गया तथा प्रभूसत्ता क्षेत्रीय अखण्डता एवं आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप न करने पर विश्वास व्यक्त किया गया । इस सम्मेलन में दक्षेस का लक्ष्य गरीबी मिटाना तथा आर्थिक सामाजिक विकास की प्रक्रिया को तेज करना निर्धारित किया गया । भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने कहा था कि इससे भारतीय उपमहाद्वीप के देशों के बीच क्षेत्रीय सहयोग से पारस्परिकसम्बन्धों को सुधारने में सफलता मिलेगी ।[1]

श्रीलंका के राष्ट्रपति श्री जयवर्धने ने इस संगठन पर अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि "भारत इस संगठन का सर्वाधिक विशाल देश है इसलियें भारत को अपने कार्यों एवं विचारों द्वार सभी सदस्यों को विश्वास में लेना चाहिये।"[2] दक्षिण एशियायी देशों में भारत सर्वाधिक बड़ा राष्ट्र है, इसीलिये सभी देशों को भारत से विशेष अकाक्षायें हैं । भारत ने दक्षिण एशियायी संगठन के माध्यम से इन देशों को आर्थिक, वैज्ञानिक तकनीकि सहायता प्रदान करके इस संगठन में विशेष भूमिका का निर्वाह किया है । प्रमोद कुमार जी मिश्र का विचार है कि ढाका सम्मेलन में भारत का सहयोग विशेष रूप से भारत के युवा प्रधानमंत्री का बड़ा ही संचरणशील एवं रचनात्मक रहा है । जैसा कि सार्क विश्व की 20% मानव जाति का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु यह आर्थिक विपन्नता का क्षेत्र है, परिस्थितियों के मुताविक इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजीव गाँधी इसे जन आन्दोलन का रूप देने के इच्छुक हैं । श्री गाँधी ने छोटे राष्ट्रों का भय दूर करने के लिये कई बार कहा कि भारत सार्वभौमिक समानता के आधार पर सभी देशों के साथ सम्बन्धों का पसधर है ।[3]

दक्षिण एशियायी देशों का द्वितीय सम्मेलन दिसम्बर 1986 में बैंगलौर में सम्पन्न हुआ । इस सम्मेलन में समस्त दक्षिण एशियायी देशों के शासनाध्यक्षों ने भाग लिया । बंगलौर

1. स्टेटस मैन 8 दिसम्बर 1985
2. द टाइम्स ऑफ इण्डिया 8 दिसम्बर, 1985
3. प्रमोद कुमार "ढाका समिति एण्ड सार्क" पृष्ठ – 29

शिखर सम्मेलन में दक्षेस को एक स्थायी संगठन का रूप दे दिया गया । अगले वर्ष के लिये भारत को इसका अध्यक्ष चुना गया। इस शिखर सम्मेलन मे औरतों और बच्चों के लिये नये कार्यक्रम बनाने के लिये योजना बनाई गयी तथा नशीली वस्तुओं की तस्करी एवं बिक्री रोकने के लिये सफल समर नीति बनाने का आश्वासन दिया गया ।[1] इस सम्मेलन में श्री राजीव गाँधी ने कहा कि "इस क्षेत्र में औपनिवेशिक शासन एवं दवाब के जख्म अभी भी अपना स्थान बनायें हैं । उनसे मुक्त होकर स्वावलम्बी होकर क्षेत्रीय सहयोग आवश्यक है ।" उन्होंने कहा "कि हम दक्षेस को सहयोग का एक राजनीतिक मंच बनाना चाहते है, जिसपर द्विपक्षीय विषयों का बोझ न डाला जाये ।"[2] भारत के प्रधानमंत्री ने इस सम्मेलन के होने से पूर्व तमिल उग्रवादियों पर दवाब डाला कि वे श्रीलंका सरकार के प्रस्ताव स्वीकार कर ले । बंगलौर सम्मेलन से पूर्व भारत सरकार के आदेश से ईलम के प्रमुख नेता नजरबन्द कर लिये गये तथा उनके हथियार जब्त कर लिये गये । भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने लिट्टे के सदस्यों को अबगत कराया कि श्रीलंका सरकार इससे अधिक सुविधा प्रदान करने को तैयार नहीं है । इसी दौरान राजीव गाँधी एवं जयवर्धने ने तमिल समस्या के समाधान के लिये कुछ निष्कर्ष निकाले थे । इस समय भारत एवं श्रीलंका दोनों ही समझौतावादिता की नीति अपनाकर समस्या समाधान के पक्ष में थे ।

इस सम्मेलन में राजीव गाँधी ने आतंकवादी गतिविधियों का विरोध करते हुये कहा "हमें किसी भी प्रकार आतंकवाद को सहयोग एवं आश्रय नहीं देना चाहिये" उन्होने कहा "हम इतिहास एवं भूगोल से जुड़े है इसलिये सन्देह को छोड़कर सहयोग करना चाहिये ।"[3] श्रीलंका के राष्ट्रपति श्री जयवर्धने ने हिंसात्मक गतिविधियों का विरोध करते हुये कहा कि हिंसा से सदैव नफरत बढ़ती है तथा प्रेम से ही हिंसा एवं घृणा को दूर किया जा सकता है ।

अत: बैंगलौर सम्मेलन में भारत एवं श्रीलंका दोनों ने ही परस्पर आर्थिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक सहयोग पर बल देते हुये समान रूप सक आतंकवादी गतिविधियों का

---

1. दिनमान नवम्बर 1986, पृष्ठ – 24 – 25
2. नवभारत टाइम्स 17 नवम्बर 1986
3. वही ।

विरोध किया ।

दक्षेस का तीसरा शिखर सम्मेलन काठमाडू में आरम्भ होने से पूर्व दक्षेस के सदस्य देशों ने आगामी नवम्बर 1987 में अपने यहाँ टेलीविजन एवं रेडियो पर नियमित रूप से मास में दो बार समान कार्यक्रम प्रसारित करने का निश्चय किया । भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के संयुक्त सचिव आर0 सी0 सिन्हा ने संवाददाताओं को जानकारी देते हुये कहा कि समिति के सदस्य देशों द्वारा प्रत्येक महीने की पहली तारीख को टेलीविजन कार्यक्रम एवं 15 तारीख को रेडियो कार्यक्रम प्रसारित करने का फैसला किया गया है ।[1]

दक्षिण एशियायी देशों का तृतीय सम्मेलन नैपाल की राजधानी काठमाडू में नवम्बर 1987 में सम्पन्न हुआ, इस सम्मेलन में सभी देशों के शासनाध्यक्षों ने भाग लिया । इस सम्मेलन में भारत श्रीलंका सहित सभी दशों के शासनाध्यक्षों ने आर्थिक एवं सांस्कृतिक सहयोग पर बल दिया । इस शिखर सम्मेलन के अवसर पर एक क्षेत्रीय खाद्य सुरक्षा भण्डार की स्थापना पर सहमति हुयी ।

इस समय तक दक्षिण एशियायी क्षेत्र में आंतकवादी गतिविधियाँ काफी बढ़ गयी थी । भारत एवं श्रीलंका में विशेष रूप से आतंकवाद की जड़े स्थापित हो चुकी थी । भारतीय शान्ति सेना श्रीलंका पहुँच चुकी थी तथा तमिल समस्या के समाधान में अपना सहयोग प्रदान कर रही थी । भारत एवं श्रीलंका की आतंकवादी समस्या के क्षेत्रीय आयाम अलग-अलग हैं । श्रीलंका को आंतकवाद से निपटने के लिये भारत से भरपूर सहायता मिल रही थी, जबकि पाकिस्तान भारतीय आतंकवाद को प्रोत्साहन दे रहा था । अतः इस सम्मेलन में भारत ने आतंकवाद को इस क्षेत्र से दूर करने का आवाहन किया । दक्षिण एशिया के सातों राज्यों ने क्षेत्रीय आतंकवाद विरोधी समझौते पर हस्ताक्षर किये ।[2]

---

1. नवभारत टाइम्स 25 सितम्बर, 1987

2. नवभारत टाइम्स 4 नवम्बर, 1987

दक्षिण एशियायी देशों को चतुर्थ शिखर सम्मेलन पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद में 1989 में सम्पन्न हुआ । पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार चतुर्थ शिखर सम्मेलन श्रीलंका में आयोजित होना था, लेकिन श्रीलंका द्वारा इस आयोजन को कराने की असमर्थथा प्रकट करने पर यह सम्मेलन इस्लामाबाद में सम्पन्न हुआ । इस्लामाबाद सम्मेलन में सम्मेलन की अध्यक्षा श्रीमती बेनजीर भुट्टो ने आर्थिक एवं सांस्कृतिक एकीकरण पर बल देते हुये मानव समांधन के विकास पर महत्त्व दिया । श्रीमती बेनजीर भुट्टों ने कहा कि "हमारी प्राकृतिक सम्पदा हमारे मानव संसाधन है । जिसका अभी तक हमारे आर्थिक विकास के लिये पूरा इस्तेमाल नहीं हुआ है हमारा लक्ष्य इस संसाधन को पूर्ण रूप से विकसित करने का है, ताकि हम इक्कीसवी सदी में विकसित देशों के बराबरी में खड़े होकर प्रवेश कर सके।"[1] इसके साथ ही इस्लामाबाद सम्मेलन में श्रीमती बेनजीर भुट्टो ने दक्षेस देशों के बीच स्वतन्त्र यात्राओं का प्रस्ताव रखा था, जिसके परिणामस्वरूप यह निर्णय लिया गया कि सातों देशों के सांसद एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश ही बिना बीसा के दक्षेस देशों में यात्राये कर सकते हैं । इस्लामाबाद सम्मेलन में श्री राजीव गाँधी ने कहा कि "शक एवं अदेशों की दीवारे जितनी तेजी से और जगह दूर रही है उतनी तेजी से वे हिमालय के दक्षिण में नहीं दूर पा रही हैं और सहयोग के जाल में जिस तेजी से दुनिया के अन्य देश गुथते एवं बन्धते जा रहे है, उतनी तेजी से दक्षिण एशियायी क्षेत्रीय सहयोग संगठन नहीं गुथ पा रहा है और यह हालात तब हैं जब मालद्वीव की चुनी हुयी सरकार की रक्षा भारतीय सेना की सहायता से हुयी और श्रीलंका को दो टुकड़े में बट जाने में भारतीय शान्ति सेना ही रोके हुये है । यदि शक एवं अदेशों की दीवार टूट सके तो दुनियाँ की 1/5 आबादी वाला यह एक उपमहाद्वीप सचमुच पृथ्वी की एक महत्त्वपूर्ण आवाज बन सकता है ।[2]

इस्लामाबाद सम्मेलन में सभी विषयों पर भारत एवं श्रीलंका ने समान रूप से निर्णय लिया तथा दोनों के मध्य कोई गतिरोध उत्पन्न नहीं हुआ, लेकिन सम्मेलन के कुछ समय पश्चात् ही श्रीलंका में सत्ता परिवर्तन हुआ तथा श्री प्रेमदासा ने वहाँ के राष्ट्रपति का पद गृहण किया ।

---

1. पब्लिक एशिया जून 1989 पृष्ठ - 62
2. नवभारत टाइम्स 1 जनवरी, 1989

प्रेमदासा प्रारम्भ से ही भारत – श्रीलंका समझौते के विरोधी थे तथा भारतीय नीति सेना की वापसी के समर्थक थे । पहली जून 1989 को प्रेमदासा ने अचानक यह घोषणा कर दी कि "भारत 29 जुलाई 1989 तक श्रीलंका से अपनी शान्ति सेना हटा ले ।"[1] नवम्बर 1989 में कोलम्बो में दक्षेस शिखर सम्मेलन के आयोजन के सन्दर्भ में प्रेमदासा ने कहा था "कि हम इसे कैसे आयोजित कर सकते हैं, जब एक विदेशी सेना हमारी धरती पर रहेगी ।"[2]

शान्ति सेना की वापसी के आधार पर भारत श्रीलंका सम्बन्धों में काफी तनाव उत्पन्न हो गया था, क्योंकि श्रीलंका सरकार एक निश्चित समय में शान्ति सेना की पूर्ण बापसी चाहती थी जबकि भारत सरकार समझौते की सभी शर्तें पूर्ण होने पर ही शान्ति सेना की वापसी के पक्ष में थी । दोनों ही देश अपने-अपने पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत कर रहे थे तथा एक दूसरे पर आरोप प्रत्यारोप लगा रहे थे ।

शान्ति सेना की वापसी के आधार पर श्रीलंका ने जुलाई 1989 में दक्षेस देशों के विदेशमंत्री स्तर की करांची में आयोजित होने वाली बैठक का बहिष्कार किया । श्रीलंका के विदेशमन्त्री ने पाकिस्तान के विदेशमन्त्री को एक पत्र लिख कर सूचित किया कि "वे दक्षेस के विदेश सचिव स्तर की बैठक में सम्मलित होने के लिये सक्षम नहीं है, क्योंकि भारत एवं श्रीलंका के मध्य शान्ति सेना की उपस्थिति के सन्दर्भ में काफी मतभेद हो गया है ।"[3] श्रीलंका सरकार ने दक्षेस सम्मेलन में अपना प्रतिनिधि न भेजने का निर्णय करके केवल दक्षेस घोषणा-पत्र का उल्लंघन ही नहीं किया वरन भारत पर दवाब डालकर उसकी अन्तर्राष्ट्रीय छवि धूमिल करने का प्रयास किया है ।

आज से पाँच वर्ष पूर्व जिस भारत की सक्रिय भूमिका के परिणाम स्वरूप दक्षेस संगठन की स्थापना हुयी थी, उसी पर इस संगठन के प्रभावहीन बनाने एवं विघटन का आरोप भी लगा है । दक्षेस के कार्यों में बाधा डालने के लिये श्रीलंका के वर्तमान राष्ट्रपति प्रेमदास ही दोषी है । किस व्यवस्था एवं चार्टर के माध्यम से उन्होंने दक्षेस को द्विपक्षीय विषय का आधार बनाया ।

---

1. पब्लिक एशिया जून 1989 पृष्ठ – 61
2. वही ।
3. द हिन्दू 28 जून, 1989

दक्षेस न द्विपक्षीय विवादों को सुलझाने का मंच है और न ही द्विपक्षीय विवादों से इस संगठन की कार्य प्रणाली प्रभावित होनी चाहिये । दक्षेस क्षेत्रीय सहयोग के लिये है न कि आपसी सम्बन्धों का भेद-भाव मिटाने के लिये । आज शान्ति सेना की वापसी के प्रश्न पर बैठक स्थगित हुयी है तो कल नेपाल व्यापार एवं परागमन संधि को लेकर बैठक स्थगित करवा सकता है । इस प्रकार की गतिविधियों से दक्षिण एशिया में द्विपक्षीय विषय अधिक प्रभावित होगें न कि क्षेत्रीय सहयोग की भावना ।

वर्तमान समय में भारत - श्रीलंका सम्बन्धों के बीच शान्ति सेना की बापसी का विषय पूर्ण रूप से सुलझ चुका है । 24 मार्च 1990 को भारतीय शान्ति सेना अपने देश वापस आ चुकी है, लेकिन अभी भी श्रीलंका दक्षेस के पाँचवे शिखर सम्मेलन के आयोजन के सन्दर्भ में कोई स्पष्ट संकेत नहीं दिया गया है ।

दक्षेस का पाँचवा शिखर सम्मेलन मालद्वीप की राजधानी माले नवम्बर 1990 में होना निश्चय हुआ । श्रीलंका ने सम्मेलन का आयोजन न करे इस संगठनात्मक सम्मेलन की गति को अवरूद्ध करने का प्रयास किया है । श्रीलंका द्वारा संगठन की प्रगति में बांधा डालने के कार्य की क्षति पूर्ति का सामना दक्षेस राष्ट्र कैसे करते हैं, यह तो भविष्य में भी ज्ञात होगा, लेकिन श्रीलंका की इस प्रकार की गतिविधियों से दक्षिण एशिया में द्विपक्षीय विषय अधिक प्रभाति होगें न कि क्षेत्रीय सहयोग की भावना ।

दक्षेस के गठन में भारत ने जहाँ रचनात्मक भूमिका का निर्वाह किया है वही भारत के कारण ही दक्षेस के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह लग गया है । दक्षेस के गठन के चार वर्षो तक भारत एवं श्रीलंका ने आर्थिक एवं सांस्कृतिक एकीकरण पर बल देकर इस संगठन को आगे बढ़ाया है तथा इस संगठन को द्विपक्षीय राजनीति से मुक्त रखा, लेकिन श्रीलंका ने शान्ति सेना की उपस्थिति का विषय उठाकर दक्षेस की जड़े हिला कर रख दी है, भारत की ढुलमुल नीति भी इसके लियें कम दोषपूर्ण नहीं है । श्रीलंका ने 1985 में थिम्पू वार्ता में तथा 1987 में विदेशमंत्रियों के सम्मेलन में भारतीय कार्यवाही पर आपत्ति उठाने का प्रयास किया था, लेकिन

दोनों बार विवेक से कार्य किया गया तथा विवाद टल गया, लेकिन इस बार भारतीय शांति सेना की वापसी का ऐसा विषय उसने उठाया जिसकी तर्कसंगिता को टाला नहीं जा सकता था । भारत को श्रीलंका में तमिल हितों के रक्षक स्थान पर भक्षक की संज्ञा मिली है । श्रीलंका ने भारत की अन्तर्राष्ट्रीय छवि धूमिल करने का प्रयास किया है ।

दक्षेस में भारत एवं श्रीलंका की भूमिका के संदर्भ में यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि श्रीलंका ने तो प्रारम्भ से ही विवाद उठाने प्रारम्भ कर दिये थे तथा इसके गठन के समय भी अपनी केवल मौन स्वीकृति दी थी, जबकि भारत ने प्रारम्भ से ही दक्षेस में रचनात्मक भूमिका का निर्वाह किया है तथा आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकि के माध्यम से इस संगठन को सुदृढ़ बनाने में सहयोग दिया है, लेकिन दक्षेस के भविष्य के ऊपर प्रश्नचिन्ह लगाने के लिये श्रीलंका के साथ-साथ भारत की अस्पष्ट नीतियाँ भी दोषपूर्ण रहीं हैं ।

****

सप्तम् अध्याय

पारस्परिक सौहार्द की आवश्यकता

प्रत्येक राष्ट्र अन्य दूसरे राष्ट्र से अपनी भू-सामरिक स्थिति, आर्थिक एवं राजनीतिक हित तथा सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकरूपता के आधार पर सम्बन्धों का निर्धारण करता है । भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों की पृष्ठभूमि भी ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक एवं सामरिक तत्वों पर आधारित है । श्रीलंका द्वीप का इतिहास भारतीय राजकुमार विजय एवं उनके अनुयाइयों द्वारा इस द्वीप में प्रवेश के साथ प्रारम्भ होता है । भारत एवं श्रीलंका दोनों ही ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अंग रहे हैं तथा दोनों ने ही लगभग समान समय पर स्वतन्त्रता प्राप्त की है, इसलिये दोनों ने ही स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपनी विदेशनीति का मुख्य आधार साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध निर्धारित किया है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही पाक-जल संयोजक के दोनों ओर ऐतिहासिक, जातीय, सास्कृतिक एवं राजनैतिक जागरूकता का संचार हुआ । राष्ट्रमण्डल, संयुक्तराष्ट्रसंघ, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की समान सदस्यता ने दोनों देशों को सहयोग एवं सौहार्द के मार्ग की दिशा में अग्रसर होने के लिये प्रेरित किया है, लेकिन फिर भी दोनों देशों के सम्बन्ध कुछ काल विशेष को छोड़कर कभी भी मैत्रीय एवं सौहार्द पूर्ण नहीं रहे हैं । वर्तमान समय में भारत-श्रीलंका सम्बन्ध विविध समस्याओं से घिरे हुये हैं, जबकि दोनों देशों के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय हित परस्पर सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों में ही निहित हैं ।

भारत एवं श्रीलंका की भौगोलिक समीपता दोनों देशों की अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये परस्पर मैत्रीपूर्ण रखने के लिये बाध्य करती है । श्रीलंका भारत की दक्षिणी भौगोलिक सीमाओं के अति समीप अपने दो महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह त्रिकोमाली एवं कोलम्बों सहित स्थित है, इसलिये भारत की प्रतिरक्षा के लिये इसका विशेष महत्त्व है । श्रीलंका की हिन्दमहासागर में केन्द्रीय स्थिति के कारण विश्व की समस्त महाशक्तियाँ इस द्वीप को अपने सामरिक हित साधक के रूप में प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहती हैं । श्री रामचन्द्रराव में श्रीलंका के सामरिक महत्त्व की अबगत कराते हुये लिखा है "सीलोन हिन्दमहासागर का केन्द्रबिन्दु है । सीलोन की भौगोलिक स्थिति वायुमार्ग एवं समुद्री

1949 में डा0 पट्टाभि सीताभैया ने भारत एवं श्रीलंका की भौगोलिक समीपता के कारण दोनों देशों के सामरिक सम्बन्धों की आवश्यकता पर बल देते हुये कहा था "भारत एवं सीलोन को समान प्रकार की सामरिक शक्ति एवं रक्षात्मक नीति का अनुसरण करना चाहिये । सीलोन उन राष्ट्रों से अच्छे सम्बन्ध नहीं रख सकता जिनसे भारत की मित्रता न हो । यदि संसार में दो विचारों बाले समूह है तथा भारत एवं सीलोन अलग-अलग विचारों वालें समूह के साथ रहते है तो यह दिन दोनों देशों के किये बहुत बुरा होगा ।"[1] अत: 1949 में ही श्री के0 वी0 विद्या ने श्रीलंका एवं वर्मा की भारत पर सामरिक निर्भरता को स्पष्ट करते हुये लिखा था कि "वर्मा एवं सीलोन को भारत के साथ अपनी सुरक्षा की निर्धारिण करना चाहिये । वे ऐसा करे अथवा न करें, ये उनकी अपनी सुरक्षा के लिये अति महत्वपूर्णा है ।"[2] वास्तव में श्रीलंका एवं भारत के सामरिक हित समान हैं, इसलिये दोनों देशों के मध्य भौगोलिक समीपता एवं समान सामरिक हितों के कारण परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के स्थायित्व की आवश्यकता है ।

श्रीलंका की हिन्दमहासागरर में महत्वपूर्ण केन्द्रीय स्थिति के कारण विश्व के अधिकांश शक्तिशाली राष्ट्र इसको अनेक प्रकार की आर्थिक एवं सैनिक सुविधायें प्रदान करके श्रीलंका जैसे सामरिक उपनिवेश को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप श्रीलंका की नीतियाँ प्रभावित होती रही है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही श्रीलंका ने अमेरिका एवं ब्रिटेन को अपने बन्दरगाह उपयोग करने की सुविधा प्रदान कर दी थी । 1981 में पुन: श्रीलंका ने अमेरिका को त्रिकोमाली बन्दरगाह में तेल आपूर्ति सुविधा प्रदान करने की सहमति प्रकट की थी । भारत ने अपनी सुरक्षा की दृष्टि से श्रीलंका की इस प्रकार की नीतियों का सदैव विरोध किया, जिसके परिणामस्वरूप दोनों देशों के मध्य समय-समय पर मतभेद एवं तनाव उत्पन्न हुआ है । श्रीलंका में महाशक्तियों का पड़ाव न केवल भारत की प्रतिरक्षा के लिये ही अहितकर है, वरन श्रीलंका के भी राष्ट्रीय हित के अनुकूल नहीं है, क्योंकि महाशक्तियों की श्रीलंका में उपस्थिति से श्रीलंका के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो जायेगा ।

---

1. 23 अप्रैल 1949 के सीलोन डेली न्यूज के साक्षात्कार में वर्णित ।
2. के0 वी0 विद्या "द नवल डिफेन्स ऑफ इण्डिया" पृष्ठ - 30

यातायात की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है ।"[1] भारत की अधिकांश समुद्री सीमा खुली एवं असुरक्षित है, जिस पर वायु मार्ग द्वारा बमबारी की जा सकती है । भारत की लम्बी असुरक्षित समुद्री सीमा के कारण ही ब्रितानी सशक्त नौ सेना के बल पर अंग्रेजों ने लगभग दो सौ वर्ष तक भारत पर शासन किया था । भारत के समस्त जलमार्ग हिन्दमहासागर से होकर गुजरते है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दमहासागर को ही भारतीय सुरक्षा का आधारभूत तथ्य माना गया । श्रीलंका की हिन्दमहासागर में केन्द्रीय स्थिति के कारण यह द्वीप भारतीय सुरक्षा के लिये विशेष महत्व रखता है श्रीलंका का त्रिकोमाली बन्दरगाह दक्षिण एशिया का सर्वश्रेष्ठ बन्दरगाह है । त्रिकोमाली से ही 1619 में पुर्तगालियों ने जाफना पर अधिपत्य स्थापित किया था । 1658 में डच भी यही से आये थे तथा पश्चिमी साम्राज्यों में अन्तिम ब्रिटिशों ने 1796 में यहीं से प्रवेश कर डचों से इस प्रदेश को छीना था ।[2] स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद त्रिकोमाली सभी की दृष्टि का केन्द्रबिन्दु बन गया । भारत के पूर्वी क्षेत्र में कोई प्राकृतिक बन्दरगाह न होने के कारण तथा त्रिकोमाली से भारत की समीपता के कारण इसका भारत की प्रतिरक्षा के लिये उल्लेखनीय महत्व है ।

श्रीलंका की भौगोलिक स्थिति जिस प्रकार भारत की सुरक्षा के लिये महत्वपूर्ण स्थान रखती है, उसी प्रकार भारत की अवस्थिति श्रीलंका के लिये अत्यन्त उपयोगी है । श्रीलंका का सम्पूर्ण अस्तित्व ही भारत पर निर्भर करता है । भारत हिन्दमहासागर के उत्तरी सिरे में इस प्रकार स्थित है कि यह पूर्वी गोलार्ध के मध्य में पड़ता है । योरोप एवं अमरीका के पश्चिमी भागों से भारत लगभग समान दूरी पर है । अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री मार्ग इसके तट से होकर निकलते हैं । भारत पश्चिमी कला कौशल प्रधान देशों को पूर्वी खेतिहर देशों से मिलाने के लिये एक श्रृंखला का कार्य करता है ।[3] अतः भारत की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, इसलिये भारत एवं श्रीलंका दोनों को ही अपनी भौगोलिक समीपता पर दृष्टिपात करते हुये समान रक्षात्मक नीति का अनुसरण करना चाहिये ।

---

1. रामचन्द्र राव "इन्डो सीलोन रिलेसन्स" पृष्ठ – 8
2. दिनमान टाइम्स 15 – 24 मार्च 1990
3. मैमोरिया चतुर्भुज "आधुनिक भारत का भूगोल"

अतः भारत एवं श्रीलंका के भू-सामरिक हित समान है, इसलिये दोनों ही देशों को अपने क्षेत्र में किसी भी विदेशी शक्ति को आमंत्रित नहीं करना चाहिये । श्रीलंका अथवा भारत में किसी विदेशी शक्ति की उपस्थिति से केवल दोनों की सुरक्षा ही नहीं वरन सम्पूर्ण दक्षिण एशिया की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है । भारत सरकार का सदैव यह प्रयास होना चाहिये कि उसका यह पड़ोसी देश श्रीलंका महाशक्तियों की महत्वकांक्षा का शिकार न होने पाये, क्योंकि इससे भारत की सुरक्षा के साथ-साथ श्रीलंका के अस्तित्व को भी खतरा उत्पन्न हो सकता है । भारत को सदैव इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि श्रीलंका में भारत की ओर से किसी प्रकार की असुरक्षा की भावना न रहे, जिससे श्रीलंका किसी अन्य विदेशी शक्ति से सैनिक सुविधाये प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहे । भारत को सदैव एक बड़े पड़ोसी देश की भूमिका का निर्वाह करते हुये श्रीलंका को विश्वास लेना चाहिये, जिससे भारत के प्रति श्रीलंका में किसी प्रकार की असुरक्षा की भावना न रहे । श्रीलंका को भी भारतीय नीतियों पर विश्वास करके अनावश्यक रूप से भारत की ओर से आशंकित नहीं रहना चाहिये । दोनों देशों को अपने समान सामरिक हितों की पूर्ति के लिये समान प्रकार के रक्षात्मक स्त्रोतएवं सामरिक नीति का अनुसरण करके किसी विदेशी शक्ति को अपने क्षेत्र में आमंत्रित नहीं करना चाहिये ।

भारत एवं श्रीलंका आर्थिक रूप से भी युगों-युगों से सम्बन्धित रहे हैं । अति प्राचीनकाल से ही श्रीलंका भारत पर आर्थिक रूप से निर्भर रहा है । ब्रिटिश शासनकाल के पूर्व भारत - श्रीलंका को सर्वाधिक खाद्य पदार्थ प्रदान करने वाला देश था । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद श्रीलंका के आधे से अधिक व्यापार पर भारत का नियन्त्रण था ।[1] स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद श्रीलंका ने कुछ वस्तुओं का अपने देश में उत्पादन करके तथा कुछ वस्तुओं का अन्य देशों से आयात करके भारत की निर्भरता से मुक्त होने का प्रयास किया । वर्तमान समय में यद्यपि श्रीलंका पूर्व की भाँति भारत पर आर्थिक रूप से निर्भर नहीं है, लेकिन फिर भी भारत पर श्रीलंका की निर्भरता नकारने योग्य नहीं है ।

---

1. महेश्वरी "इण्डिया श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 161

ब्रिटिश शासन काल से ही श्रीलंका की आर्थिक व्यवस्था में भारतीय मानवीय तत्वों का विशेष योगदान रहा है । भारतीय व्यापारी एवं बागानों के श्रमिकों ने श्रीलंका की आन्तरिक अर्थव्यवस्था में मुख्य भूमिका का निर्वाह किया है ।[1] अंग्रेजों के आक्रमण के समय श्रीलंका की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी । अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन एवं वाणिज्यक क्षेत्र में वृद्धि करना था, लेकिन श्रीलंका की तत्कालीन अर्थव्यवस्था में यह सम्भव नहीं था । अंग्रेजों ने श्रीलंका की अर्थव्यवस्था को पुर्नजीवित करने के लिये चाय बगानों में कार्य करने के लिये श्रीलंका के बाहर से मजदूर लाना प्रारम्भ कर दिये । भारत की श्रीलंका से भौगोलिक समीपता के कारण सर्वाधिक श्रमिक भारत से श्रीलंका गये तथा उन्होंने श्रीलंका की अर्थव्यवस्था को पुर्नजीवित करने में विशेष योगदान दिया है । श्रीलंका की अर्थव्यवस्था भारतीय मानवीय तत्वों द्वारा प्रभावित होने के कारण काफी सीमा तक भारतीय अर्थव्यवस्था के समान है ।

वर्तमान समय में भारत एवं श्रीलंका अपने आर्थिक सम्बन्धों में वृद्धि करने के लिये विभिन्न वस्तुओं का परस्पर आयात एवं निर्यात करते हैं । भारत विभिन्न प्रकार की औद्योगिक वस्तुयें निर्मित करने तथा श्रीलंका को अधिक से अधिक मात्रा वस्तुओं का निर्यात कराने में सक्षम है । भारत श्रीलंका को सूती कपड़ा, सीमेन्ट, कपास, मछलियाँ बीड़ी की पत्तियाँ दवायें मशीनें एवं औजार आदि निर्यात करता है, इसके साथ ही भारत के बने हुये रबड़ के टायर, पेपर, प्लाईबुड, स्टील के सामान एवं इंजन आदि भी श्रीलंका आयात करता है, लेकिन श्रीलंका भारत को अपेक्षाकृत बहुत सीमित मात्रा में वस्तुओं का निर्यात कर पाता है । परिणामस्वरूप व्यापार संतुलन सदैब भारत के ही पक्ष में रहा है । श्रीलंका की अर्थव्यवस्था भी भारतीय मानवीय तत्वों विज्ञान एवं तकनीकि से प्रभावित होने के कारण भारतीय हितों के ही अधिक अनुरूप है, जिसके कारण भारत-श्रीलंका आर्थिक सम्बन्धों में व्यापार सन्तुलन की समस्या काफी समय से अपना अस्तित्व बनाये हुये है ।

भारत एवं श्रीलंका दोनों ही चाय के वृहद उत्पादक देश हैं, इसी कारण चाय के व्यापार के सम्बन्ध में भी दोनों देशों के बीच प्रतिस्पर्धा रहती है । दोनों देश अपने-अपने

---

1. महेश्वरी "इण्डिया श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ - 161

व्यापार में वृद्धि करने के लिये अपेक्षाकृत कम मूल्यों में चाय देने का समझौता अन्य विदेशी शक्तियों से कर लेते हैं, जिसका विपरीत प्रभाव दोनों देशों के चाय व्यापार पर पड़ता है । श्रीलंका की आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु श्रीलंका में स्थापित भारतीय परियोजनायें एवं साझेदारी में भी कभी-कभी समस्या उत्पन्न हो जाती है, क्योकि श्रीलंका में वस्तुओं की खपत बहुत सीमित है और कभी-कभी आवश्यकता से अधिक सामान बन जाता है ।

भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक सम्बन्धों में सर्वाधिक प्रमुख व्यापार संतुलन की समस्या के समाधान के लिये दोनों देशों के मध्य अनेक व्यापारिक समझौते सम्पन्न हो चुके है । भारत ने श्रीलंका की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने के लिये तथा श्रीलंका के व्यापार में वृद्धि करने के लिये अनेक ऋण एवं अनुदान प्रदान किये हैं, लेकिन फिर भी दोनों देशों के आर्थिक सम्बन्ध अनेक समस्याओं से घिरे है तथा दोनों देशों के व्यापार में बड़ी सीमा में असंतुलन है ।

अस्तु आवश्यकता इस बात की है कि दोनों ही देश अपने आर्थिक सम्बन्धों में उत्पन्न समस्यओं के समाधान के लिये सकारात्मक प्रयास करे । भारत एक औद्योगिक राष्ट्र है, इस-लिये भारत को श्रीलंका के उद्योग एवं व्यापार में वृद्धि हेतु अधिक से अधिक मात्रा में ऋण एवं अनुदान देना चाहिये तथा श्रीलंका के साथ व्यापार में साझेदारी करके संयुक्त रूप से औद्योगिक प्रतिस्थानों को स्थापित करे अपने आर्थिक सम्बन्धों में वृद्धि का प्रयास करना चाहिये । दोनों ही देशों को चाय के व्यापार के सम्बन्ध में परस्पर प्रतिस्पर्धा को त्याग कर संयुक्त रूप से मूल्यों का निर्धारण करके विश्व बाजार पर संयुक्त रूप से अधिपत्य स्थापित करना चाहिये । भारतीय विज्ञान एवं तकनीति को श्रीलंका के प्राकृतिक स्त्रोतों की रक्षा करने तथा श्रीलंका के मनुष्यों को प्रशिक्षित करने के लिये सहयोग देना चाहिये ।

श्री एम0 वी0 महेश्वरी ने अपनी पुस्तक "इण्डिया एण्ड श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" में भारत एवं श्रीलंका के आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों के सुधार के सन्दर्भ में लिखा है "भारत एवं श्रीलंका को संयुक्त रूप से चाय एवं रबड़ के क्षेत्र में विश्व बाजार में प्रभावशाली रूप से

अधिपत्य स्थापित करना चाहिये तथा दोनों देशों को पारस्परिक प्रतिस्पर्धा से दूर रहना चाहिये ।[1] श्री महेश्वरी का मत है कि भारत को श्रीलंका के उद्योग एवं व्यापार में वृद्धि करने के साथ अन्य राष्ट्रों में श्रीलंका के निर्यात में वृद्धि करने का प्रयास करना चाहिये, जिससे विदेशी मुद्रा की समस्या जो भारत के साथ व्यापार असंतुलन की समस्या के कारण उत्पन्न हो जाती है, उसका समाधान हो सके ।[2]

भारत में 1989 में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के गठन के पश्चात् श्रीलंका के राष्ट्रपति श्री प्रेमदास ने भारत – श्रीलंका सम्बन्धों के आर्थिक सम्बन्धों में आशाबादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया । श्रीलंका के बगान उद्योग मन्त्री श्री जेमिनी दिसानायके ने भारत एवं श्रीलंका के बीच आर्थिक सम्बन्धों की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये एक वक्तव्य में कहा कि "हमारा भारत के साथ कार्य करने का उद्देश्य दोनों देशों के मध्य चाय के व्यापार के सम्बन्ध में प्रतिस्पर्धा को समाप्त करना एवं अन्य देशों से निर्यात के सन्दर्भ में भारत से ऋण लेकर व्यापार में वृद्धि होना चाहिये ।"[3] भारत एवं श्रीलंका को अपने आर्थिक सम्बन्धों में वृद्धि हेतु उन समस्याओं का भी समाधान करना चाहिये, जो दोनों देशों के आर्थिक सम्बन्धों को विपरीत प्रभाव डालकर अवरुद्ध करती है ।

वास्तव में, भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध दोनों ही देशों के आर्थिक एवं वाणिज्यक आवश्यकताओं की माँग है । भारत को अपने यहाँ निर्मित वस्तुओं की खपत के लिये श्रीलंका में बाजार की आवश्यता है तथा श्रीलंका को अपने औद्योगिक विकास के लिये एवं अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भारत से तकनीकि एवं आर्थिक सहयोग की आवश्यकता है । दोनों देशों का आर्थिक एवं वाणिज्यक विकास पारस्परिक सहयोग एवं विश्वास पर निर्भर करता है, इसलिये जहाँ एक ओर श्रीलंका के उद्योग एवं व्यापार में वृद्धि हेतु भारत का सहयोग आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर भारत को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपने सामान की खपत के लिये श्रीलंका में बाजार की आवश्यकता है । भारत एवं श्रीलंका के बीच सहयोग एवं विश्वास के आधार पर दोनों देशों के आर्थिक सम्बन्ध प्रगति मे मार्ग की ओर अग्रसर हो सकते हैं ।

---

1. महेश्वरी "इण्डिया एण्ड श्रीलंका इकोनोमिक रिलेसन्स" पृष्ठ –176
2. वही ।
3. इण्डिया टुडे फरवरी 28, 1989

भारत एवं श्रीलंका के मध्य सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकरूपता भी दोनों देशों के मध्य मैत्रीय सम्बन्धों का मार्ग प्रशस्त करती है । श्रीलंका के समस्त व्यक्ति, उनके धर्म, साहित्य एवं उनके सामान्य विचारों पर भारत एवं भारतवासियों की स्पष्ट छाप अंकित है । सांस्कृतिक रूप से श्रीलंका भारतीय सभ्यता की शिशु के समान है ।[1] श्रीलंका के सिंहली बहुसंख्यक समुदाय का प्रधान धर्म बौद्ध धर्म भारत के अल्पसंख्यक समुदाय का धर्म है तथा भारत के बहुसंख्यक समुदाय का हिन्दू धर्म श्रीलंका के अल्पसंख्यक समुदाय का धर्म है । श्रीलंका की प्रधान भाषा सिंहली उसी प्रकार भारतीय आर्य भाषा परिवार की है जैसे बंगाली एवं हिन्दी । श्रीलंका की धार्मिक भाषा पाली है जो सम्राट अशोक के समय भारत की राजभाषा थी । श्रीलंका की दूसरी प्रमुख भाषा तमिल भारत के तमिलनाडु क्षेत्र की प्रमुख भाषा है । श्रीलंका के तमिल एवं भारतीय तमिल दोनों ही तमिल भाषा का प्रयोग करते हैं । 1956 में श्री भंडारनायके ने सिंहली राजनीति के प्रभाव के कारण सिंहली भाषा को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया था, जबकि इससे पूर्व तमिल एवं सिंहली दोनों ही भाषाओं को यह स्थान प्राप्त था । श्रीलंका में अल्पसंख्यक तमिल 1956 से ही तमिल भाषा को सिंहली के समान अधिकार दिलाने के लिये संघर्ष कर रहें हैं । भारत एवं श्रीलंका के मध्य भाषा के सम्पर्क में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कभी कोई विवाद उत्पन्न नहीं हुआ है, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से भारत श्रीलंका सम्बन्धों को भाषा सम्बन्धी विवाद ने प्रभावित किया है, क्योंकि भारत सरकार सदैव तमिलों को श्रीलंका में समान अधिकारों की प्राप्ति के पक्ष में रही है । 1987 में हुये भारत श्रीलंका के बीच हुये शान्ति समझौते में भाषा सम्बन्धी विवाद को समाप्त करने के लिये दोनों देशों में मध्य यह तय हुआ कि तमिल भाषा को भी सिंहली के समान महत्त्व प्राप्त होगा, लेकिन सिंहली एवं तमिलों बीच उत्पन्न विवादों के कारण दोनों ही समुदाय एक दूसरे भाषा से घृणा करते हैं तथा अपनी-अपनी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग के लिये प्रयास करते हैं, जिसका अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव भारत एवं श्रीलंका सम्बन्धों पर पड़ता है । दोनों ही देशों को अपनी सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकरूपता को ध्यान में रखकर अपने आपसी सम्बन्धों में वृद्धि करने के लिये भाषा सम्बन्धी विवाद को कम करने का प्रयास करना चाहिये ।

---

1. वाइनट कोल्हे "एक्रास द पाक स्टेट" पृष्ठ - 1

भारत - श्रीलंका सम्बन्धों के निर्धारण में जातीय तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि श्रीलंका के समस्त जातीय समुदाय मूल रूप से भारतीय है, जो भारत से ही जाकर वहाँ बसे हैं । श्रीलंका का बहुसंख्यक समुदाय सिंहली भारत की आर्य प्रजाति का एक अंग है । भारतीय राजकुमार विजय ने पाँचवी सदी में श्रीलंका में सिंहली राजवंश की स्थापना की थी । सिंहलियों के श्रीलंका के दक्षिणी भाग में अधिपत्य स्थापित होने के बाद दक्षिण भारत से द्रविण तमिलों ने श्रीलंका में प्रवेश किया था । दक्षिण भारत के तमिलों का श्रीलंका में प्रवेश सिंहलियों पर आक्रमण के साथ प्रारम्भ हुआ था, ये तमिल श्रीलंका के उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में वहीं के निवासी के रूप में रहने लगे थे तथा इन्हीं तमिलों को श्रीलंका के तमिलों की संज्ञा दी जाती है ।[1] ब्रिटिश शासन-काल में दक्षिण भारत से गये हुये बगानों के श्रमिक तमिलों को भारतीय तमिल की संज्ञा दी गयी । श्रीलंका के सिंहली समुदाय ने पूर्ण रूप से भारत से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया तथा श्रीलंका के मूल निवासी के रूप में वहीं रहने लगे, लेकिन तमिल लोग प्रारम्भ से ही दक्षिण भारत से अपना सम्बन्ध कायम रखे रहें तथा आज भी भावनात्मक रूप से भारत से जुड़े हुये है ।

स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद से ही भारत - श्रीलंका सम्बन्धों को भारतीय तमिलों की नागरिकता की समस्या ने सर्वाधिक प्रभावित किया है । स्वतन्त्राता प्राप्ति के साथ ही श्रीलंका सरकार ने उन लगभग दस लाख तमिलों की नागरिकता समाप्त कर दी थी जो ब्रिटिश शासन काल में बगान के श्रमिक के रूप में श्रीलंका गये थे तथा लगभग 100 वर्षों से वहीं के निवासी के रूप में रह रहे थे । श्रीलंका में भारतीय मूल के व्यक्तियों के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगने के कारण भारतीय जनमानस ने श्रीलंका की इस प्रकार की नीतियों का विरोध किया तथा भारत सरकार पर दवाव डाला कि वह श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों के अस्तित्व की रक्षा के लिये प्रयास करें । भारत सरकार ने भारतीय जनता की भावनाओं के अनुरूप श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्यिों की समस्या समाधान हेतु, स्वतन्त्राता प्राप्ति के साथ ही प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे । भारत सरकार के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों की नागरिकता के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका के बीच समय-समय पर अनेक समझौते सम्पन्न हो चुके

---

1. एम0 डी0 धर्मदासनी "एम आइलैण्ड इन क्राइसिस" पृष्ठ - 45

हैं । भारत एवं श्रीलंका के बीच हुये इन समझौतों के कारण नागरिकता की समस्या का समाधान करने में दोनों देशों को काफी कुछ सीमा तक सफलता मिली है, लेकिन फिर भी इस समस्या का पूर्णरूप से समाधान सम्भव नहीं हो सका है तथा आज भी नागरिकता की समस्या भारत-श्रीलंका सम्बन्धों में अपना अस्तित्व बनाये हुये है ।

भारत एवं श्रीलंका सरकार के बीच सर्वप्रथम 1954 में नागरिकता की समस्या के समाधान हेतु प्रयास किया गया था इस समझौते को नेहरू कोटलेवाला समझौता की संज्ञा दी गयी । इस समझौते द्वारा जहाँ दोनों देशों में नागरिकता की समस्या का निदान करने के लिये सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयास किया था, वही प्रथक मतदाता रजिस्टर एवं प्रवासी भारतीयों के पंजीकरण सम्बन्धी तथ्यों ने इस समझौते की सफलता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया था । श्रीलंका सरकार ने बहुत कम मात्रा में नागरिकता प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों के आवेदन-पत्र स्वीकृत किये थे, जिसके कारण नागरिकता की समस्या निदान सम्भव नहीं हो पाया था ।

1956 में श्री भंडारनायके श्रीलंका के प्रधानमन्त्री बनी श्री भंडारनायके के शासन काल में भारत - श्रीलंका सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे तथा श्री भंडारनायके एवं नेहरू जी ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के सामाधान हेतु एकजुट हो कर प्रयास किये, लेकिन नागरिकता की समस्या के समाधान की ओर इस काल में भी कोई सफल प्रयास सम्भव नहीं हो सका ।

अक्टूबर 1964 में श्रीलंका की प्रधानमन्त्री श्रीमती भंडारनायके एवं भारत के प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्रीी के मध्य नागरिकता की समस्या के समाधान हेतु एक महत्वपूर्ण समझौता सम्पन्न हुआ । यह समझौता दोनों देशों द्वारा नागरिकता के सन्दर्भ में किये गये प्रयासों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयास था । इस समझौते में दोनों देशों ने परस्पर लेनदेन की नीति का अनुसरण करते हुये समस्या समाधान का प्रयास किया था । श्रीलंका के सीलोन मजदूर कांग्रेस एवं भारत के तमिलनाडु क्षेत्र के व्यक्तियों एवं विपक्षी दल के नेताओं द्वारा इस समझौते का विरोध किया गया था, लेकिन वास्तव में इसी समझौते के आधार पर नगरिकता की समस्या का समाधान करने में

आंशिक सफलता प्राप्त हुयी है ।

श्रीमती इन्दिरागाँधी ने अपने शासन में इस समझौते के पूर्ण क्रियान्वन का प्रयास किया तथा 1974 में बचे हुये 1,50,000 व्यक्तियों के सम्बन्ध में निर्णय लिया । 30 अक्टूबर 1981 को इस समझौते की अवधि समाप्त हो गयी थी, लेकिन फिर भी नागरिकता की समस्या का समाधान पूर्ण रूपसे सम्भव नहीं हो पाया था, क्योकि श्रीलंका एक निश्चित मात्रा से अधिक व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान नहीं करना चाहता था तथा भारत ने जितनी संख्या में व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने की सहमति प्रकट की थी, उतने व्यक्ति भारत नहीं आना चाहते थे । 1981 तक 2,80,000 व्यक्ति भारत प्रत्यावर्तित हो चुके थे तथा 1,60,000 व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता प्राप्त हो चुकी थी । 1981 में इस समझौते की अवधि समाप्त होने पर भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा कि "भारत उन व्यक्तियों के भारत प्रत्यावर्तन के लिये सहमत नहीं होगा जो भारत वापस नही आना चाहते तथा अब और शास्त्री-सिरामाओं समझौते की अवधि बढाने का कोई तर्क सम्मत आधार नहीं है ।" श्रीलंका के विदेश मन्त्री भारत सरकार के इस तर्क से सहमत नहीं थे कि अब दोनों देशों के मध्य शास्त्री-सिरामाओं समझौता लागू नहीं होगा । उनका विचार था कि "जब तक नागरिकता की समस्या पूर्ण रूप से सुलझ नहीं जाती तब तक दोनों देशों के बीच शास्त्री-सिरामाओं समझौता प्रभावी रहेगा ।"[1]

अस्सी के दशक से ही श्रीलंका के अल्पसंख्यक तमिलों में अलगाववाद के लक्षण स्पष्ट रूप से उभर का सामने आने लगे थे । श्रीलंका के सिंहली शासन से क्षुब्ध होकर ये अल्पसंख्यक तमिल पूर्वोत्तर क्षेत्र में अपना एक स्वतन्त्र ईलम बनाने का सपना तो बहुत लम्बे समय से देखते आ रहे थे, लेकिन उस सपने को वास्तविकता के समीप पहुँचाने की आहट पिछले कुछ वर्षों से ही सुनायी पड़ने लगी है । इस आहट की गूँज सिंहली-तमिल संघर्ष के धमाकों में सबसे पहले सुनायी पड़ी थी ।

---

1. एशियन रिकॉर्डर 24-31 दिसम्बर 1981

श्रीलंका की सरकार ने हिंसा की राजनीति का अनुसरण करते हुये ईलम की माँग कर रहे तमिलों का 1980 में व्यापक रूप से दमन एवं नरसंहार किया था । श्रीलंका सरकार के दमन तत्र के अतिरिक्त सिंहली उग्रवाद संगठन जनता विभुक्ति पेरूनुमा भी तमिलों पर कहर बन कर टूट पड़ा था । अलगाव वादी तमिलों ने हिंसा का रास्ता तो पकड़ा, लेकिन प्रारम्भ में उन्हें काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा था । श्रीलंका सरकार एवं जे0 वी0 पी0 की हिंसात्मक गतिविधियों के कारण अनेक उग्रवादी तमिल संगठनों ने जन्म लिया, धीरे-धीरे ये संगठित होते गये तथा इन्होंने भी सरकार एवं जे0 वी0 पी0 के विरूद्ध हिंसा की राजनीति को अपना लिया । श्रीलंका सरकार का आरोप रहा है कि भारत सरकार ने इन तमिल उग्रवादी संगठनों को गठित करने एवं उनकी ताकत में वृद्धि करने में सक्रिय योगदान दिया है ।

श्रीलंका की सेना एवं सिंहली उग्रवादी संगठनों द्वारा तमिलों की आतंकवादी गतिविधियों का दमन करने के लिये अनेक प्रकार की दमनात्मक नीतियाँ अपनायी, जिसका सामना अनेक निर्दोष तमिलों को करना पड़ा । श्रीलंका के तमिलों से सहानुभूति के कारण भारत के तमिलनाडु क्षेत्र के व्यक्ति भारत सरकार से श्रीलंका में तमिलों पर हो रहे अत्याचार के सन्दर्भ में हस्तक्षेप की माँग करने लगे तथा श्रीलंका में होने वाली आतंकवादी गतिविधियों के कारण भारी मात्रा में तमिल शरणार्थि भारत आने लगे । श्रीलंका में तमिलों पर होने वाले अत्याचारों एवं काफी मात्रा में शरणार्थियों के भारत आने पर 1980 में पहलीबार भारत सरकार ने श्रीलंका में इस सन्दर्भ में हस्तक्षेप किया तथा अपने विदेशमन्त्री को स्थिति का अवलोकन करने के लिये श्रीलंका भेजा तथा तमिलों के लिये राहत सामग्री श्रीलंका सरकार की अनुमति से भेजी । भारत सरकार ने सदैव श्रीलंका सरकार से यह आग्रह किया कि वह हिंसा की राजनीति का त्याग करके समस्या का राजनैतिक समाधान करने का प्रयास करे, लेकिन विडम्बना यह रही कि जयवर्धने सरकार ने तमिल समस्या को कभी भी राजैतिक समस्या नहीं माना तथा इस समस्या का सैनिक समाधान ही करने का प्रयास किया । भारत सरकार की तमिलों के प्रति सहानुभूति के कारण

तथा तमिलों की आतंकवादी गतिविधियों में अधिकाधिक वृद्धि के कारण श्रीलंका सरकार भारत पर तमिलों को सहायता देने का आरोप लगाती रही, जिससे दोनों देशों के मध्य मतभेद बढ़ते ही गये ।

तमिलों एवं सिंहलियों के बीच होने वाली आतंकवादी गतिविधियों के कारण भारतीय नागरिकता प्राप्त व्यक्तियों का भारत प्रत्यावर्तन लगभग रूका ही रहा तथा इसी समय से भारत श्रीलंका के बीच स्वतन्त्राता प्राप्ति से चली आ रही नागरिकता की समस्या के स्थान पर तमिल अल्पसंख्यकों की समस्या ने दोनों देशों के सम्बन्धों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था ।

1984 में श्री राजीव गाँधी ने भारत के प्रधानमन्त्री पद को ग्रहण करने के बाद तमिल अल्पसंख्यकों की समस्या समाधान हेतु लचीलेपन एवं मृदुनीति का अनुसरण किया । राजीव गाँधी सरकार ने जहाँ एक ओर श्रीलंका सरकार को अगाह कि भारत किसी भी प्रकार की हिंसा का विरोधी है, वहीं दूसरी ओर तमिल उग्रवादी संगठनों पर श्रीलंका सरकार द्वारा समस्या समाधान के सन्दर्भ में किये गये प्रयासों को मानने के लिये दवाव डाला ।

श्री राजीव गाँधी ने अपने शासन काल में एक बार फिर नागरिकता की समस्या का समाधान पूर्ण रूप करने का प्रयास किया । जनबरी 1986 में दोनों देशों ने पारस्परिक सहमति के आधार पर यह निर्णय लिया कि भारत उन सभी व्यक्तियों को ले लेगा, जिन्होने 30 अक्टूबर 1981 के पूर्व भारत की नागरिकता प्राप्त करने के लिये प्रतिवेदन दिया है, लकिन सिंहली एवं तमिलों के बीच होने वाली हिंसात्मक गतिविधियों के कारण वे भारत नहीं आ सके हैं इसके साथ ही श्रीलंका ने नागरिकता विहीन व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने की सहमति प्रकट की ।[1]

शास्त्री सिरामाओं समझौते के अन्तर्गत भारत ने छः लाख भारतीय मूल के व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में स्वीकृति दी थी श्रीलंका ने 3 लाख 74 हजार व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में निर्णय लिया था । 1986 में श्रीलंका सरकार ने बचे हुये

---

1. एशियन रिकॉर्डर 26 - 4 मार्च 1986

94,000 व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में स्वीकृति दी थी, जिसके परिणामस्वरूप श्रीलंका को 4 लाख 69 हजार व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करनी थी । भारत की नागरिकता प्राप्ति हेतु जिन 5 लाख 6 हजार व्यक्तियों ने आबेदन किया था, उनमें से चार लाख व्यक्तियों को भारत की नागरिकता प्रदान की गयी थी तथा एक लाख व्यक्तियों के आबेदन-पत्र अनेक त्रुटियों के कारण निरस्त कर दिये गये थे । भारत में जिन 4 लाख व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान की थी उनमें से तीन लाख सोलह हजार व्यक्ति 1983 से पूर्व भारत आ चुके थे, बचे हुये 84,000 व्यक्तियों का भारत प्रत्यावर्तन सिंहलियों एवं तमिलों के बीच होने वाले दंगों के कारण रुका रहा, इन 84,000 व्यक्तियों की संख्या अब बढ़कर लगभग एक लाख हो गयी है तथा इनमें से अधिकांश व्यक्ति परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण अब भारत वापस नहीं आना चाहते है । 1988 के अन्त तक श्रीलंका सरकार ने नागरिकता नियम के अन्तर्गत 4,35,000 व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता प्रदान कर दी थी,[1] लेकिन दोनों देशों के इन प्रयासों के बाद भी नागरिकता की समस्या का निदान सम्भव नहीं हो सका है । लगभग एक लाख व्यक्तियों की नागरिकता की समस्या दोनों देशों के सम्बन्धों में आज भी विद्यमान है ।

वर्तमान समय में भारत एवं श्रीलंका के बीच तमिल अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित समस्या अपने विकृत रूप में विद्यमान है । तमिल उग्रवादी संगठनों की आतंकवादी गतिविधियों एवं श्रीलंका सरकार के दमनतंत्र की परिणामस्वरूप श्रीलंका में साधारण तमिलों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, इसी कारण भारत सरकार की सदैव यह कोशिश रही है कि तमिल उग्रवादी संगठन एवं श्रीलंका सरकार के बीच कोई समझौता हो जाये जिससे श्रीलंका में शान्ति एवं व्यवस्था कायम हो सके तथा निर्दोष तमिलों को इस प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाही का सामना न करना पड़े । भारत सरकार के इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत एवं श्रीलंका के बीच एक शान्ति समझौता 29 जुलाई 1987 को सम्पन्न हुआ था, लेकिन फिर भी इस दिशा में कोई सार्थक प्रयास सम्भव नहीं हो सका है एवं समस्या अपने उसी रूप में विद्यमान है ।

---

1. आई0 डी0 एस0 "साउथ एशिया रिव्यू" जनबरी 1980

वास्तव में शान्ति स्थापित करने वाले समझौते एकता की प्रक्रिया के अनुसार होते हैं । फूट के माध्यम से होने वाले समझौतों में असफलता के अदेशे प्रारम्भ से जुड़े होते हैं, जिन समझौतों में खुलापन नहीं होता वे तो और भी कच्ची मिट्टी के बने होते है । जुलाई 1987 के आखरी सप्ताह शुरू होने से पहले तक इस समझौते के कोई ठोस आधार दूर-दूर तक नहीं दिखायी पड़ रहे थे, अचानक घटनायें घटित होती गयी तथा समझौता हो गया । इस समझौते में भारत ने अपने हाथ पूर्ण रूप से बाँध लिये थे । समझौते के अनुसार श्रीलंका सरकार सैनिक सहायता की माँग करेगी तो हमें देना पड़ेगी तथा भारत सरकार श्रीलंका में भारतीय नागरिकता प्राप्त व्यक्तियों के भारत प्रत्यावर्तन का कार्य शीघ्रता से करेगी एवं तमिलनाडु में श्रीलंका के शरणार्थियों की वापसी का कार्य की जिम्मेदारी का कार्य भारत सरकार का ही था । भारत इस जिम्मेदारी पूर्ण कार्य को तभी कर सकता था जब श्रीलंका सरकार सक्रिय रहती तथा तमिल छापामार संगठन भारत का कहना मानते, यदि तमिल छापामार संगठन भारत का कहना मानते थे तो इसका तात्पर्य यह था कि अब तक वे जो भी कर रहे थे तो भारत की ही प्रेरणा से कर रहे थे, जिसे भारत ने कभी भी स्वीकार नहीं किया था । तमिल छापामार यदि भारत के कहने में नहीं थे तो भारत सरकार को उनकी ओर से कोई जिम्मेदारी लेना उचित नहीं था ।

वास्तव में समझौता भारत एवं श्रीलंका के मध्य न होकर तमिल छापामार संगठन एवं श्रीलंका सरकार के बीच होना चाहिये था । वह भले ही भारत की सदारत में होता, लेकिन भारत को समझौते में अपने हाथ नहीं बाधने चाहिये थे । जब तक उग्रवादी संगठन स्वयं समझौते की पार्टी नहीं होते, तब तक पंजाब जैसी स्थिति बनी रहेगी । भारत ने अपनी जिम्मेदारी निभाने का पूर्ण इंतजाम करने से पूर्व ही जिम्मेदारी ले ली थी । तमिल छापामार एवं तमिल ईलम भारत की नहीं श्रीलंका की समस्या थी, सभी तमिल भी भारतीय नियन्त्रण में नहीं थे तथा श्रीलंका की जनता भी समझौते के पक्ष में नहीं थी तो भारत के लिये इतनी जिम्मेदारी पूर्ण भूमिका ले लेना उचित नहीं था । श्री प्रभाष जोशी के अनुसार "समझौता छापामार संगठनों एवं श्रीलंका सरकार के बीच

होना चाहिये था । भारत समझौते में प्रत्यक्षदर्शी की भूमिका का निर्वाह कर सकता था, लेकिन समझौते में हाथ उनके बन्धाने चाहिये थे जिनके हाथ में राइफले एवं मशीन गनें थी ।[1] किसी देश के बहुसंख्यक समुदाय को नाराज करके अल्पसंख्यकों के हित की जिम्मेदारी नहीं ली जा सकती है । यह संघर्ष केवल श्रीलंका सरकार एवं तमिल उग्रवादियों के मध्य नहीं था, यह सिंहलियों एवं तमिलों के बीच भी संघर्ष था । वास्तव में श्रीलंका में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने का कार्य सिंहली एवं तमिल समाज के नेता एवं श्रीलंका सरकार कर सकती थी । भारत सरकार तो केवल प्रत्यक्ष दर्शी का कार्य कर सकती थी । समझौते में सबसे बड़ी भूल यह हुयी थी कि तमिल एवं सिंहली उग्रवादी संगठनों को सम्मिलित नहीं किया गया था। इसी कारण सिंहली एवं तमिल उग्रवादी संगठनों ने प्रारम्भ से ही भारत विरोधी रूख अपनाते हुये समझौते की सफलता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया था ।

समझौते के अनुसार 30 जुलाई 1987 को ही भारतीय शान्ति सेना श्रीलंका चली गयी थी, धीरे-धीरे श्रीलंका ने भारतीय शान्ति सेना की संख्या बढ़ती ही गयी । भारतीय शान्ति सेना ने श्रीलंका में वह सब कुछ किया जो श्रीलंका की सेना नहीं कर पायी थी । शान्ति सेना ने अपने हजारों सैनिकों की आहुति देकर श्रीलंका की विगड़ी हुयी स्थिति को नियंत्रित किया था तथा श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता को कायम रखा । शान्ति सेना की उपस्थिति के कारण तमिल ईलम का सपना भी साकार नहीं हो सका और न ही सरकार की तमिल क्षेत्रों में सिंहली जनता को बसाने की नीति सफल हो पायी थी, लेकिन फिर भी शान्ति सेना को रक्षक के स्थान पर भक्षक की संज्ञा मिली तमिलों पर अत्याचार सिंहली एवं तमिल उग्रवादी संगठनों ने किये, लेकित इन अत्याचारों को भारतीय शान्ति सेना के नाम कर दिया । भारत ने अपने हजारों सैनिकों की जान देकर तथा करोड़ों रूपये खर्च करने के बाद भी कुछ अर्जित नहीं कर पाया था ।

भारतीय शान्ति सेना की श्रीलंका में उपस्थिति ने एक ओर लिट्टे एवं जे० वी० पी० का अबसरवादी गठबन्धन करा दिया था, तो दूसरी ओर शान्ति सेना की वापसी के लिये श्रीलंका

---

1. जनसत्ता - (राइफल) 31 जुलाई 1987 ।

सरकार एवं लिट्टे संयुक्त रूप से माँग करने लगे थे । पहील जून 1989 को श्रीलंका के राष्ट्रपति प्रेमदास ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया कि "भारत 29 जुलाई 1989 तक अपनी सेना श्रीलंका से हटा ले ।" श्रीलंका के राष्ट्रपति की इस घोषणा का भारत सरकार ने विरोध किया तथा यह घोषित किया कि समझौते के अनुसार श्रीलंका में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित होने के बाद ही शान्ति सेना श्रीलंका से वापस आयेगी, इसी के साथ भारत सरकार का मत था कि शान्ति सेना एक समझौते के अनुसार श्रीलंका गयी थी, इसलिये उसकी वापसी भी परस्पर विचार-विमर्श के आधार पर ही होनी चाहिये । लिट्टे ने शान्ति सेना के विरोध में मुहिम छेड़ते हुये शान्ति सैनिकों को अपनी गोली का निशाना बनाना प्रारम्भ कर दिया था । भा0 ज0 पा0 के नेता श्री अटलविहारी बाजपेयी ने शान्ति सेना के विषय में भारतीय नीतियों की असफलता के सन्दर्भ में एक साक्षात्कार में अपना मत प्रस्तुत करते हुये कहा कि "हमारी कूटिनीति की यह विफलता है कि हम लिट्टे एवं उसकी व्यूह रचना को नहीं समझ पाये । जिस लिट्टे की सहायता को हम गये थे उसी से हमारी ठन गयी । हम तमिलों की रक्षा के लिये गये थे, लेकिन हमें तमिलों का ही संहार करना पड़ा तथा जो तमिल अपनी रक्षा के लिये ले गये थे उन्होंने ही हमारे जवानों को मारा ।"[1]

भारत एवं श्रीलंका के बीच शान्ति सेना की वापसी के विषय में उठे विवाद के सन्दर्भ में श्री अटल विहारी बाजपेयी ने एक साक्षात्कार में अपना मत प्रस्तुत करते हुये कहा कि "शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में हमारा तर्क यह होना चाहिये था कि हम तो इसे पहले ही वापस बुलाना चाहते थे तथा हमें श्रीलंका से विचार विमर्श करके अपनी सेना तुरन्त वापस कर लेनी चाहिये थी, यदि श्रीलंका हमारी सहायता नहीं चाहता तथा टूटने पर तुला है तो हमारी सेना उसे एक नहीं रख सकती है ।"

शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका के बीच काफी तनाब उत्पन्न हो गया था तथा भारत के समक्ष एक नयी उलझन उत्पन्न हो गयी थी, क्योंकि जिन हजारों की संख्या में सैनिकों ने श्रीलंका में अपनी जान दी थी, उनका बलिदान विल्कुल व्यर्थ

---

1. दैनिक आज 11 जुलाई 1989

चला जाये यह बात किसी को समझ में नहीं आ रही थी । इसके साथ ही श्रीलंका में उसकी अनुमति के बिना शान्ति सेना की उपस्थिति का औचित्य भी किसी को समझ नहीं आ रहा था । भारत के कई विपक्षी दलों ने सरकार से शान्ति सेना की वापसी की माँग करना प्रारम्भ कर दिया था । शान्ति सेना की वापसी का समर्थन करते हुये वी0 यू0 सी0 एल0 के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र सच्चर ने एक वक्तव्य में कहा कि "श्रीलंका में उसकी अनुमति के बिना शान्ति सेना की उपस्थिति साम्राज्यवादी विरासत के अनुकूल है, यह भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश के अनुकूल नहीं है । भारत सभी राष्ट्रों की प्रभुसत्ता का सम्मान करने की अपनी परम्पर को बनाये रखते हुये धौंस डपट करने वाले बड़े भाई की भूमिका को नहीं अपना सकता है । लतीनी अमरीकी देशों में अमरीका का हस्तक्षेप पूर्ण रूप से अस्वीकार्य है, इसी तरह श्रीलंका की अनुमति के बिना भारतीय सेना की उपस्थिति उचित नहीं है ।"[1]

29 जुलाई 1989 तक भारत सरकार ने श्रीलंका की भावनाओं के अनुरूप शान्ति सेना की चरणवद्ध वापसी के सन्दर्भ में अपनी सहमति प्रकट कर दी थी । शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में अधिकांश लोग इस आशंका को व्यक्त कर रहे थे कि शान्ति सेना की वापसी के बाद श्रीलंका में स्थिति और अधिक बदतर हो जायेगी तथा श्रीलंका सरकार एवं लिट्टे का अवसरवादी गठबन्धन टूट जायेगा । भारत के भूतपूर्व विदेशसचिव एरिक गो–सालवेज के मतानुसार "शान्ति सेना के श्रीलंका से हट जाने से वहाँ बदतर हालात हो जायेंगें । यदि श्रीलंका के लोग यह समझते है कि वह स्वयं स्थिति से निबट सकते है तो मेरी राय में उन्हें स्वयं ही निबटने देना चाहिये और उसके परिणाम को भी उन्हें भुगतना चाहिये । अगली बार जब वे भेड़िया आया चिल्लायेगें तो उनकी बात सही होने पर भी कोई उनकी सहायता को नहीं जायेगा । भारत सरकार श्रीलंका को यही सच्चाई समझाने की कोशिष कर रही है ।"[2] 18 सितम्बर 1989 को शान्ति सेना की वापसी के सन्दर्भ में एक समझौता सम्पन्न हुआ, जिसके अनुसार 31 मार्च 1990 को भारतीय शान्ति सेना पूर्ण रूप से भारत आनी थी ।

---

1. सचेतना जुलाई 1989
2. वही ।

अक्टूबर 1989 में भारत में लोकसभा के चुनाव हुये, जिसके अनुसार श्री वी0 पी0 सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार का गठन हुआ । श्री वी0 पी0 सिंह ने अपना पद गृहण करने के बाद तमिल समस्या का समाधान करने की दृष्टि से तमिलनाडु के मुख्य मन्त्री श्री एम0 जी0 रामचन्द्रन से विचार विमर्श किया तथा श्रीलंका सरकार से तमिलों के अधिकारों को देने अनुरोध किया, इसके साथ ही 31 मार्च 1990 तक शान्ति सेना की वापसी का वचन दिया । तमिलनाडु के तमिल ईलम सहयोगी समिति के अध्यक्ष श्री के0 वी0 वेकटारमन ने प्रधानमन्त्री से श्रीलंका के विषय में सर्वदलीप सम्मेलन आमंत्रित करने का आग्रह किया । उन्होंने एक वक्तव्य में कहा कि "श्रीलंका की समस्या भारत एवं तमिलनाडु की समस्या है, इसलिये समस्या समाधान के लिये तमिलनाडु के लोगों की इच्छा जानने के कलीये श्री वी0 पी0 सिंह को तमिलनाडु के स्थानायी दलों के राजनेताओं से विचार-विमर्श करना चाहिये, केवल तमिलनाडु के मुख्यमन्त्री को नहीं जो वर्तमान लोकसभा चुनाव में अपना विश्वास खो चुके हैं ।"[1]

भारतीय जनमानस शान्ति सेना की वापसी के बाद श्रीलंका में सिंहली एवं तमिल उग्रवादियों के बीच खुले गृहयुद्ध की आशंका व्यक्त कर रहा है, क्योंकि पिछले वर्षों में श्रीलंका ने भारत के सहयोग से अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ा लिया था । शान्ति सेना के हटने के बाद इस सेना का प्रयोग अधिकांशत: तमिल क्षेत्रों में ही होना निश्चित था तथा भारत विरोधी देश द्वारा परिस्थिति का लाभ उठाने पर श्रीलंका के क्षेत्रीय तनाव बनने की आशंका थी । तमिल गुटों का एक दूसरे से विश्वास उठ रहा था तथा लिट्टे ने सत्ता की सर्वभक्षी भूख के कारण कोलम्बों सरकार से उसके टकराव के स्पष्ट संकेत मिल रहे थे । इस पृष्ठभूमि में श्रीलंका में अमन एवं शान्ति स्थापित होना बहुत दूर का सपना लग रहा था ।

भारतीय शान्ति सेना जिन क्षेत्रों से अपने तम्बू उखाड़ रही थी, वहाँ लिट्टे ने अपना हथियार बन्द प्रभुत्व पहले से ही जमा लिया था । इन क्षेत्रों में उत्तरी-पूर्वी प्रान्त की

---

1. स्टेटसमैन 11 दिसम्बर 1989

सरकार अप्रभावी हो चुकी थी । ई० पी० आर० एल० एफ० प्रशासन में यदि कुछ शक्ति दिखायी पड़ी थी तो वह भारतीय शान्ति सेना के कारण थी । शान्ति सेना की वापसी के बाद लिट्टे शक्तिशाली संगठन के रूप में उभर रहा था । लिट्टे ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया था कि अन्य विरोधी संगठनों के पास इसके अतिरिक्त कोई माध्यम नहीं था कि वह लिट्टे की बढ़ती हुयी शक्ति को न स्वीकार करे और उससे समझौतों करके उसकी अधीनता को स्वीकार करें । ई० पी० आर० एम० के नेता श्री वरदराज परूमल एवं अनके साथियों ने शान्ति सेना की सम्पूर्ण वापसी के पूर्व ही अपने जीवन की रक्षा हेतु श्रीलंका छोड़ दिया था, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक रूप से लिट्टे ने उत्तरी-पूर्वी प्रान्त में अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया था । लिट्टे ने तमिलनाडु का समर्थन पाने के लिये श्री करूणाविधि एवं डी० एम० के सरकार से अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे । श्री करूणानिधि ने लिट्टे के प्रभाव में आकर शान्ति सैनिकों के विरोध में वक्तव्य देते हुये कहा कि "शान्ति सेना ने श्रीलंका में तमिलों का ही खून बहाया है ।" इसके साथ ही करूणानिधि ने शान्ति सेना पर मुक्ति चीतों के विरोधी गुटों पर हथियार देने का भी आरोप लगाया ।

शान्ति सेना की वापसी के पूर्व ही श्रीलंका से तमिल शरणार्थियों का भारत आना प्रारम्भ हो चुका था पहले वे निहत्थे आते थे, अब वे हथियार एवं गोला बारूद के साथ आ रहे थे । ऐसे संकेत भी मिले थे कि तमिल शरणार्थियों पर समुद्र पार करते समय लिट्टे आतंकवादियों एवं श्रीलंका की सेना के सिपाहियों ने घात लगाकर हमले किये थे । इस समूची स्थिति से समस्या की जटिलता में वृद्धि हो रही थी । श्रीलंका में इस समय सिंहलियों की समस्या भी कम उलझी एवं विषम नहीं थी । एक समय ऐसा था जब यह समझा जाता था कि सारा दमन तमिलों का ही हो रहा है तथा अत्याचारों के सभी हथियार तमिलों पर ही प्रयोग किये जा रहे हैं, लेकिन जे० वी० पी० के उभरने के बाद स्थिति बदल गयी है । श्रीलंका की सरकार ने जे० वी० पी० के अनेक नेताओं का सफाया कर दिया है, लेकिन फिर भी उसका प्रभाव नष्ट नहीं हुआ है । तमिलों को मिलने वाली साधारण सी सहायता सिंहली युवकों को अधिक से अधिक उग्र एवं संगठित बनाती है । कुल मिलाकर श्रीलंका स्थिति नाज़ुक होती जा रही थी । श्रीलंका फ्रीडम पार्टी की नेता श्रीमती भंडारनायके

ने स्वतन्त्राता दिवस के दिन एक वक्तव्य में कहा था "आज श्रीलंका की ऐसी स्थिति है कि उसे भविष्य का रास्ता नहीं सूझ रहा है, जितने तरीके है उनमें से कोई उम्मीद की किरण नहीं फूटती ।"[1] अत: सिंहलियों एवं तमिलों के झगड़ों के कारण श्रीलंका में काफी विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रहीं थी, लेकिन फिर भी प्रेमदास सरकार भारत विरोधी रूख अपनाते हुये लिट्टे को अधिकाधिक बढ़ावा दे रहे थे, जिसका परिणाम उन्हें स्वयं आगे चलकर भुगतना पड़ा ।

24 मार्च 1990 को श्रीलंका से भारतीय शान्ति सेना की पूर्ण रूप से वापसी हो गयी थी । शान्ति सेना की वापसी के साथ भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में इस सन्दर्भ में उठी अनेक समस्याओं का समाधान हो गया था तथा कुछ समय के लिये ऐसा प्रतीत हुआ था कि अब भारत – श्रीलंका सम्बन्धों में कुछ सुधार होगा, लेकिन इसी बीच श्रीलंका सरकार ने पुन: नागरिकता की समस्या को उठाकर दोनों देशों के सम्बन्धों में एक बार फिर गतिरोध उत्पन्न कर दिया था । श्रीलंका के बगान उद्योग मन्त्री श्री रंजन विजयरत्ने ने एक वक्तव्य में कहा कि "भारत सरकार को उन सभी एक लाख से अधिक तमिल श्रमिकों को भारत प्रत्यावर्तित कर लेना चाहिये जिन्होंने लगभग तीन दशक पूर्व भारतीय नागरिकता की प्राप्ति हेतु आवेदन किया था ।"[2]

श्रीलंका में वर्तमान समय में लगभग 86,000 व्यक्ति ऐसे है जिन्होंने शास्त्री सिरामाओं समझौते के अन्तर्गत भारतीय नागरिकता की प्राप्ति हेतु आवेदन किया था । शास्त्री सिरामाओं समझौते में पन्द्रह वर्ष का समय प्रत्यावर्तन के लिये निर्धारित किया गया था । श्रीमती इन्दिरागाँधी ने इस समझौते के अवधि तीन वर्ष और बढ़ा दी थी, लेकिन इन अठारह वर्षों में भी प्रत्यावर्तन का कार्य पूर्ण नहीं हो सका था तथा अब एक लम्बे समय अन्तराल एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण वे व्यक्ति भारत वापस नहीं आना चाहते, जिन्होने लगभग तीन दशक पूर्व भारत की नागरिकता प्राप्ति हेतु आवेदन किया था । भारत – श्रीलंका के बीच 1987 में हुये शान्ति समझौते के अन्तर्गत भी दोनों देशों ने अपने-अपने नागरिकों की वापसी हेतु प्रतिवद्धता प्रकट की थी ।

---

1. इण्डियन एक्सप्रेस 2 मई 1990

2. दैनिक आज 27.2.1990

शास्त्री–सिरामाओं समझौता हुये लगभग तीन दशक बीत चुके है तथा अब छब्बीस वर्ष बाद श्रीलंका को यह समझौता याद आया है । वर्तमान समया में शास्त्री–सिरामाओं समझौता अपना महत्व खो चुका है, क्योंकि छब्बीस वर्ष का समय कम नहीं होता । इतने लम्बे समय में बहुत से समझौते एवं परिस्थितियाँ अपना महत्व खो देती है, यह बात श्रीलंका को समझ लेनी चाहिये तथा भारत पर इसकी पूर्ति हेतु दवाब नहीं डालना चाहिये । समय एवं परिस्थितियाँ आज भारत के समझौता मानने के पक्ष में नहीं है । श्रीलंका सरकार ने भारत को धमकी दी है कि वह भारत के उड़ीसा प्रान्त में बसे लगभग 90,000 तमिल शरणार्थियों को वापस नहीं लेगा, जबकि भारतीय प्रधानमन्त्री श्री वी0 पी0 सिंह का मत है कि श्रीलंका को अपने शरणार्थी वापस लेने ही होगें । इस प्रकार 90,000 शरणार्थियों का भविष्य अधर में लटका है, उन्हे न भारत लेना चाहता है और न ही श्रीलंका । श्रीलंका के तमिल उग्रवादी संगठन लिट्टे द्वारा श्रीलंका सरकार के उस वक्तव्य की कड़ी आलोचना की गयी, जिसमें उसने भारत सरकार पर एक लाख भारतीय मूल के तमिल श्रमिकों के भारत प्रत्यावर्तन पर दवाब डाला था । लिट्टे का मत है कि "सभी भारतीय मूल के बगान श्रमिक इस द्वीप के नागरिक है, इसलिये उन्हें शीघ्र ही श्रीलंका की नागरिकता प्रदान की जानी चाहिये ।"[1]

अत: नागरिकता की समस्या काफी लम्बे घटनाक्रम के बाद पुन: उसी स्थान पर आ गयी कि भारत ने जितने व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करन चाहता था, उतने व्यक्ति भारत बापस आना नहीं चाहते थे तथा श्रीलंका एक निश्चित मात्रा से अधिक व्यक्यिों को नागरिकता देना नहीं चाहता है, लेकिन फिर भी कोई समस्या ऐसी नहीं होती कि जिसके समाधान के सभी मार्ग बन्द हो । सत्य एवं निष्ठा द्वारा किये गये प्रयासों से कठिन से कठिन समस्या का निदान सम्भव हो जाता है । इसका उदाहरण स्वयं भारत एवं श्रीलंका है जिन्होंने लगभग दस लाख तमिलों का नागरिकता की समस्या का समाधान किया है, यद्यपि परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण आज फिर एक लाख तमिलों की नागरिकता की समस्या उत्पन्न हो गयी है । भारत एवं श्रीलंका ने जब

1. हिन्दुस्तान टाइम्स 11 मई 1990

लगभग नौ लाख तमिलों की नागरिकता की समस्या का समाधान करने में सफलता प्राप्त कर ली है तो एक लाख व्यक्तियों की संख्या तो बहुत कम है, आवश्यकता तो केवल दोनों देशों द्वारा ईमानदारी पूर्ण प्रयासों की है । भारत एवं श्रीलंका को परस्पर लेन-देन एवं समझौतावादिता की नीति का अनुसरण करते हुये इस समस्या का समाधान करना चाहिये तथा इस समस्या के कारण अपने आपसी सम्बन्धों मे कोई तनाब नहीं उत्पन्न करना चाहिये ।

वास्तव में, वर्तमान समय में भारत – श्रीलंका सम्बन्ध नागरिकता की समस्या से नहीं वरन तमिल अल्पसंख्यकों की समस्या से अधिक प्रभावी हैं । श्रीलंका से शान्ति सेना की वापसी के बाद राष्ट्रपति प्रेमदास एवं लिट्टे नेताओं के बीच स्थापित एकता में दरार उत्पन्न होने लगी थी । लिट्टे तो काफी समय से सशस्त्र संघर्ष की तैयारी कर रहा था, लेकिन प्रेमदास द्वारा बुलायी गयी सर्वदलीय बैठक का बहिस्कार करके लिट्टे ने प्रत्यक्ष रूप से श्रीलंका सरकार का विरोध शुरू कर दिया ।

11 जून 1990 से श्रीलंका में हिंसा का नया दौर प्रारम्भ हो गया है, जिसके कारण लिट्टे एवं श्रीलंका सरकार के बीच चल रही समझौता वार्तायें समाप्त हो गयी । 11 जून को अचानक विस्फोट हुआ और लिट्टे ने श्रीलंका की सेनाओं से सीधी टक्कर लेना शुरू कर दी । इस घटना ने पूरी दुनियाँ को चकित कर दिया । लिट्टे के पास बहुत से विकल्प नहीं बचे थे, लेकिन उन्हे प्रेमदास से अनेक आशायें थी । श्रीलंका की सरकार ने अपनी सेना की कमान पुराने क्रूर अधिकारियों के हाथ में सौप दी है । सरकार का विचार है जब उसने जे० वी० पी० को पूरी वेरहमी से कुचल दिया है तो तमिल अलगाववादियों का संहार करने में उसे कोई नैतिक संकोच नहीं हो सकता । लिट्टे ने युद्ध आरम्भ किया था और दोनों में से कोई भी युद्ध रोकने के लिये तैयार नही था । सिंहलियों का मत है कि लिट्टे का इस प्रकार पलट कर वार करना एक बड़ा धोखा है ।

श्रीलंका के उत्तरी एवं पूर्वी प्रान्त में लिट्टे एवं श्रीलंका सरकार के बीच घमासान युद्ध चल रहा है । पूर्वी प्रान्त में सेना का पलड़ा भारी है तो उत्तर में लिट्टे अपना

प्रभुत्व स्थापित किये हुये है । जाफना किले की घेराबन्दी लिट्टे ने कर रखी है । पूर्वी क्षेत्र में शहरों में सेना का वर्चस्व है लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में लिट्टे अभी भी अपना प्रभुत्व बनाये हुये है । लिट्टे के नेता श्री प्रभाकरन का मत है कि "प्रथक तमिल ईलम की स्थापना से ही समस्या का स्थायी हल सम्भव है ।"[1] अब यह स्पष्ट हो चुका है कि मुक्ति चीतों एवं कोलम्वो का गठबन्धन अवसरबादी था तथा दोनों ही अन्दर-अन्दर युद्ध की तैयारी कर रहे थे । मुक्ति चीतों का यह गणित था कि शान्ति सेना को हरा पाया तो मुश्किल है, इसलिये पहले इससे छुटकारा पा लिया जाये और फिर वह अन्य तमिल उग्रवादी संगठनों को हराकर तमिलों का एकमात्र प्रवक्ता बन जायेगा । जिस दिन से शान्ति सेना हटी थी उसी दिन से मुक्ति चीते सक्रिय हो गये थे । अतः श्रीलंका का वर्तमान युद्ध पूर्वनियोजित है, इसीलिये दोनों ने आर-पार की लड़ाइ की ठान रखी है । श्रीलंका के रक्षामन्त्री रंजन विजयरत्ने ने एक वक्तव्य में कहा था "सैनिक अब अपने हथियारों का खुलकर प्रयोग करेंगें, चाहे कितने ही नागरिक क्यो न मारे जाये ।"[2]

श्रीलंका में जातीय संघर्ष के इस विभत्स दौर का सामना साधारण तमिलजनों को ही करना पड़ रहा है, अनेक निर्दोष तमिलों की हत्या कर दी गयी तथा अनेक लोग वेघर हो गये हैं । यद्यपि श्रीलंका सरकार ने स्पष्ट किया है कि उनकी लड़ाई टाइगर्स के विरूद्ध है तमिलों के विरूद्ध नहीं । वर्तमान समय में श्रीलंका में घटनाक्रम एक पूरा चक्कर काट कर फिर वहीं वापस आ पहुँचा है, जहाँ तीन वर्ष पूर्व था । आज से ठीक तीन वर्ष पूर्व भारतीय शान्ति सेना ने अपने अभिमान द्वारा विमानों से खाद्य सामग्री गिराकर उन्हें श्रीलंका की सेना के कोप से बचाया था । वर्तमान समय में तमिल ईलम के लिये लड़ रहे मुक्ति चीते फिर उसी दशा में पहुँच गये है और उन्हें बचाने वाला कोई नहीं है । भारत आज श्रीलंका में उन्हीं दृश्यों की पुनरावृत्ति देख रहा है जिनसे परेशान होकर तीन वर्ष पूर्व भारत ने श्रीलंका में हस्तक्षेप किया था ।

---

1. दिनमान टाइम्स 12 - 18 अगस्त 1990
2. इण्डिया टेड 15 जुलाई 1990

श्रीलंका में सात वर्ष तक भारत ने मध्यस्थता एवं हस्तक्षेप की नीति पर चल कर देख लिया, लेकिन अब नयी दिल्ली में सरकार भी अलग है और नीतियाँभी अलग हैं । राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की नीति यह है कि यदि श्रीलंका की घटनाओं में तमिलनाडु लहरें न बने, तो हमें इससे कोई मतलब नहीं कि श्रीलंका में क्या हो रहा है । यदि तमिल टाइगर्स चाहे तो वे लड़कर ईलम ले ले और यदि श्रीलंका सरकार में सार्मथ्य हो तो वह बन्दूकों के माध्यम से तमिल टाइगर्स को हरा दे । भारत की सरकार की नीतियों की पुष्टि विदेशमन्त्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल के इस वक्तव्य से होती है "श्रीलंका के विषय में भारत अब कभी हस्तक्षेप नहीं करेगा ।"[1]

भारत के हस्तक्षेप से निश्चय ही कोई परिणाम नहीं निकला और न ही भारत ने इस क्षेत्र में कोई ख्याति प्राप्ति की है, लेकिन फिर भी तीन वर्षों में ग्यारह सौ से अधिक व्यक्तियों को खो कर हम एक बड़े कलंक से बच गये थे जो किसी हालत में भारत पंर अवश्य लगता । श्री राजेन्द्र माथुर ने इस सन्दर्भ में अपना विचार प्रस्तुत करते हुये कहा कि "यदि हम श्रीलंका में न जाते तो यह कहा जाता कि अपनी अखण्डता के प्रति सर्वाधिक सवेंदनशील रहने वाला भारत अपने हर पड़ोसी देश के टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहता है । पहले उसने पाकिस्तान के दो टुकड़े करवाये, फिर श्रीलंका के दो टुकड़े करवाने के लिये प्रयत्नशील हो गया । यदि वास्तव में भारत का उद्देश्य तोड़ना होता तो उसे श्रीलंका में उतना समय नहीं लगता जितना पाकिस्तान में लगा था, लेकिन भारत का उद्देश्य तो जोड़ना था, इसीलिये तो उसे श्रीलंका में तीन वर्ष का समय लग गया और सफल वह आज भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि किसी देश को जोड़े रखना किसी विदेशी शक्ति के हाथ की बात नहीं है । भारत के हस्तक्षेप से सिर्फ यह प्रमाणित हुआ है कि श्रीलंका में भारत के हस्तक्षेप से कुछ नहीं हुआ है, वह टूटे अथवा जुड़े भारत का कोई योगदान श्रीलंका की नियति में नहीं होगा । विडम्बना यह है कि भारत के हस्तक्षेप के बिना हमारा अहस्तक्षेप किसी सीमा तक सिद्ध नहीं हो सकता था ।"[2]

---

1. नवभारत टाइम्स 25 जुन 1990
2. दिनमान टाइम्स 25 - 31 मार्च 1990

यह तथ्य सर्वथा सत्य है कि श्रीलंका में हस्तक्षेप से भारत को कुछ भी नहीं मिला और न ही उसका कोई परिणाम निकला, लेकिन भारत का अहस्तक्षेप भी इतना सरल नहीं है । श्रीलंका की सेना जब तमिल टाइगर्स के ठिकानों पर आक्रमण करेगी अथवा उन्हें पकड़ने के लिये तलाशियाँ लेगी तो बेगुनाह तमिल नागरिकों को सेना एवं टाइगर्स के हमलों से बचाना कठिन हो जायेगा जब साधारण तमिल आबादी के व्यक्तियों के विरुद्ध व्यापक ज्यदितियाँ होगीं, तो वे नावों में भर-भर कर भारत के समुद्र तट पर ही पहुँचेगें । इस समय साधारण तमिल ही नहीं घायल एवं भगोड़े उग्रवादी भी भारत की शरण लेगें । इस स्थिति को भारत एक सीमा तक तो झेल सकता है, लेकिन एक सीमा के बाद यदि भारत ने कुछ नहीं किया तो तमिलनाडु को कश्मीर या पंजाब अथवा लेबनान बनाते देर नहीं लगेगी ।

बन्दूकों का प्रवेश राजनीति में प्रत्येक साधारण सी चीज को भयावह रूप प्रदान कर देता है । तमिलनाडु के समुद्र तट पर लिबरेशन टाइगर्स के शिविर कायम हो गये हैं, जिसके परिणामस्वरूप आंध्र के नक्सलवादियों को सुगमता से हथियार प्राप्त होने लगे हैं । इसका दूसरा परिणाम यह हो सकता है अफीम के तस्कर तमिलनाडु को एक अफीम राज्य में बदलने की कोशिश करेगें तथा उसका सम्बन्ध पाकिस्तान के अफीम माफिया से जुड़ सकता है । यदि बन्दूकों की राजनीति का फैलाव तमिलनाडु में फैलता है तो वह बहुत दिनों तक अलगाववाद से मुक्त नहीं रह सकता है । भारत का एक सुरक्षा हित यह भी है कि तीसरी ताकतों के हस्तक्षेप से श्रीलंका मुक्त रहें, लेकिन ऐसे संकेत मिले है कि श्रीलंका चीन एवं पकिस्तान के माध्यम से चीनी हथियार मगां रहा है, इन सभी स्थितियों ने भारत की किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति उत्पन्न कर दी ।

भारत के समक्ष दुविधा यह है कि न तो भारत श्रीलंका को तोड़ने के लिये लिट्टे का साथ देना चाहता है और न ही वह तमिल नागरिकों का नर संहार होते देखना चाहता है । भारत न तो सिंहली उग्रवाद के हाथों तमिलों की जायज माँगों को पराजित होते देखना चाहता है और न ही वह श्रीलंका में विदेशी ताकतों के हस्तक्षेप को चाहता है लेकिन जैसे 1987 में भारत को श्रीलंका की एकता के विषय में तमिलों से लड़ना पड़ा था, उसी तरह का एक और भायवह चुनाव

हमें भविष्य में करना पड़ सकता है । श्री राजेन्द्र माथुर जी का विचार है कि "श्रीलंका की सेना 1983 में जो थी वह अब नहीं है । अब वह एक युद्ध कठोर सेना है, जो जे0 वी0 पी0 के उन सिंहली उग्रवादियों का सफाया कर चुकी है, जो कुछ समय पूर्व श्रीलंका में छाये हुये थे । जितनी सुगमता से 1983 एवं 1987 के बीच जाफना पर टाइगर्स ने अपना प्रमुख स्थापित कर लिया था, उतनी सुगमता से श्रीलंका को अब नहीं तोड़ा जा सकता । मुक्तिचीते भी लेकिन युद्ध कठोर है, जो भारतीय सेना से प्रहारों के बाद भी जीवित एवं समर्थ है । श्रीलंका का भविष्य इसलिये घमासान प्रतीत होता है । इस घमासानता को देखते हुये भारत को कोई भी कदम उठाने अथवा न उठाने को दृढ़ प्रतिज्ञायें अभी से नहीं करनी चाहिये । वास्तव में भारत को क्या करना होगा यह हमारे वश में नहीं है ।"[1]

प्रेमदास सरकार न इस घमासानता के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार अभियान काफी चतुरता से छेड़ रखा है । करूणानिधि के दवाव को कम करने के लिये उन्होंने मोर्चा सरकार को लगातार समझाना बुझाना जारी रखा है । उन्होंने विश्वनाथ प्रताप सिंह एवं इन्द्र कुमार गुजरात को यह विश्वास दिलया है कि उनकी लड़ाई लिट्टे के विरोध में है तमिलों के विरोध में नहीं । इसके साथ ही प्रेमदास ने यह भी घोषणा कर दी है कि लिट्टे से कोई भी वार्ता अब अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय (संयुक्त राष्ट्रसंघ, राष्ट्रमण्डल एवं निर्गुट आन्दोलन आदि) की उपस्थिति में की जायेगी । यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि यही प्रेमदास कुछ माह पूर्व यह कह रहे थे कि तमिल समस्या श्रीलंका की आन्तरिक समस्या है और इसमें किसी तीसरे पक्ष को दखल देनें की आवश्यकता नहीं है । वास्तव में उस समय प्रेमदास का लक्ष्य भारत को रास्ते से हटाना था और आज भी वे भारत से कोई सहायता नहीं माँगना चाहते हैं ।

इस पृष्ठभूमि में भारत सरकार को तय करना है कि उसे श्रीलंका में किस प्रकार की नीति का अनुसरण करन चाहिये । श्रीलंका के विषय में वर्तमान मोर्चा सरकार ने तीन घोषणायें की हैं । पहली, भारत – श्रीलंका की एकता एवं अखण्डता का सम्मान करेगा । दूसरी, वह अपनी

---

1. नवभारत टाइम्स 25 जून 1990

भूमि को किसी भी तमिल आतंकवादी गुट का अड्डा नहीं बनने देगा । तीसरी, वह किसी परिस्थिति में श्रीलंका में हस्तक्षेप नहीं करेगा । वस्तुत: यह कोई विशेष देश के सन्दर्भ में नीति नहीं है वरन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सामान्य सिद्धान्त हैं । हम इन्हीं सिद्धान्तों की दुहायी कश्मीर के विषय में पाकिस्तान को देते हैं । वास्तव में विदेशनीति कभी परिस्थति निरपेक्ष नहीं होती, वह तो सदैव राष्ट्रीय हित के चारों ओर घूमती रहती है । यह आवश्यक नहीं है कि जो कदम हम इस्लामाबाद की ओर उठायें वही कदम कोलम्बों की ओर भी उठायें ।

श्री प्रणय कुमार सुमन जी ने श्रीलंका के विषय में भारतीय नीतियों के सन्दर्भ मे अपने विचार प्रस्तुत करते हुये लिखा है, "श्रीलंका के तमिल भूचाल का प्रभाव भारत के तमिलनाडु क्षेत्र में पड़ता है, इसलिये भारत को अंतिम चरणों तक देखना है कि श्रीलंका का विभाजन न हो तथा तमिल ईलम न बने, क्योंकि यदि ऐसा हुआ तो इसका केन्द्र बिन्दु जाफना न बनकर मद्रास बन जाने में बहुत देर नहीं लगेगी । तमिल अलगाववाद का एक दौर हम झेल चुके हैं । श्रीलंका का विदेशी हाथों में चले जाने का खतरा भी है । भारत को कोलम्बो पर यह दवाव बनाये रखना चाहिये कि यह एक सीमा से अधिक न बढ़े और सीमा यह है कि प्रेमदास सरकार सिंहल राष्ट्रबाद की लहर पर सवार होकर लिट्टे के आतंकवादी दाँत तो तोड़े, लेकिन उसे बदले की भावना से कुचलने का प्रयास न करे । भारत को कूटिनीतिक स्तर पर कोलम्बो को यह समझाना चाहिये कि उत्तरी-पूर्वी तमिलों को उचित स्वायत्तता व अधिकार प्रदान करके वे तमिलों के गुबार से मुक्ति पा सकते हैं तथा इसी में श्रीलंका सरकार की भलाई है । इसके साथ ही भारत को यह भी स्पष्ट कर देना चाहिये कि भारत के अतिरिक्त श्रीलंका में किसी अन्य देश अथवा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का हस्तक्षेप वह स्वीकार नहीं करेगा ।"[1]

भारत की केन्द्र सरकार को तमिलनाडु में व्यापक प्रचार एवं जन समर्थन अभियान चलाना चाहियें । लिट्टे द्वारा ई० पी० आर० एल० एफ० के नेताओं की मद्रास में नृशंस हत्या एवं अन्य कार्यो ने तमिलनाडु में उसके प्रति वितृष्णा पैदा कर दी थी, लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक

1. नवभारत टाइम्स 17 जुलाई 1990 ।

नहीं रही । श्रीलंका की सेना की कार्यवाही से अनेक तमिल रामेश्वरम् आ रहे हैं, जिससे तमिलनाडु का तमिल मानस उद्वेलित हो रहा है तथा सरकार से श्रीलंका के विषय में सक्रिय कार्यवाही की माँग कर रहा है । यदि सरकार श्रीलंका के सन्दर्भ में अधिक समय तक निष्क्रय रही तो तमिलनाडु में तमिल क्षेत्रीय लहर बहने लगेगी जो भारत को काफी मंहगी पड़ेगी ।

अब दूरगामी राष्ट्रीय हित को देखते हुये यह आवश्यक है कि हम श्रीलंका के सन्दर्भ में अत्याधिक सचेत हो । श्री प्रणय कुमार सुमन जी के अनुसार "श्रीलंका के विषय में भारत सरकार को राष्ट्रीय सहमति बनाना आवश्यक है । संसद के अन्दर एवं बाहर इस पर खुली बहस हो तथा इस सन्दर्भ में एकजुट होकर ठोस निर्णय लेना चाहिये । विदेशनीति को सत्ता एवं विपक्ष की कसौटी पर न कसा जाये । राजीव सरकार ने विपक्ष को विश्वास में लिये बिना यदि श्रीलंका से समझौता करके और जल्दवाजी में शान्ति सेना भेज कर भूल की थी तो मोर्चा सरकार को तटस्थता की एकतरफा घोषणा करके बैसी ही भूल नहीं करनी चाहिये ।"[1] भारत को अपने राष्ट्रीय हित को ध्यान रखते हुये श्रीलंका की तमिल समस्या पर समाधान का प्रयास करना चाहिये ।

भारत एवं श्रीलंका दक्षिण एशिया के दो निकटम पड़ोसी राष्ट्र हैं । वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दक्षिण एशिया विशेष महत्व रखता है । विश्व की समस्त महाशक्तियाँ दक्षिण एशिया में अपने आर्थिक, सामरिक एवं राजनैतिक हितों की पूर्ति के लिये रुचि प्रदर्शित करती है तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये महाशक्तियाँ दक्षिण एशियायी राष्ट्रों को आर्थिक एवं सामरिक सहायता प्रदान करके इनके बीच मतभेद उत्पन्न करने का प्रयास करती है । भारत एवं श्रीलंका की महाशक्तियों की नीति से अछूते नहीं रह पाते, जिसके कारण इनके सम्बन्धों में भी तनाब उत्पन्न हो जाता है तथा इनकी आपसी समस्यायें और अधिक विकृत रूप ले लेती हैं । दोनों की ही विदेशनीति का भौलिक आधार साम्राज्यबाद एवं उपनिवेशबाद का विरोध है तथा दोनों के ही राष्ट्रीय हित समान है, लेकिन फिर भी महाशक्तियों की नीति से प्रभावित होने के कारण कुछ अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के सन्दर्भ में ये दोनों देश अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में कभी–कभी विरोधी विचार

---

1. नवभारत टाइम्स 17 जुलाई 1990

प्रस्तुत करते हैं ।

भारत एवं श्रीलंका यदि महाशक्तियों की नीतियों से प्रभावित हुये बिना संयुक्त रूप से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भाग ले, तो निश्चय ही ये दोनों राष्ट्र विश्व की समस्यओं के समाधान में सकारात्मक सहयोग प्रदान कर सकते हैं, इसलिये भारत एवं श्रीलंका को महाशक्तियों की नीतियों पर विश्वास न करते हुये अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संयुक्त रूप से समान भूमिका का निर्वाह करना चाहिये तथा अपने समान राष्ट्रीय हितों की पूर्ति हेतु संयुक्त रूप से अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर आवाज उठानी चाहिये । दोनों देशों का सक्रिय प्रयास दोनों की समस्याओं के समाधान में सक्रिय सहयोग देगा।

हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की माँग दोनों ही देशों के समान रूप से है तथा दोनों ने ही समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में अपनी इस माँग को रखा है, लेकिन महाशक्तियों के हितों के अनुकूल न होने के कारण तथा भारत एवं श्रीलंका के निष्कृय प्रयासों के कारण इस क्षेत्र में कोई सफलता नही मिली है । आवश्यकता इस बात की है कि भारत एवं श्रीलंका इस क्षेत्र में सकारात्मक प्रयास करे तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों के भीतर एवं बाहर हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने के स्वर को इतना तीव्र कर दे कि महाशक्तियों एवं अन्य राष्ट्रों को इस सन्दर्भ में अपनी सहमति देने के लिये विवश ही होना पड़े ।

भारत एवं श्रीलंका संयुक्त राष्ट्र संघ, राष्ट्रमण्डल, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एवं दक्षेस के समान रूप से सदस्य है तथा दोनों ने ही इन अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद एवं रंगभेद जैसी समस्यायों के सन्दर्भ में समान विचार प्रस्तुत करके सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया है, लेकिन फिर भी दोनों देशों के मध्य सौहार्द-पूर्ण वातावरण का अभाव रहा है । अतः भारत एवं श्रीलंका को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के सन्दर्भ में तथा अपने आपसी हितों की पूर्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में समान विचार प्रस्तुत करना चाहिये, जिससे दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दोनों देशों की प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी ।

भारत दक्षिण एशिया का वृहद राष्ट्र है, इसलिये उसे अपने इस श्रीलंका जैसे छोटे पड़ोसी राष्ट्र के साथ समान एवं उदारतापूर्वक व्यवहार करना चाहिये, जिससे श्रीलंका के मन में भारत के प्रति किसी प्रकार की असुरक्षा की भावना न रहे । भारत को अपने को क्षेत्रीय शक्ति के रूप में प्रदर्शित करने का भाव नहीं होना चाहिये श्री भवानी सेन गुप्ता के अनुसार "भारत को श्रीलंका के साथ और अधिक समझ के साथ सम्बन्धों का विकास करना चाहिये । भारत श्रीलंका के नागरिकों के सन्देहों एवं भय को दूर करते हुये इस छोटे से द्वीप की स्वतन्त्रता एवं अस्तित्व की भावना को ध्यान में रखते हुये नये तरीके से सम्बन्धों का निर्माण करना चाहिये । भारत को यह नहीं भूलना चाहिये कि श्रीलंकावासी काफी स्वाभिमानी है सिंहली शब्द सिंह से बना है जो शक्ति का द्योतक है । अस्तु भारत को श्रीलंका की एकता, अखण्डता एवं स्वतन्त्रता की भावना का सम्मान करना चाहिये ।"[1]

अत: भारत एवं श्रीलंका के बीच मैत्रीय सम्बन्धों के विकास हेतु पारस्परिक विश्वास सहयोग एवं सदभावना की सर्वाधिक आवश्यकता है । पारस्परिक विश्वास एवं सहयोग के आधार पर ही दोनों देशों के बीच आर्थिक, सामरिक समस्याओं के साथ-साथ तमिल समस्या को भी सहज सुलझाया जा सकता है। तमिल समस्या के कारण भारत एवं श्रीलंका सम्बन्ध स्वतन्त्रता प्राप्ति से ही प्रभावित होते रहे है तथा आज भी यह समस्या दोनों देशों के मैत्रीय सम्बन्धों सबसे बड़ा अवरोध है, लेकिन किसी भी अवरोध को दूर करना असम्भव नहीं होता । दोनों ही देशों को इस समस्या के समाधान हेतु पुन: नये तरीके से प्रयास करना चाहिये । भारत का सदैव यह प्रयास रहना चाहिये कि श्रीलंका में सामान्य तमिलजनों को जीवन सुरक्षि रहे तथा वहाँ गृहयुद्ध की स्थिति न रहे । श्रीलंका सरकार को भी किसी भी उग्रवादी संगठन को बढ़ावा न देकर सिंहली एवं तमिल दोनों को समान अधिकार प्रदान करके दोनों को सुरक्षा प्रदान करनी चाहिये । श्रीलंका केवल सिंहली अथवा तमिलों का राष्ट्र न होकर सभी का देश है तथा इसमें रहने वाले सभी व्यक्तियों को इस देश पर समान अधिकार है । दोनों देशों द्वारा सत्य एवं निष्ठा के आधार पर किये गये प्रयासों से ही इस विकट समस्या का समाधान सम्भव है ।

---

1. इण्डिया टुडे फरवरी 1990

मैत्रीय एवं सद्भाव की मानसिकता का विकास श्रीलंका में भारत की भूमिका का प्रमुख भाग है तथा श्रीलंका का भी यह दायित्व है कि निराधार आरोप लगा कर भारत की छवि को जनता एवं विश्व जनमत के समक्ष धूमिल करने का प्रयास न करें ।

****

परिशिष्ट

TEXT OF FIRST INDIA-CEYLON AGREEMENT ON IMMIGRATION

(Issued in New Delhi on February 13, 1954)

whereas certain proposals relating to illicit immigration of Indians into and citizenship rights for persons of Indian origin in Ceylon were made in an instrument signed at New Delhi on the eighteenth day of January in the year one thousand nine hundred and fifty-four by the respective Plenipotentiaries and Representatives of the Government of Ceylon duly authorised for that purpose, which instrument is, word for word, as follows :

"The Prime Minister of Ceylon and India, accompanied by some of their collegues, met in conference in New Delhi on January 16, 17 and 18, 1954 and considered fully the problems of Indian origin in Ceylon. As a result of these discussions certain proposals were framed by them, which will now be placed before their respective Governments.

These proposals are :

Illicit Immigration

1. Both Governments are determined to suppress illicit immigration traffic between the two countries and will take all possiblle steps, in close co-operation with each other, towards that end. Periodical meetings between high Police authorities on either side of the Palk Strait

may be held and information relating to illicit movements exchanged.

2. The Government of Ceylon propose to undertake the preparation of register of all adult residents who are not already on the electoral register and will maintain such register upto date. When this registration is completed, any person not so registered will, if his mother-tongue is an Indian language, be presumed to be an illicit immigrant from India and liable to deportation and the Indian High Commissioner will extend all facilities for implementation of such deportation.

3. The Government of Ceylon may proceed with the immigrants and Emigrants Amendment Bill which throws on the accused the onus of proof that he is not an illicit immigrant; but before that the Government of Ceylon will give an opportunity to the Indian High Commissioner to satisfy himself that a prima facie case exists for such prosecution, the final decision being that of the Government of Ceylon.

Citizenship

4. The registration of citizens under the Indian and Pakistani (Citizenship) Act will be expedited and every endeavour will be made to complete the disposal of pending applications within two years.

5. All persons registered under this Act may be placed by the Government of Ceylon on a separate electorral register, particularly in view of the fact that the bulk of the citizens do not speak the language of the area in which they reside. This arrangement will last for a period of only 10 years. The Government of Ceylon agree that in certain constituencies where the number of registered citizen voters is not likely to exceed 230, they shall be put on the national register.

6. Citizens whose names are placed in the separate electoral register will be entitled to elect acertain number of members to the House of Representatives, the number being determined after consultation with the Prime Minister of India. The Government of Ceylon except to complete their action in this respect before the present Parliament is dissolved in 1957.

7. In regard to those persons who are not so registered, it would be open to them to register themselves as Indian citizens, if they so choose, at the office of the Indian High Commissioner in aaccordance with the provisions of Article 8 of the Constitution of India. It is noted that Ceylon proposes to offer special inducements to encourage such registration and that these inducements will be announced from time to time. The Government of India will

offer administrative and similar facilities to all persons of Indian origin to register themselves as Indian citizens under the Constitution of India, if they so choose, and will also give publicity to the availability of such facilities.

8. Both Prime Ministers are desirous of continuing the present practice of close consultation between the two Governments in matters effecting their mutual interests.

Jawaharlal Nehru
Prime Minister of India

John Kotelawala
Prime Minister of Ceylon

New Delhi
18th January, 1954.

TEXT OF THIRD INDIA-CEYLON AGREEMENT ON STATUS AND FUTURE OF PERSONS OF INDIAN ORIGIN IN CEYLON

(Issued in New Delhi on October 30, 1964)

The Main heads of agreement are as follows :

1) The declared objective of this agreement is that all persons of Indian origin in Ceylon who have not been recognised either as citizens of Ceylon or as Citizens of India should become citizens either of Ceylon or of India.

2) The number of such persons is approximate 975,000 as of date. This figure does not incllude illicit immigrants and Indian passport holders.

3) 300,000 of these persons together with the natural increase in that number will be granted Ceylon citizenship by the Government of Ceylon; the Government of India will accept repatriation to India of 525,000 of these persons together with the natural increase in that number. The Government of India will confer cittizenship on these persons.

4) The status and future of the remaining 150,000 of these persons will be the subject-matter of a separate agreement between the two governments.

5) The Government of India will accept repatriation of the persons to be repatriated within a period of 15 years

from the date of this agreement according to a programme as evenly phased as possible.

6) The grant of Ceylon citizenship under paragraph 3 and the process of repatriation underr paragraph 3 shall both be passed over the period of 15 years and shall, as far as possible keep pace with each other in proportion to the relative numbers to be granted citizenship and to be repattriated respectively.

7) The Government of Ceylon will grant to the persons to be repatriated to India during the period of their residence in Ceylon the same facilities as are enjoyed by citizens of other states (except facilities for remittances) and normal facilities for their continued residence, including free visas. The Government of Ceylon agrees that such of these persons as are gainfully employed on the date of this agreement shall continue in their employment until the date of their repatriation in accordance with the requirements of the phased programme or until they attain the age of 55 years, whichever is carlier.

8) Subject to the Exchange Control Regulations for the time being in force which will not be discriminatory against the persons to be repatriated to India, the Government of Ceylon agrees to perrmit these persons to repatriate, at the time of their final departure for India, all their

assets including their Provident Fund and gratuity amounts. The Government of Ceylon agrees that the maximum amount fo assets which any family shall be permitted to repatriate shall not be reduced to less than Rs.4,000.

9) Two registers will be prepared as early as possible, one containing the names of persons who will be granted Ceylon citizenship, the other containing the names of persons to be repatriated to India. The completion of these registers, however, is not a condition precedent to the commencement of the grant of Ceylon citizenship and the process of repatriation.

10) This Agreement shall come into force with effect from the date hereof and the two Government shall proceed with all despatch to implement this Agreement and, to that end, the officialls of the two Governments shall meet as soon as possible to establish joint machinery and to formulate the appropriate procedures for the implementation of this agreement.

TEXT OF INDO-SRILANKA BOUNDARY AGREEMENT SIGNED ON JUNE 28, 1974

"The Government of the Republic of India and the Government of the Republic of Sri Lanka desiring to determine the boundary line in the historic waters between India and Sri Lanka and to settle the related matter in manner which is fair and equitable to both sides."

"Having examined the entire question from all angles and taken into account the historical and other evidence and legal aspects here O.P. "Have agreed as follows:

Article I

The boundary between India and Sri Lanka in the water's from Adam's bridge to Palk Straits shall be adjacent of Great Circles between the following position in the sequence given below, defined by latitude and longitude:

Position 1 :	10.05	North	80.03	East
Position 2 :	09.57'	North	79.35	East
Position 3 :	09.40.15'	North	79.22.69'	East
Position 4 :	09.21.80'	North	79.30.70'	East
Position 5 :	09.13'	North	79.32'	East
Position 6 :	09.06'	North	79.32	East

Article 2

"The co-ordinates of the position specified in Art. I are geographical co-ordinates and the straight lines connecting them are indicated in the chart annexed hereto, which has been signed and authorised by the two Governement respectively."

INDO-SRI LANKA AGREEMENT TO ESTABLISH PEACE AND NORMALCY IN SRI LANKA, 1987

The Prime Minister of the Republic of India, His Excellency Mr. Rajiv Gandhi and the President of the Democratic Socialist Republic of Sri Lanka, His Excellency Mr. J.R. Jayewardene, having met at Colombo on July 29,1987:

Attaching utmost importance to nurturing, infensifying and strengthening the traditional friendship of India and Sri Lanka, and acknowledging the imperative need of resolving the ethnic problem of Sri Lanka, and the consequent violence, and for the safety, well-being and prosperity of people belonging to all communities in Sri Lanka.

Have this day entered into the following Agreement to fulfil this objective.

In this context,

1.1 desiring to preserve the unity, sovereignty and territorial integrity of Sri Lanka;

1.2 acknowledging that Sri Lanka is a multi-ethnic and a multi-lingual plural society consisting, inter alia, of Sinhalese, Tamils, Muslims (Moors) and Burghers;

1.3 recognising that each ethnic group has a distinct cultural and linguistic identity which has to be

carefully nurtured;

1.4 also recognising that the Northern and the Eastern Provinces have been areas of historical habitation of Sri Lankan Tamil-speaking peoples, who have at all times hitherto lived together in this territory with other ethnic groups;

1.5 conscious of the necessity of strengthening the forces contributing to the unity, sovereignty and territorial integrity of Sri Lanka, and preserving its character as a multi-ethnic, multilingual and multi-religious plural society, in which all citizens can live in equality, safety and harmony, and prosper and fulfil their aspirations;

2. Resolve that :

2.1 Since the Government of Sri Lanka proposes to permit adjoining provinces to join to form one administrative unit and also by a rreferendum to separate as may be permitted to the Northern and Eastern Provinces as outlined below :

2.2 During the period, which shall be considered an interim period, i.e., from the date of the elections to the Provincial Council, as specified in para 2.8, to the date of the referendum, as specifieed in para 2.3, the Northern and Eastern Provinces as now constituted, will form

one administrative unit, having one elected Provincial Council. Such a unit will have one Governor, one Chief Minister and one Board of Ministers.

2.3 There will be a referendum on or before 31st December 1988 to enable the people of the Eastern Province to decide whether :

a) The Eastern Province should remain linked with the Northern Province as one administrrative unit, and continue to be governed together with the Northern Province as specified in para 2.2, or

b) The Eastern Province should constitute a separate administrative unit having its own distinct Prrovincial Council with a sepirate Governor, Chief Minister and Board of Ministers.

The President may, at his discretion decide to ethnic violence, or other reasons, will have the right to vote in such a referendum. Necessary conditions to enable them to return to areas from where they were displaced will be created.

2.5. The referendum, when held, will be monitored by a committee headed by the Chief Justice; a member appointed by the President, nominated by the Government of Sri Lanka; and a member appointed by the President,

nominated by the representatives of the Tamil-speaking people of the Eastern Province.

2.6 A simple majority will be sufficient to determine the result of the referendum.

2.7 Meetings and other forms of propaganda, permissible within the laws of the country, will be allowed before the referendum.

2.8 Elections to Provincial Councils will be held within the next three months, in any event before 31st December 1987. Indian observers will be invited for elections to the Provincial Council of the North and East.

2.9 The Emergency will be lifted in the Eastern and Northern Provinces by August 15, 1987. A cessation of hostilities will come into effect all over the Island withing 48 hours of the signing of this Agreement. All arms presently held by militant groups will be surrendered in accordance with an agreed procedure to authorities to be designated by the Government of Sri Lanka.

Consequent to the cessation of hostilities and the surrender of arms by militant groups, the Army and other security personnel will be confined to barracks in camps as on 25th May 1987. The process of surrendering of arms and the confining of security personnel miving back to

barracks shall be completed within 72 hours of the cessation of hostilities coming into effect.

2.10 The Government of Sri Lanka will utilise for the purpose of law encorcement and maintenance of security in the Northhern and Eastern Provinces the same organisations and mechanisms of Government as are used in the rest of the country.

2.11 The President of Sri Lanka will grant a general amnesty to political and other prisoners now held in custody under the Prevention of Terrorism Act and other Emergency laws, and to combatants, as well as to those persons accused, charged and/or convicted under these laws. The Government of Sri Lanka will make special efforts to rehabilitate militant youths with a view to bringing them back into the mainstream of naticnal life. India will co-operate in the process.

2.12 The Government of Sri Lanka will accept and abide by the above provisions and expect all others to do likewise.

2.13 If the framework for the resolutions will implement the relevant proposals forthwith.

2.14 The Government of India will under-write and gurantee the resolutions, and co-operate in the implementation of these proposals.

2.15 These proposls are conditional to an acceptance of the proposals negotiated from 4.5.1986 to 19.12.86. Residual matters not finalised during the above negotiations shall be resolved between India and Sri Lanka within a period of six weeks of signing this Agreement. These proposals are also conditional to the Government of India co-operating directly with the Government of Sri Lanka in their implementation.

2.16 These proposals are also conditional to the Government of India taking the following actions if any militant group operating in Sri Lanka do not accepet this framework of proposals for a settlement namely.

a) India will take all necessary steps to ensure that Indian territory is not used for activities prejudicial to the unity, inteegrity and security of Sri Lanka.

b) The Indian Navy/Coast Guard will co-operate with the Sri Lankan Navy in preveenting Tamil militant activities from affecting Sri Lanka.

c) In the event that the Government of Sri Lanka requests the Government of India to afford military assistance to implement these proposals, the Government of India will co-operate by giving to the Government of Sri Lanka such military assistance as and when requested.

d) The Government of India will expendite repatriation from Sri Lanka of Indian citizens to India who are resident there, concurrently with the repatriation of Sri Lankan refugees from Tamil Nadu.

e) The Governments of India and Sri Lanka will co-operate in ensuring the physical security and safety of all communities inhabiting the Northern and Eastern Provinces.

2.17 The Government of Sri Lanka shall ensure free, full and fair participation of voters from all communities in the Northern and Eastern Provinces in electoral processes envisaged in this Agreement. The Government of India will extend full co-operation of the Government of Sri Lanka in this regard.

2.18 The official language of Sri Lanka shall be Sinhala. Tamil and English will also be official languages.

3. This Agreement and the Annexure thereto shall come into force upon signature.

In witness whereof we have set our hands and seals hereunto.

Done in Colombo, Sri Lanka, on this the twenty ninth day of July of the year one thousand nine hundred and eighty seven, in duplicate, bot texts being equially authentic.

Rajiv Gandhi Prime Minister of the Republic of India	Junius Richard Jayewardene Presient of the Democratic Socialist Republic of Sri Lanka

BIBLIOGRAPHY

'A'

1. Arasaratnam, S., 'Ceylon' - Printice Hall 1964.

2. Amarasingam, S.P., "Rice and Rubber - The Story of China - Ceylon Trade" (Colombo - 1963)

3. Ames Michael, M., "The Impact of Western Education on Religion and Society in Ceylon" - Passific Afairs Sprin Summers - 1967.

4. Aiyar, S.P., "The Commonwealth in South Asia" - Lalwani Publishing House Bombay - 1969.

5. Appadorai, A. (ed), "Chinees Aggression and India" International Studies, Vol. 51963.

6. Appadorai, A., "The Domestic Roots of India's Foreign Policy - 1947 - 72" Delhi - 1981.

7. Amarra Sekera, Anil, "Crisis in Sri Lanka" Colombo - 1975.

8. Arasaratnam, S., "Srilanka After Independence - Nationalism, Communalism and Nation Building" Madras - 1986.

9. Akhtar Majeed, "Indian Ocean Conflict and Regional Co-operation" New Delhi. A.B.C. Publishing House - 1984.

10. Appadorai, A. & M.S. Rajan, "India's Foreign Policy and Relations"
New Delhi - South Asian Publishers - 1985.

'B'

11. Bindra, S.S., "Ditermination of Pakistan Foreign Policy".

12. Bindra, S.S., "Towards a New India and Her Neighbovr's Era"
Deep & Deep Publications - New Delhi-1985.

13. Bandaranaike S.W.R.D., "The Foreign Policy of Ceylon" 1968.

14. Bailey, S.D., "Ceylon" - New York - 1953.

15. Bains, J.S., "India's International Disputes"
Bombay - 1962.

16. Bhatt, J.R., "Ceylon - A Second South Asia"
Allahabad - 1963.

17. Brecher, Michael, "The New States of Asia - A Political Analysis"
London - 1963.

18. Brecher, Michael, "India in World Politics"
Krishna Menon Views of the World
Londan - 1968.

19. Bright, J.S., "Ceylon Kicks India"
Delhi - 1950.

20. Bajpai, U.S., "India and its Neighbourhood"
Lancer International 1986 in association with Indian International.

21. Bhambheri, C.P., "The Foreign Policy of India"
Strelling Publications - New Delhi - 1987.

22. Bandhyopadhyay, J., "The Making of India's Foreign Policy"
New Delhi - Allied Publisher - 1980.

23. Bajpai, A.B., "India's Foreign Policy"
Rajpal & Sons, K.K. Printers New Delhi 1979.

24. Bhandari, A.; Banerjee, B.N., "India's Aid to Neighbourring Countries"
New Delhi Paribus Publications - 1983.

25. Bhargava, P., "Political Economy of Srilanka"
New Delhi - Navrang - 1987.

26. Brown Norman, "India, Pakistan and Ceylon"
University Press Philadelphia - 1966.

27. Berindranath Dewan, "South Asia Co-opretion - A Case of Caution Democratic World"
April 12, 1981.

22. Bandhyopadhyay, J., "The Making of India's Foreign Policy"
New Delhi - Allied Publisher - 1980.

23. Bajpai, A.B., "India's Foreign Policy"
Rajpal & Sons, K.K. Printers New Delhi, 1979.

24. Bhandari, A.; Banerjee, B.N., "India's Aid to Neighbouring Countries"
New Delhi Paribus Publications - 1983.

25. Bhargava, P., "Political Economy of Srilanka"
New Delhi, Navrang - 1987.

26. Brown Norman, "India, Pakistan and Ceylon"
University Press Philadelphia - 1966.

27. Berindranath Dewan, "South Asia Co-opretion - A Case of Caution Democratic World"
April 12, 1981.

28. Bahadur Kalim, "South Asia in Transition Conflicts and Tensions"
New Delhi, Patriot Publications - 1986.

29. Bimal Prasad, "Regional Co-operation in South Asia - Problems & prospects"
Vikas Publishing House Pvt. Ltd - 1989.

30. Birender, S.S., "India and her Neighbours : A study of Political Economic and Cultural Relations and Interaction" - New Delhi - 1984.

'C'

31. Coelho, V., "Across the Palk Straits - India Srilanka Relations" - Palit & Palit 1976.

32. Chattopadhyay, H., "Indians in Srilanka"

33. Collins, Sir Charles, "Public Administration in Ceylon" - Royal Institute of International Affairs - 1951.

34. Choudhri, J.N., "India's Problem of National Security in the Seventies" New Delhi - 1973.

35. Cohen, S, "Indian Security Policy Making Process - A draft submitted to U.S. arms control and disarmmament Agency" New York - 1970.

36. Chand, A., "Non-Aligned States - A Great Leap Forward" UDH Publishers, New Delhi - 1983.

37. Cruden Robert M. and Others, "New Perspectives on America and South Asia" Delhi Chanakya Publications - 1984.

38. Chaturvedi, D.C., "Anter Rashtriya Sambhandh"

'D'

39. Desai, Hiralal M., "India in Ceylon"
Agra - 1963.

40. De Silva Davil, M.W., "Ceylon" Colombo - 1966.

41. De Silva, K.M., "History of Srilanka".
Delhi Oxford University Press - 1981.

42. De Souza, D., "Parliamentry Democracy in Ceylon"
Young Socialist (Ceylon) October - 1961.

43. Desai, W.S., "India and Burma"
Indian Council of World Affairs 1954.

44. De Silva Calvin, R., "Ceylon Under British Occupation"
(1795 - 1833)
Colombo Apothecaries 1941.

45. De Silva, C.P., "Srilanka - A History"
Vikas Publications New Delhi - 1987.

46. DHARAMADASANI, M.D. (ed) "Contemparary South Asia"
Shalimar Publishing House Varansi - 1985.

47. Dharamdasni, M.D., "Srilanka - An Island in Crises"
Shalimar Publishing House Varansi - 1988.

48. Dutt, V.P., "India's Foreign Policy"
Vikas Publishing House, New Delhi, 1987.

49. Dube Swaroop Rani, "One Day Revolution in Srilanka" Aalekn Publisher Jaipur, 1988.

50. Dube Ravikant, "India and Srilanka Relations"

'F'

51. Farmer, B.H., "Ceylon - A Devided Nation" London, 1963.

52. Farmer, B.H., "A People Government - Social and Political Trend in Ceylon" - The world today, July, 1956.

53. Fodar's, "India, Nepal and Srilanka" - Hodder and Stoughton, 1983.

54. Fadia, B.L., "Anter - Rashriya Rajneet" Sahitya Bhawan Agra, 1986.

'G'

55. Gahbriel, A. Almond and James, S. Coleman, "The Pltics of Developing Area" Princeton - 1970.

56. Ganguli, B.N., "India's Economic Relation with the far Eastern and Pacific Countries in the Present Century" Calcutta - 1956.

57. Ganguli, N., "Indians in the Empire Overseas - A Survey" Londan - 1947.

58. Gupta Anirudha, "Indias Abroad - Asia and Africa" Delhi - 1971.

59. Gupta, B., "The Political and Civic Status of Indians in Ceylon" Agra - 1963.

60. Gupta Alka, "India and U.N. Peace Keeping Activities; A Case Study of Korea - 1947 - 1953" Radient Publication 1977.

61. Gupta, K., "Indian Foreign Policy" Calcutta World Press - 1956.

62. Greene, F., "United States Policy and Security of Asia" New York - 1968.

63. Gupta, M.C., "India and its Neighbours"

64. Gupta, S., "India and Regional Integraation in Asia" Bombay - 1967.

65. George Timothy and Others, "Security in Southern Asia- India and the Great Powers" Aldershot Gower Publishing Co. 1984.

66. Gupta Vijay (ed), "India and Non Alignment" New Delhi, New Literature - 1986.

'H'

67. Harrission Selig : "India, The Most Dangerous Decade"
- Princetn University Press - 1960.

68. Hellman Donald : "Southern Asia; The Politics of Poverty and Peace"
- Laxington Books - Laxington 1976.

'I'

69. Indra Ratna, A.D.V de s., "The Ceylon Economy"
- Colombo 1966.

70. Indian Council of World Affairs, "Defence and Security in Indian Ocean Area,"
- Asia Publishing House Bombay 1958.

71. Iyer Reghwan, "South Asia Affairs"
St Anthony Papers, Chatto and Vinds London - 1966.

'J'

72. Jayaraman, R, "Caste Continuties in Ceylon"
Popular Prakashan Bomyab 1975.

73. Jansen, G.H. "Afro Asia and Non Alignment"
London 1966.

74. Jaya Suriya, J.E., "Some Issues in Ceylon Education" - Paradeniya 1964.

75. Jeffries, C., "Ceylon - The Path to Independence" London 1966.

76. Jennings Ivor, "Nationalism and Political Development in Ceylon" - New York 1950.

77. Jennings Ivor & N.W. Tambiah, "The Dominion of Ceylon - The Development of its Law and Constitution." - London; Steuens and Sons Ltd. 1952.

78. Jain Girilal, "Panchasheela and After : A Re-Apprausal of Sino-Indian Relation in Context with the Tibbetan Insurrection", Bombay Asia Publishing House 1960.

79. Jennings Ivor, "The Commonwealth in Asia" - Oxford Calender Prass 1951.

80. Jain, L.K., "Parliament and Foreign Policy in India" - Printwell Publishers Jaipur 1986.

'K'

81. Kodikara, S., "Foreign Policy of Srilanka - A Third World Perspective" Chankya Publication Delhi 1982.

82. Kodiakara, "India Ceylon Relations Since Independence 1965"

83. Kumar Lalit, "India and Srilanka"
Srimavo Shastri Pact 1977.

84. Kearney, R.N., "Trade Union and Poltics in Ceylon"
New Delhi - Thomson Press - 1971.

85. Karunakaran, K.P., "India in World - A Review of Indian Foreign Relations 1950-55"
- Bombay, Oxford University Press.

86. Kearney, R.N., "Communalism and Langvage in the Politics of Ceylon"
- Ourham 1967.

87. Kondapi, C., "Indians Overseas, 1838-1949"
- New Delhi 1951.

88. Kodikara, S., "Ceylon's Relation with Communist Countries : 1948-1966"
- South Asian Studies, July 1967.

89. Kalmane, P., "India and Ceylon - a federation : a new effort in History"
P.S. King and Sons Londan 1932.

90. Karunakaran, K.P., "India in World Affairs 1947-50"
-Oxford University Press Bombay 1952.

91. Kundra, J.C., "Indian Foreign Policy 1947-54 : A Study of Relation with Western Block"
-Groningen : J.B. Wolters, 1955.

92. Karunatilake, H.N.S., "Central Banking and Monestry Policy in Srilanka"
- Colomno - Kaki House Investment, 1973.

93. Kearney, R.N. and Fernondo, "Modern Srilanka - A Society in Transition"
- New York, 1979.

94. Korey, R.N., "Trade Union and Politics in Ceylon"
New York, 1979.

95. Kulshreshtha, K.K., "Anter Rashtriya Sambanadh"
- S. Chand & Co., New Delhi, 1986.

'L'

96. Levy Werner, "The Challenge of World Politics in South and South east Asia"
- New Jercy 1968.

97. Ludowyk, E.F.C., "The Modern History of Ceylon"
London, 1966.

'M'

98. Mukherjee, Sadhan, "Ceylon Island that Changed"
- People Publishing House Delhi, 1971.

99. Makik, D.N., "The Development of Non-Alignment in India's Foriegn Policy"
- Allahabad, 1964.

100. Masan Philip, "India and Ceylon : Unity and Diversity"

101. Mendes, G.C, "Ceylon - Today and Yesterday Main Current of Ceylon History" Colombo, 1957.

102. Miller, J.D.B., "The Commonwealth in the World"
London Duckworth, 1955.

103. Moude Angus, "South Asia Bodley Head"
London, 1966.

104. Misra, P.K., "South Asian Reality; South Asia in International Politics"
- V.D.H. Publisher New Delhi, 1984.

105. Muni, S.D. and Anuraddha Muni, "Regional Co-operation in South Asia"
- National Publishing House New Delhi,1984

106. Majamdas, R.C., "History and Culture of Indian People"
- Bhartiya Vioya Bhhawan Bombay, 1954.

107. Misra, K.P., "Foreign Policy of India - A Book of Readive"
- Jhomson Press New Delhi, 1977.

108. Maheswari, "India & Srilanka Economic RRelations".

'N'

109. Navaratham, C.S., "Tamil and Ceylon"
Saivn Prakashan Press Jaffna.

110. Nissanka, H.S.S., "Srilanka's Foreign Policy"
Vikas Publication, 1984.

111. Niemsath, Charles H. and Mansingh Surjit, "A Deplomatic History of Modern India" Allied, 1971.

112. Namasivayam, S., "Aspects of Ceylon's Parliamentry Government"
- Passific Affairs March, 1953.

113. Nehrv Jawaharlal, "India's Foreign Policy"
- New Delhi Publication Division, 1971.

114. Narani, A.G., "India, The Super Powers and the Neighbour; Essays in Foreign Policy"
South Asian Publication, New Delhi, 1985.

'O'

115. Oliver Henry M.I., "Economic Opinion and Policy in Ceylon"
- Duke University Press, 1957.

'P'

116. Phadnes Urmila, "Religion and Politics in Srilanka"
- Manohar Delhi, 1976.

117. Peiris Denzil, "1956 and after Background to parties and Poltics in Ceylon Today"

118. Pakeman, S.A., "Ceylon"
- London, 1964.

119. Paniker, K.M., "India and the Indian Ocean; an Ocean the Influence of Sea Power in Indian History"
London, 1962.

120. Prasad Bimla, "The Origins of Indian Foreign Policy"
Calcutta, 1960.

121. Phadnis Urmila, "Ceylon and Indo-Pakistan Conflict"
- South Asian Studies January, 1967.

122. Phadnis Urmila, "Tamilshed - Some complexes"
HT Publication 1967, New Delhi.

123. Parasher, S.C., "Commonwealth Today"
Indian Council of world Affairs Pub. 1983.

124. Pillay K.K., "South India and Srilanka"
Madras, 1975.

125. Parper H., "Ancient Ceylon"
New Delhi Marwah Pub 1982.

126. Ponnombalam Satchi, "Srilanka National Conflict and the Tamil Liberation Struggle".
- London Zed Bood Ltd, 1983.

127. Perit R.K., "South Asia Oriental"
New Delhi, 1976.

'R'

128. Ramachandra Rao P.R., "India and Ceylon - a Study"
- The Indian Council of World Affairs by Orient Longman Limited, 1954.

129. Rasanyagm M.R., "Aancient Jaffna"
Asian Educational Service, New Delhi, 1984.

130. Rajan, M.S., "India in World Affairs 1954-56"
Bombay, 1964.

131. Rajkumar, N.V., "Indian Outside India"
- All India Congress Committee 1951.

132. Richard, F., "Srilanka - A Country Study"
Washington D.C., U.S. Govt. Printing Press.

133. Roy Choudhry, P.C., "Srilanka"
New Delhi Strelling Publication 1985.

134. Rose Saul, "Politics in Southern Asia"
Macmillan London, 1963.

135. Roy, M.P., "Bharat and Vishwa Rajniti"
Kamal Prakashan Indor, 1979.

136. Ramakant, "China & South Asia"

137. Ramaswamy, P., "New Delhi & Srilanka"
Allied Publishers New Delhi, 1987.

'S'

138. Singh Patwant, "India and Future of South Asia"
- London, 1966.

139. Shetty, Krishna K.P., "Ceylon's Foreigh Policy; Emerging Pattern of Non-Alignment."
- Political Science Reeview, April 1966.

140. Santhanam, K., "Union State Relations in India"
- New Delhi, 1966.

141. Sarper, N.K., "The Demography of Ceylon"
- Colombo Government Press, 1957.

142. Sukhwal, B.L., "Modern Political Geography of India"
- Stering Publisher Pvt. Ltd, 1985.

143. Satchi Pannambalam, "Srilanka Dependent Capitalism in Crisis"
- London Zed Press, 1980.

144. Srivastava, N.K., "Foreign Policy of India"
- Sahitya Bhawan Agra, 1979.

145. Singh Rajvir, "National Defence & Security".

'T'

146. Tresidder, A.J., "Ceylon - An Introduction to the Resplendent Land"
- Princeton, New Jercy, 1960.

147. Thomson, I, "Changing Pattern in South Asia"
- Pall Mall Press, London.

'V'

148. Venkatachalam, M.S., "Genocide in Srilanka"
Gian Publishing House, Delhi, 1987.

149. Verma, S.P. and Misra, K.P., "Foreign Policy in South Asia"
New Delhi, 1969.

150. Van Der Kroef J.M., "The Many Faces of Ceylonese Communish - Problems of Communism"
- April 1968.

151. Vaidya, K.P., "The Naval Defence of India"
- Bombay, Thakker & Co.

152. Vohra Dewan C., "The Commonwealth Economic Connection"
- ABC Pubalishing House New Delhi, 1984.

153. Vidyalankar Satyaketu, "Oakhhin Purve Aur Dakahin Asia Meubhartiya Sanskrit"

154. Vedalankar Haridutta,"Anter-Rashtrya Sambandy"

'W'

155. Wriggins W. Howard, "Ceylon Dilemma of New Nation"
- Princeton University Press, 1960.

156. Weera Wardena I.D.S., "Government and Politics in Ceylon 1931-46"
- Colmbo, 1961.

157. Wies, P., "Nationality and Statelessness in International Law"
- London, 1956.

158. Wilson Jayratnam, "A Politics on Srilanka, 1947-73"
- Macmillan, 1974.

159. Wijeeainghe, Mallory E., "Economics of Srilanka, 1948 - 75"
- Colombo: Ranco, 1976.

'Z'

160. Ziring Lawrence, "The Subcontinent in World Politics
- India, its Neighbours and Great Powers"
Parager Publisher, 1978.

161. Zeylanicus, "Ceylon Between Orient and Accident" - Elek, 1970.

ARTICLES

'A'

1. Alock "Tamil Elam Ke Duswapn Ka Bisphot" Novbharat Times, 30 June 1990.
2. Anand (J.P.) "Politics in Srilanka" Stratigic Analysis, Nov. 1977.
3. Aboltin Veladimir "Ceylon on the Path of Progress" New Times 27th Dec. 1970.
4. Adam Warrner "Politicis in Srilanka" Swiss Review of the World Affairs Vol. 23, 1973.
5. Abraham A.S. "Colombo Set to Use Farce" New Tralising Indian Key to Strategy Times of India, 30 Aug. 1985.
6. Ahmed, Muselaihuddin "Indo-Ceylon Relation" Janata (Bombay) Vol. 22, Nov., 1967.

'B'

7. Bimal Prasad "Super Powers and Continent" International Studies, Oct. Dec. 1974.
8. Bhargava Abhay "Foreign Aid In South Asia" South Asian Studies, Jan.-Jul. 1974.

9. Basinber S. Premdas Ka Srilanka Aur Garmayga"
Novbharat Times, 27 Dec. 1988.

10. Bandhopadhyaya "Role of the External Powers in South Asian Affairs Quhpteriy in India.

11. Bhattachhrya Ajit "Kya Lanka Kand ka Kol Uttar Kand bhi Hai" Dinman Times, 12-18 Aug, 1990.

'D'

12. Desai H.M. " Ceylon And India"
United Asia, April 1950.

'G'

13. Gopal Krishnan "Indu Srilanka Trade"
India Quarterly, Oct. - Dec. 1977.

'J'

14. Jagjit Singh "Geopolitics and Superpower Rivelrey in Indian Ocen"
Stratic Analysis, Nov. 1984.

15. Joshi Prabash "Raiphal Ke Kunde Se Bikhre Gulab"
Najsatta, 31 July 1987.

'K'

16. Kodikara Shelton "Desparity Affaects Role: Indo Srilanka Equation in Search"
    Deccan Herala 11 Dec. 1985
17. Kaul T.N "India in South Asian"
    World Focus, 1983.

'M'

18. Murari S. "India At Crossroads on Srilanka"
    Daccan Herald, 4 March 1986.
19. Mathur Rajender "Phir Ghamasanta Ki Aor Badhata Srilanka"
    Novbhharat Times, 25 June 1990.
20. Menon Ramesh "Srilanka : Binashkari Sanghars"
    India Todsy, 15 July 1990.
21. Mahipal "Indian Diplomacy And Ethnic Crises in Srilanka"
    Democratic World, 1985.
22. Murugesa Mudaliar "Tamil In Shrilanka And New Constitution
    Swarajya, 19 Oct. 1974.
23. Mathur Rajender "Ahastachep Siddh Karne Ke Lia Dakhal"
    Dinman Times, 25-31 March 1990.

'N'

24. Noorani A.C. "India And South Asia"
    Indian Express 22 May 1984.

'P'

25. Pran Chopra "Why South Asia And What"
World Focus, March 1982.

26. Prasad D.M. "Land Mark on Indo Srilanka Relations"
Young India Independence, Sept. 1974.

'S'

27. Suman Pranya Kumar "Srilanka : Bharat Ki Yojnoa Me Niti Ka Abhao"
Novbharat Times, 17 July 1990.

28. Suman Pranya Kumar "Srilanka : Shanti Ki Muhim Anter-Rdstriya Uljhan Ban Sakti Hai"
Dharmyug, 30 July 1989.

29. Sen Gupta Bhabani "India's New Diplomacy in Srilanka"
Hindustan Times, 28 March 1986.

30. Schhan Rajeev "Shanti Sena Ke Na Rahne Ke Baad Srilanka"
Novbharat Times, April 1990.

31. Sen Gopta Bhabani "Srilanka Hope on the Horizen"
India Today, 28 Feb, 1990.

32. Sreedhar "India's Neighbour : Quest For Security in Absence of Legitamacy"
Stratigic Analysis, March 1984.

'T'

33. Tharkur Ramesh "American Policy in South Asia Regional Fali Out of Globai Stratiegy" Political Science Review 76(s) Dec. 1984.

'U'

34. Vdaya Shanker B. "Indo Srilanka Accord on Tamils of Indian Origin" Strategic Analysis, March 1986.

35. Uttam Jitender "Srilanka - Bhartiya Shanti Sena Ki Bapsi, Kya Khoa-Kya Paya" Saptahic Hindustan, 4-8 April 1990.

'V'

36. Viswam S. "India And Neighbour : No Substitute for Conget Policy" Daccan Herald, 12 April 1985.

37. Vijay Viyas "Seven Sisters on a Breanch" Jansatta, 20 Nov. 1989.

'W'

38. Wrigging, W. Howard "Srilanka in 1980 - The Year of Constraints" Asian Survey, Feb 1981.

39. Wilson Ajeyuratham "Ceylon : A Times of Trouble"
Asian Survey, 1972.

40. Warnapola W.A. "Srilanka in 1979 : New Stress in the Economy and Policy"
Asain Survey, Feb 1980.

41. Warnapola W.A. "Srilanka in 1972 : Tension and Changes"
Asain Survey, Feb 1973.